महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

स्थापत्यवेद में

पी-एच. डी. (विद्या-वारिधि)

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

:: शीर्षक ::

समराङ्गण-सूत्रधार एवं मयमत
के आलोक में
अभियान्त्रिकी

शोधकर्ता

शिवप्रसाद वर्मा

:: शोध-सहनिर्देशक ::

डॉ. डी. पी. पारे

::शोध-निर्देशक::

डॉ. निलिम्प त्रिपाठी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

भोपाल

2014

22626

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

स्थापत्यवेद में
पी-एच. डी. (विद्या-वारिधि)
हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

:: शीर्षक ::

समराङ्गण-सूत्रधार एवं मयमत के आलोक में अभियान्त्रिकी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय ग्रंथालय
क्र. 22626
करौंदी, कटनी (म.प्र.)

शोधकर्ता
शिवप्रसाद वर्मा

यह पुस्तक देय नहीं है।

सन्दर्भ पुस्तक

:: शोध-सहनिर्देशक ::
डॉ. डी. पी. पारे

::शोध-निर्देशक::
डॉ. निलिम्प त्रिपाठी
महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय
भोपाल

2014

घोषणापत्र

मैं यह शपथ पूर्वक घोषित करता हूँ कि प्रस्तुत शोधप्रबन्ध जिसका शीर्षक “ **समराङ्गण-सूत्रधार एवं मयमत के आलोक में अभियान्त्रिकी**” है, संदर्भ ग्रन्थ पर आधारित मेरा मौलिक शोध कार्य है। मैं यह भी घोषित करता हूँ कि यह शोधकार्य मैंने किसी भी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी भी उपाधि आदि की प्राप्ति हेतु प्रस्तुत नहीं किया है।

S.P.verma

शिवप्रसाद वर्मा

शोधकर्ता का नाम

प्रमाणपत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध जिसका शीर्षक **" समराङ्गण-सूत्रधार एवं मयमत के आलोक में अभियान्त्रिकी"** है, शिवप्रसाद वर्मा द्वारा संदर्भ ग्रन्थों पर आधारित मौलिक शोध कार्य है, जो कि मेरे निर्देशन में सम्पन्न किया गया है। मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि यह शोध कार्य किसी भी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी भी उपाधि प्राप्ति हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

5.5.14

::शोध-निर्देशक::

डॉ. निलिम्प त्रिपाठी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

भोपाल

D. P. Pare
2-5-14

:: शोध-सहनिर्देशक ::

(डॉ. डी. पी. पारे)

अग्रेसारितं
16.9.2015

प्रस्तावना

५/७

प्रस्तावना

प्रत्येक प्राणी सुखी होना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति भी सुखी होना चाहता है। यह उसका स्वभाव है। सत्, चित् व आनन्द, आत्मा या चेतना का गुण या स्वभाव है। प्रत्येक व्यक्ति चैतन्य है, उसमें चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। इसलिए सुखी होना चाहता है। किसी निमित्त या कारण के फलस्वरुप वह दुखी है। दुखी होना उसका गुण या स्वभाव नहीं है। व्यक्ति अपने स्वरुप में स्थित हो जाए तो उसका स्वभाव जग जाएगा, प्रकट हो जाएगा।

जब व्यक्ति प्रकृति के साथ तादात्म स्थापित कर लेता है तो उसके स्वाभाविक गुण प्रकट होने लगते हैं। प्रकृति के साथ तादात्म स्थापित करने लिए, प्रकृति के अनुरूप जीवन जीने के लिए, प्रकृति के अनुरुप बने गृहों में निवास करना सहायक सिद्ध होता है। व्यक्ति जब प्रकृति के अनुरुप गृहों में निवास कर, अपनी दिनचर्या प्रकृति के नियमों के अनुसार करता है, जब उसका कार्यस्थल प्रकृति के सिद्धान्तों के अनुसार निर्मित होता है तब व्यक्ति उत्तरोत्तर चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त करता हुआ, स्वरुप में स्थित होकर पूर्ण शान्ति का अनुभव करता है।

प्रकृति के सिद्धान्तों के अनुरुप निर्माण की विद्या को हम वास्तुशास्त्र के रूप में जानते हैं। वास्तु में व्यक्ति की प्रकृति को चार श्रेणियों में विभाजित किया है-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र इसे हम वर्ण व्यवस्था के रूप में जानते हैं। व्यक्ति की प्रकृति के अनुकूल निर्माण के सिद्धान्त बताएँ हैं। व्यक्ति की प्रकृति के अनुकूल निर्माण करने पर व्यक्ति के स्वाभाविक गुण प्रकट होने लगते हैं, उसे प्रकृति का सहयोग प्राप्त होता है, इस वह अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर उन्नति की ओर अग्रसर होता है। यही वास्तुशास्त्र का उद्देश्य है। इससे व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्र सभी सुखी होकर उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करते हैं।

परमपूजनीय महर्षिजी द्वारा महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय की स्थापना के द्वारा वैदिक विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की गई है। इसी के अन्तर्गत वास्तुशास्त्र का अध्ययन कराया जाता है। जब मैंने इस विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया जब ज़ात हुआ कि वास्तुविद्या के अनेकानेक ग्रन्थ हैं, वे विभिन्न कालखण्ड में भारत वर्ष के अलग-अलग भौगोलिक स्थिति में लिखे गए हैं। अनेक पुराण में वास्तुशास्त्र का संदर्भ मिलता है। इस विद्या का उल्लेख स्थापत्यवेद के नाम से मिलता है। परमपूजनीय महर्षि जी ने व्यवस्थित रुप से प्रथमा, मध्यमा, उत्तर मध्यमा, शास्त्री, आचार्य, विद्यावारिधि तथा विद्यावाचस्पति स्तर तक उसके अध्ययन की उत्कृष्ट व्यवस्था की। मानसार, मयमय, समरांगण-सूत्रधार, मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, विश्वकर्म-प्रकाश आदि ग्रन्थों को

उनके मूल स्वरुप को यथावत रख़ते हुए आधुनिक संदर्भ में ग्रन्थों में वर्णित सिद्धान्तों को किस प्रकार लागू करना यह बताया जाता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में वास्तुशास्त्र को दो महान् ग्रन्थ समरांगण-सूत्रधार तथा मयमत का आधुनिक अभियान्त्रिकी दृष्टि से अध्ययन कर विवरण प्रस्तुत करना है।

राजा भोज द्वारा रचित समरांगण-सूत्रधार दसवीं शताब्दी का प्रमुख़ ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का प्रचलन उत्तर भारत में अधिक है। दक्षिण भारत में मयमुनि द्वारा रचित ग्रन्थ मयमत है। शोध-प्रबन्ध में इन दोनों ग्रन्थों के अभियान्त्रिकी पक्ष को उद्‌घाटित कर विश्लेषण कर प्रस्तुत करना है।

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार भूमि चयन, परीक्षण तथा भूमि को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करने की विधि का वर्णन है। भूमि चयन के उपरान्त निर्माण आरम्भ करने से पूर्व, दिशा का निर्धारण, पदविन्यास, पद की ऊर्जा के अनुसार निर्माण विधि को बताया है। विभिन्न कक्ष आदि या नगर आदि का निर्माण कर जब उसमें वास्तुशान्ति कर प्रवेश किया जाता है तो उसमें निवास करने वाले व्यक्ति को प्रकृति का सहयोग प्राप्त होता है। इससे वह उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त करता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को मुख्य रुप से सात अध्यायों में विभिक्त किया है। प्रथम अध्याय में विषय का प्रवेश है, इसमें स्थापत्यवेद की परिभाषा, चेतना से संबंध तथा वास्तु का क्षेत्र बताया है। द्वितीय अध्याय में वास्तु की विभिन्न शैलियों का परिचय दिया है। जब कोई निर्माण कार्य विशेष रुप से मंदिर का किया जाता है तो वह एक विशिष्ट शैली में किया जाता है। जनसाधारण मुख्य रुप नागर, द्राविड़ व वेसर शैली को ही जानते हैं। इस अध्याय में अनेक शैलियों का उल्लेख़ किया है। तृतीय अध्याय में वास्तुशास्त्र के प्रमुख़ ग्रन्थ तथा उनकी विषय-वस्तु को बताया गया है, इससे विषय की गहराई ज्ञात होती है। चतुर्थ अध्याय में समरांगण-सूत्रधार की विषय वस्तु तथा उसमें वर्णित महत्वपूर्ण अभियान्त्रिकी पक्ष को उद्‌घाटित किया है। पंचम अध्याय में मयमत ग्रन्थ के अभियान्त्रिकी पक्ष पर प्रकाश डाला है। छठवें अध्याय में दोनों प्रमुख़ ग्रन्थों के अभियान्त्रिकी पक्ष का विश्लेषण कर प्रस्तुत किया है, इसी अध्याय में विषय को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया है साथ की वास्तुशास्त्र के अनेक रहस्यों को उद्‌घाटित किया है। सातवें अध्याय में विषय का उपसंहार निष्कर्ष के रुप प्रस्तुत किया है। उसके आगे परिशिष्ट के रुप में संदर्भ सूची, शब्दावली को प्रस्तुत किया है।

समराङ्गण-सूत्रधार एवं मयमत
के आलोक में
अभियान्त्रिकी

विषय सूची

अध्याय क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
१	स्थापत्यवेद परिचय व शोध की उपयोगिता	१/१ से ६६/१
२	स्थापत्य की विभिन्न शैली	१/२ से ११/२
३	वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ व उनकी विषय वस्तु	१/३ से ३५/३
४	समराङ्गण सूत्रधार का अभियान्त्रिकी पक्ष	१/४ से ६८/४
५	मयमत का अभियान्त्रिकी पक्ष	१/५ से ७१/५
६	समराङ्गण सूत्रधार व मयमत का तुलनात्मक अध्ययन	१/६ से ९६/६
७	उपसंहार	१/७ से ७/७
	संदर्भ सूची	
	शब्दावली	

अध्याय १

स्थापत्यवेद परिचय एवं शोध की उपयोगिता

स्थापत्यवेद परिचय तथा शोध की उपयोगिता

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
१.१	स्थापत्यवेद का परिचय	५
१.२	वास्तु शब्द की उत्पत्ति	८
१.२.१	६४ कलाएँ	१०
१.२.२	वास्तुकला का महत्व	१३
१.३	स्थापत्य वेद	१४
१.४	स्थापत्य वेद व चेतना का संबंध	१७
१.४.१	आन्तरिक सज्जा-चेतना के स्तर	१७
	जाग्रत चेतना	१८
	स्वप्न	१८
	सुषुप्ति	१८
	तुरीय	१८
	तुरीयातीत	२०
	भगवत चेतना	२१
	ब्राह्मी चेतना	२१
	प्रज्ञा स्थिर करने में सहायक श्लोक	२२
	वास्तु से स्वाभाविक विकास	२७
	पंच ज्ञानेन्द्रिय व वास्तु	२८
१.५	बाह्य सज्जा	२९
	वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ	२९
	अग्नि पुराण	३०
	मत्स्य पुराण	३१
	मानसार	३१
	मयमत	३१
	समरांगण सूत्रधार	३१

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
	समरांगण सूत्रधार	३६
	विश्वकर्म वास्तुशास्त्र	३२
	विश्वकर्म प्रकाश	३२
	मनुष्यालय चन्द्रिका	३२
	राजवल्लभ	३२
	अन्य ग्रन्थ	३२
१.६	वास्तुपुरुष की उत्पति	३४
१.६.१	अग्निपुराण	३४
१.६.२	मत्स्यपुराण	३४
१.६.३	समरांगण सूत्रधार	३७
१.६.४	विश्वकर्म प्रकाश	३८
१.६.५	विश्लेषण	४०
१.७	वास्तुशास्त्री के लक्षण	४२
१.७.१	शास्त्र	४३
१.७.२	कर्म	४५
१.७.३	प्रज्ञा	४६
१.७.४	शील	४७
१.८	वास्तु का क्षेत्र	४७
१.८.१	अध्यात्म विद्या, गुरु-शिष्य परम्परा	४८
१.८.२	भूगोल-ज्याग्रफी	४८
१.८.३	ज्योतिष-एस्ट्रोनॉमी, एस्ट्रोलॉजी	४९
१.८.४	समाजशास्त्र	५०
१.८.५	जियोलॉजी-कितने प्रकार की भूमि	५१
१.८.६	मिट्टी (मृदा) विज्ञान	५१
१.८.७	नगर नियोजन	५२

क्रमांक विषय पृष्ठ क्रमांक

१.८.८ सैन्य विज्ञान या दुर्ग विज्ञान ५२

१.८.९ अर्किटेक्चर- भवन रचना विज्ञान ५४

१.८.१० इन्द्रध्वज विधान ५५

१.८.११ निघण्टु ५५

१.८.११ भोगविलास ५६

१.८.१२ उपवन ५७

१.८.१३ मान ५७

१.८.१४ पुरोहित-पूजन-पाठ ५८

१.८.१५ जल व्यवस्था-हाईड्रोलिक सिस्टम ५८

१.८.१६ मटेरियल साईन्स ५९

१.८.१७ वनस्पति विज्ञान ६०

१.८.१८ शकुन शास्त्र ६०

१.८.१९ ऊर्जा विज्ञान ६३

१.८.२० शरीर रचना विज्ञान ६४

१.८.२१ कला ६५

१.१ स्थापत्यवेद का परिचय

वेद-वास्तुशास्त्र को हम सबसे पहले, उसके मूल उद्‌गम, स्थापत्य वेद से जोड़ते है। वास्तुशास्त्र, स्थापत्य वेद का एक अंग (भाग) है।

वेद शब्द का अर्थ है ज्ञान।

वेद चार हैं- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद।

ऋग्वेद में देवता (या प्रकृति की शक्ति) की स्तुति या प्रार्थना के मन्त्र हैं, जिन्हें सूक्त कहते हैं।

सामवेद में ऋग्वेद के मन्त्रों के गान की विधि है।

यजुर्वेद में ऋग्वेद के देवताओं को मन्त्रों के साथ आहुति देने की विधि का वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद में जीवन से संबंधित ज्ञान का वर्णन है।

वेद अपौरुषेय हैं, इनकी रचना किसी व्यक्ति ने नहीं की है। ऋषियों ने अपने चेतना में वेद मन्त्रों का साक्षात्कार किया है। शास्त्रीय परम्परा में वेद, श्रुति को प्रमाण माना गया है अर्थात कोई बात का उल्लेख यदि वेद में किया गया है तो वह स्वतः प्रमाण है, उसे किसी भी अन्य प्रमाण (लौकिक) की आवश्यकता नहीं होती है।

प्राचीन समय में जब शास्त्रार्थ होता था तब किसी विषय के समर्थन या पुष्टि के लिए वेद का उल्लेख करना होता था कि यह अमुक वेद की अमुक ऋचा (मन्त्र) है, यह इस उपनिषद में आया है।

वेद क्लिष्ट हैं, उन्हें पढ़ना, समझना सरल नहीं है, इसलिए उपवेद की रचना की गई। **स्थापत्यवेद** अथर्ववेद का उपवेद है।

वेद का समय

इन चारों वेदों में ऋग्वेद को सबसे प्राचीन माना गया है।

अलग-अलग विद्वानों ने वेद कितना पुराना है, इस बात पर अलग-अलग मत या विचार व्यक्त किए हैं।

मैक्समूलर ने वेद का समय ईसा से १३०० वर्ष पहले का माना है तो लोकमान्य तिलक ने ईसा से ८००० वर्ष पहले वेद का समय माना है।

वेद के मुख्य रूप से दो भाग हैं:-

मन्त्र

ब्राह्मण

मन्त्र भाग में देवताओं की स्तुति मन्त्र के माध्यम से की गई है।

ब्राह्मण के तीन भाग हैं:-

ब्राह्मण:-	कर्मकाण्ड को ब्राह्मण भाग कहते हैं।
आरण्यक:-	उपासनाकाण्ड को आरण्यक कहते हैं।
उपनिषद :-	ज्ञानकाण्ड को उपनिषद कहते हैं।

वेद में मन्त्र होता है, जिसे सूक्त कहते हैं। उस मन्त्र का एक देवता होता है। उस मन्त्र को देखने वाला, दृष्टा, एक ऋषि होता है। इस प्रकार वेद में प्रत्येक मन्त्र का एक देवता, एक ऋषि व एक छन्द होता है। छन्द का अर्थ है ढाकने वाला, आच्छादित करने वाला। इसी छन्द से वह देवता ढका हुआ होता है, इसी छन्द में उस मन्त्र या सूक्त को गाने पर या पाठ करने पर उस देवता की शक्ति का उदय या प्राप्ति होती है।

चूँकि वेद देववाणी, संस्कृत भाषा में हैं।(संस्कृत का अर्थ होता है जो संस्कारित या रिफाइन्ड हो।, जिसे शुद्ध कर दिया गया हो, परिमार्जित कर दिया गया हो।) संस्कृत भाषा पूरी तरह नियमों से बंधी हुई भाषा है। जिस प्रकार गणित के सूत्र होते हैं उसी प्रकार संस्कृत भाषा के भी सूत्र होते हैं, वे पाणिनि (एक ऋषि) द्वारा रचित पाणिनी सूत्र कहलाते हैं।

वेद में बताए गए सत्य को सरल कर उसे वेदांग, उपांग,उपवेद, व उपनिषद के माध्यम से कहा गया। उसी बात को, उन्हीं तत्वों को अत्यन्त सरल व जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए इतिहास (रामायण व महाभारत) व पुराणों (कुल १८ पुराण मुख्य हैं, जैसे अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण, आदि) की रचना की गई।

ऋग्वेद में देवताओं की स्तुतियाँ मन्त्रों के माध्यम से की गई है।

उन मन्त्रों को किस प्रकार गाना चाहिए इसका वर्णन सामवेद में किया गया है।

उन मन्त्रों नीदृ यज्ञ सम्बन्धी विद्या का वर्णन यजुर्वेद में किया गया है।

इन्हीं वेदों के उपवेद हैं, जो इस प्रकार हैः-

ऋग्वेद का उपवेद	आयुर्वेद
सामवेद का उपवेद	गन्धर्ववेद
यजुर्वेद का उपवेद	धनुर्वेद
अथर्ववेद का उपवेद	स्थापत्यवेद (वास्तुशास्त्र)

हम जिस वेद का अध्ययन करना चाहते हैं वह स्थापत्यवेद कहलाता है। स्थापत्य वेद नाम का कोई ग्रन्थ अलग से उपलब्ध नहीं है। अलग-अलग ग्रन्थों में वास्तुशास्त्र या स्थापत्य से संबंधित जो सामग्री दी गई है, वही स्थापत्य वेद कहलाता है।

स्थापत्य वेद

यह तो बात हुई वेद इत्यादि की या स्थापत्य वेद के प्रारम्भिक परिचय या इतिहास की। नगर-निर्माण, राजमहल इत्यादि जलाशय, विभिन्न कुण्ड, जल वितरण प्रणाली, विभिन्न शय्यागार इत्यादि के बारे में महाभारत तथा रामायण में वर्णन मिलता है।

ऋग्वेद में भी एक हजार स्तम्भ वाले मंडप का वर्णन मिलता है।

महाभारत एवं रामायण में विभिन्न राजधानियाँ, उपवन, राजमहल, जलाशय का बड़ा ही सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित वर्णन देखने को मिलता है। विभिन्न प्रकार की राजधानियाँ उसमें रहने वाले विभिन्न वर्ण के लोग, विभिन्न दिशाओं में किस प्रकार बसाए गए, विभिन्न सामग्रियों का संग्रह, आपातकालीन स्थिति के लिए संचय, अनेकानेक प्रकार के दुर्ग, सुन्दर एवं सुदृढ़ सुरक्षा व्यवस्था यह सारा वर्णन वास्तुविद्या के सशक्त पक्ष को उजागर करता है।

महाभारत के युद्ध में जिन विभिन्न व्यूहों का वर्णन हमें मिलता है, कि प्रतिदिन पांडव एवं कौरव की सेना एक नए व्यूह की रचना करती थी जिसके अन्दर घुस पाना अत्यन्त ही दुष्कर कार्य था। चक्रव्यूह की रचना के बारे में तो हम सब जानते हैं। इस प्रकार से हम यह कह सकते हैं कि न केवल नगर नियोजन या राजधानी नियोजन बल्कि दुर्ग एवं युद्ध आदि के लिए किए से जाने वाले विभिन्न आकार (व्यूह) आदि का भी बड़ा सटीक ज्ञान प्राचीन काल में अत्यन्त विकसित था।

रामायण में हमें अयोध्या एवं लंका के बारे में बड़ा सुव्यवस्थित नगर नियोजन एवं राजमहल नियोजन का वर्णन मिलता है। इसमें हमें पुष्पक विमान के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है, जो कि अत्यन्त विकसित विमान था।

अनेकानेक विमानों का वर्णन भरतमुनि द्वारा रचित बृहत विमान शास्त्र (यन्त्र सर्वस्व) में मिलता है।

इन प्राचीन ग्रन्थों में न केवल इन विमानों के मटेरियल, उनके ईंधन इत्यादि के बारे में जानकारी मिलती है, बल्कि उसमें बैठनेवाले व्यक्तियों को किस प्रकार का भोजन करना चाहिए, इत्यादि के बारे में विस्तार से बताया गया है।

ग्यारहवीं शताब्दी में राजा भोज द्वारा रचित वास्तुशास्त्र का प्रमुख ग्रन्थ समरांगण सूत्रधार में विभिन्न प्रकार के यन्त्र जैसे जलयन्त्र, लिफ्ट, यान्त्रिक झूले, विभिन्न प्रकार की यान्त्रिक पुतलियों के साथ-साथ अग्नि, वायु ,जल, आदि शक्तियों के द्वारा संचालित यन्त्रों का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ के यन्त्र अध्याय में विमान के बारे में भी बताया गया है। जिसमें पारा के उपयोग ईंधन केरूप में बताया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन समय से ही भारत में वास्तु विद्या अत्यन्त ही विकसित रही है।

१.२ वास्तु शब्द की उत्पत्ति

वास्तु शब्द वस् धातु से बना है, जिसका अर्थ है बसना या रहना। वास्तु शब्द सभी प्रकार के निर्माण का वाचक है। वसन्ति प्राणिनो यत्र इस व्युत्पत्ति से निर्माण कार्य करने योग्य भूमि का नाम ही वास्तु है।

यह वास्तु विद्या बहुत ही प्राचीन है। इस विद्या को ब्रह्मा या शिव ने सबसे पहले गर्ग मुनि को बताया था। भारतीय वास्तु शास्त्र की नवीन कोपलें वेदों में ही फूटना प्रारम्भ हो गई थी। शुल्ब सूत्रों में प्रतिपादित वेदी-प्रकल्पन भारतीय वास्तुविद्या को विस्तृत रूप प्रदान करने में मुख्य मार्गदर्शक रहा है। स्थापत्य या वास्तु को एक ललित कला माना गया है। भारतीय परम्परा में वास्तु को वेदांग से संबंधित कहा गया है। कुछ लेखकों ने चार में से एक माना है।

वास्तु जैसा की नाम से ही स्पष्ट है, वस्तु शब्द से बना है। वास्तु अर्थात् पदार्थ। कोई भी पदार्थ जो पंचतत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी) से बना है। जो स्थान घेरता है, वास्तु के अन्तर्गत आता है।

वेद के अनुसार

प्रागैतिहासिक काल में मानव ने जलाश्रय में वृक्षों पर, बिलों में, खोह में, गुफाओं में विभिन्न प्रकार के जंगली जीवों को अपनी जीवन यात्रा करते देखा होगा। तब किसी बुद्धिजीवी के अन्तर्गत ये विचार जाग्रत हुआ होगा कि वह स्वयं ही अपने जीवन को सुचारु बनाने के लिए व ठण्ड-गर्मी आदि विपरीत स्थिति से बचाने के लिए अपना आश्रय स्थल तलाशने लगा तब सर्वप्रथम उसके मस्तिष्क में वास्तु ने प्रवेश किया। पुरा स्थलों के उत्खनन से पुरावेत्ताओं को अनेक ऐसे स्थल का पता चला जो मानव के प्रथम आवास होने की ओर इशारा करते हैं। वे हमारी सभ्यता व संस्कृति की परिपक्वता को दर्शाते हैं। वैदिक वास्तोष्पति के सूत्रों में यही कामना की गई हैः-

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः।
यत् त्वेमेहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे।
वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व।
वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।। [१]

अर्थात् हे वास्तोष्पते गृहपालक देव ! आप हमें जगाएँ। हमारे गृह में पुत्र-पौत्र आदि द्विपदों, गौ, अश्व आदि चतुष्पदों को नीरोग एवं सुखी करें। जो धन हम आपसे माँगें, वह हमें प्रदान करें। हे वास्तोष्पते ! आप हमारे लिए कल्याणकारी धन का विस्तार-प्रसार करें। हे सोम ! हम आपकी कृपा से गौओं तथा अश्वों के साथ नीरोग रहें। आप हमारा अपने पुत्रवत् पालन करें। हे वास्तोष्पते ! हम आपसे सुखकर, रमणीय और ऐश्वर्ययुक्त स्थान प्राप्त करें। हमें प्राप्त और प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ धन-वैभव की आप रक्षा करें। हमें सदा कल्याणकारी साधनों से सुरक्षित रखें।

---

[१] ऋग्वेद ७, ५४, १-३ एवं तैत्तिरीयसंहिता ३, ४, १०, १ इत्यादि

इस प्रकार का वर्णन हमें वेद आदि में प्राप्त होता है। इसी बात को सांकेतिक रुप में सरल करके वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में कथानकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। समरांगण-सूत्रधार में भवन-जन्म कथा (सहदेवाधिकार) तथा विश्वकर्म-प्रकाश में महाभूत की उत्पत्ति, अन्य ग्रन्थ में अन्धकासुर दैत्य के साथ संग्राम के रुप में वास्तुपुरुष की उत्पत्ति के रुप में मिलता है।

१.२.१ ६४ कलाएँ

भारत वर्ष में विभिन्न कलाओं का विकास हुआ, इन पर अलग-अलग ग्रन्थों की रचना की गई। इन्ही कलाओं को आर्ट कहा है। जब इन कलाओं का अध्ययन अत्यन्त बारीकियों के साथ किया जाता है तब इन्हें फाईन आर्ट या ललित कला कहा गया है। इन कलाओं कोउच्च वर्ग में महत्वपूर्ण स्थान मिला।

श्रीमद् भागवत, विष्णुपुराण, हरीवंश, महाभारत तथा कामसूत्र आदि ग्रन्थों में विस्तार से ६४ कलाओं का वर्णन मिलता है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में ६४ कलाओं[२] का उल्लेख प्राप्त होता है।

इन ६४ कलाओं में वास्तुकला को भी महत्वपूर्ण स्थान मिला है। यहां यदि हम अत्यन्त सूक्ष्म में जाकर विश्लेषण न भी करें तो भी उसके किसी विशेष अंग जैसे पलंग सजाना आदि का वर्णन, हमें इसी विद्या के अन्तर्गत मिलता है।

राम जब बनवास गए तो लक्ष्मण ने झोपड़ी का निर्माण किया था। पर्णकुटिर बनाना एक कला है, आर्ट है।

६४ कलाएं इस प्रकार कही गई हैं:-

१. गीतम्:- गाना बनाना व गाना
२. वाद्यम्:- वाद्य यन्त्रों को बजाना (४-५ प्रकार के)
३. नृत्यम्:- नृत्य करना
४. आलेख्यम्:-चित्र बनाना (पेन्टिंग)
५. विशेषकच्छेद्यम्:-टेटू (मुख पर विशेष प्रकार पेन्ट लगाना)
६. तण्डुलकुसुमवलिविकारा::-चांवल, फूल तथा भोजन को सजाना
७. पुष्पास्तरणम्:-फूलों की क्यारी बनाना

---

[२] विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा मानसार भाग-२ (डॉ. पी. के. आचार्य)

८. दशनवसनाङ्गरागः:- दाँत, कपड़ा तथा शरीर को रंगना

९. मणिभूमिकाकर्मः- जमींन को रत्न आदि से सजाना

१०. शयनरचनम्:-पलंग सजाना (आनन्द के लिए)

११. उद्कवाद्यम्:-जल-तरंग बजाना

१२. उदकाघातः:-फव्वारा बनाना

१३. चित्रयोगाः:- पेन्टिंग बनाना

१४. माल्यग्रथनविकल्पाः:-माला बनाना

१५. शेखरपीडयोजनम्:-सिर को आभूषण से सजाना

१६. नेपथ्यप्रयोगाः:-स्टेज तैयार करना

१७. कर्णपत्रभङ्गाः-कान के पास गाल पर चन्दन आदि लगाना

१८. गन्धयुक्तिः-सुगन्ध तैयार करना

१९. भूषणयोजनम्:- शरीर को आभूषण से सजाना

२०. एन्द्रजालयोगाः:-जगलरी

२१. कौचुमारयोगाः:-स्तन को सजाना

२२. हस्तलाघवम्:-हाथ की सफाई

२३. विचित्रशीकयूषभक्ष्याःविकारक्रिया-खाना पकाना, च्यूंगवाल, चूसने वाले

२४. पानकरसरागवयोजनम्:-पेय (पीनेवाले)

२५. सूचीवातकर्माणिः- सीना, बुनना

२६. सूत्रक्रीडाः- धागे व रस्सी से खेलना

२७. वीणाडमरुकवाद्यानिः- वीणा, डमरु बजाना

२८. प्रहेलिकाः-पहेली बनाना, बूझाना

२९. प्रतिमालाः-प्रतिमा बनाना

३०. दुर्वाचकयोगाः:-मिमिक्री

३१. पुस्तकवाचनम्:- प्रभावशाली ढ़ंग से बोलना, पुस्तक पढ़ना,

३२. नाट्यकाव्यायिकादर्शनः- किसी चरित्र या दृश्य को प्रस्तुत करना

३३. काव्यसमस्यापूरणम्:- अलंकार शास्त्र की पहेलिया सुलझाना

३४. पट्टिकावेत्रवानविकल्पाः-केन का फर्नीचर बनाना

३५. तर्ककर्माणिः-तर्क करना

३६. तक्षणम्:-लकड़ी का कार्य करना

३७. वास्तुविद्याः-भवन आदि का निर्माण करना

३८. रुप्यरत्नपरीक्षाः-सोना व रत्न आदि की परीक्षा

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय ग्रंथालय ★ करौंदी, कटनी (म.प्र.) ★
क्र. 22628

३९. धातुवादः- धातु कला, धातु शुद्ध करना, मिलाना आदि

४०. मणिरागाकरज्ञानम्ः- बहुमूल्य रत्नों को रंगना

४१. वृक्षायुर्वेदयोगाः-वृक्ष तथा वनस्पतियों का ज्ञान

४२. मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः- भेड़, मुर्गाआदि के युद्ध का ज्ञान

४३. शुकसारिका प्रलापनम्ः-पक्षियों के द्वारा संदेश भेजने की विधि

४४. उत्सादन-संवाहन-केशमर्दन-कौशलम् :-हाथ व पैर से शरीर के अंगों की मालिश करना, उसके द्वारा पसीना निकालना।

४५. अक्षरमुष्टिकाकथनम्ः- मुट्ठी में बन्द संदेश को बतलाना

४६. म्लेच्छितविकल्पाः-अपनी बात को सिक्रेट कोड में कहना।

४७. देशभाषाविज्ञानम्ः-विभिन्न देशों की भाषा को जानना

४८. पुष्पशकटिकाः- फूलों की गाड़ी बनाना (सजाना)

४९. निमित्तज्ञानम्ः-शकुनों का ज्ञान

५०. यन्त्रमातृकाः- विभिन्न मोनोग्राम आदि बनाना।(विभिन्न यन्त्र बनाना)

५१. धारणमातृकाः- किसी सुनी हुई बात को याद रखना

५२. संपाठ्यम्ः-पाठ करना

५३. मानसी काव्यक्रियाः- किसी दिए गए शब्द (विषय) से काव्य की रचना करना।

५४. अभिधानकोषः:-किसी डिक्शनरी को बनाना

५५. छन्दोज्ञानम्ः-छन्द का ज्ञान

५६. क्रियाकल्पः-व्याकरण की क्रियाओं का ज्ञान

५७. छलितकयोगाः :-छल करना

५८. वस्त्रगोपनानिः-कपड़े का दिखना बदलना, जैसे सूती कपड़ा रेश्मी दिखे, इत्यादि।

५९. द्यूतविशेषः:-जुआँ खेलना

६०. आकर्षक्रीडाः-पांसा खेलना

६१. बालक्रीडनकानिः-बच्चों के लिए गुड़िया बनाना

६२. वैनयिकीनां विद्यानांज्ञानंः- लोकाचार का ज्ञान (एटिकेट्स)

६३. वैजयिकीनां विद्यानांज्ञानंः-युद्ध कला कौशल

६४. व्यायामिकीनां विद्यानांज्ञानंः- व्यायाम का ज्ञान

इस प्रकार से हम देखते हैं कि ६४ कलाओं में वास्तु विद्या को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

१.२.२ वास्तुकला का महत्व

उपरोक्त वर्णित ६४ कलाएँ वास्तुकला से ही संबंधित हैं। अन्य ६३ कला किसी न किसी रुप में गृहस्थ के लिए ही हैं। गायन, वादन, नृत्य आदि सभी कला गृहस्थ के लिए ही है अतः हम यह कह सकते हैं कि सभी कलाओं में वास्तुकला को विशेष स्थान या सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ विश्वकर्म प्रकाश के प्रथम अध्याय में कहा हैः-

आब्रह्मभुवनाल्लोका गृहस्थाश्रमाश्रिताः।।२।।[3]

(विश्वकर्मा जी कहते हैं कि) ब्रह्म से भुवन तक, जितने भी लोक हैं, वे सब गृहस्थ आश्रम पर आश्रित हैं।

आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत हम जानते हैं कि चार आश्रम होते हैं- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास। अन्य तीन आश्रमीजनों का जीवन गृहस्थ आश्रम पर ही आश्रित है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा सन्यासी, गृहस्थ आश्रम पर ही आश्रित हैं। अतः हम कह सकते हैं कि गृहस्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गृहस्थ, घर में रहता है, गृह में रहता है, गृह निर्माण का विधान, नियम वास्तुशास्त्र या वास्तुकला से संबंधित हैं, अतः हम कह सकते हैं कि वास्तुकला का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

शास्त्रों में मानव जीवन का लक्ष्य चार पुरुषार्थ बताया गया है। वे हैंः- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष।

धर्म का अर्थ होता है- स्वधर्म का पालन करना।

अर्थ का तात्पर्य स्वधर्म का पालन करते हुए अर्थ या धन कमाना।

काम का तात्पर्य है- स्वधर्म का पालन करते हुए जो धन कमाया उससे कामनाओं या इच्छाओं की पूर्ति करना।

मोक्ष का अर्थ हैः- दृष्टा भाव में, साक्षी भाव में स्थित रहना, स्थित रहते हुए कार्य करना।

---

[3] विश्वकर्म प्रकाश

चार पुरुषार्थ में तीन पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए घर की आवश्यकता होती है। धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति के लिए घर की आवश्यकता है।

१.३ स्थापत्य वेद

स्थापत्य वेद का जब हम अर्थ देखने का प्रयास करते हैं, तो वेद शब्द का अर्थ है ज्ञान तथा स्थापत्य का अर्थ है स्थापना संबंधी, स्थापत्य वेद का अर्थ हुआ स्थापना (व निर्माण) संबंधी ज्ञान। जैसे शिल्पकार ने कोई मूर्ति बनाई, तो क्या वह मूर्ति बनाने के बाद, हम तुरन्त उसकी पूजा करते हैं, नहीं। उसकी पूजा, शुभ मुहूर्त में शुभ स्थान पर, मन्त्रोंच्चारण के मध्य, विभिन्न प्रक्रिया के साथ, उस मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा के बाद (साथ-साथ) करते हैं। प्राण प्रतिष्ठा का अर्थ ही यही है कि अब उस शिल्प में, मूर्ति में, प्रतिमा में प्राण आ गए है, अब वह प्राणवान हो गई है, सजीव है।

ठीक उसी प्रकार, किसी भी भवन का निर्माण कराने पर, वह एक मकान बना है, घर नहीं है। जब हम उसमें प्राण प्रतिष्ठा (वास्तुपूजन) करते है तो वह घर होता है। इस प्रकार हमने देखा कि निर्माण के साथ-साथ स्थापना सम्बन्धी ज्ञान को स्थापत्य वेद कहते हैं।

इसके अतिरिक्त, स्थापत्य वेद को इस प्रकार भी परिभाषित किया जा सकता है, कि अव्यक्त को व्यक्त कर उसमें चेतना की स्थापना करना स्थापत्य वेद कहलाता हैं।

जब हम कोई भी निर्माण कार्य करते हैं, चाहे वो किसी घर का निर्माण हो या किसी मूर्ति का, तो सबसे पहले हमारे मस्तिष्क में उसकी कल्पना (आकृति इत्यादि) अव्यक्त रूप में रहती हैं। उसके पश्चात हम उसे कागज आदि पर व्यक्त करते हैं, उतारते हैं। उसके बाद उसे साकार करते हैं, घर का निर्माण करते हैं, मूर्ति बनाते हैं आदि। घर या मूर्ति जब बन जाती है तो यदि घर है तो वास्तुशान्ति के माध्यम से और मूर्ति है तो प्राण प्रतिष्ठा के माध्यम से उसमें प्राणों का संचार करते हैं, चेतना की स्थापना करते हैं। इस प्रकार स्थापत्यवेद अव्यक्त को व्यक्त कर उसमे चेतना को स्थापित करने की विद्या है।

स्थापत्यवेद का क्षेत्र सारा ब्रह्मांड है, सृष्टि की सभी वस्तुओं में अन्तर्सबंध है तथा वे एक दूसरे को प्रभावित करती है।

१.३.२ परिभाषाः-मानसार ग्रन्थ के अनुसार

धरा हर्म्यादि यानं च पर्यङ्कादि चतुर्विधम्।
धरा प्रधानवस्तु स्यात्तत्ज्जातिषु सर्वशः।।२।।
विमानादीनि वास्तूनि वस्तुतं(तः) वस्तुसंश्रयात्।
तान्येव वस्तुरे (चै)वेति कथितं वास्तुविद्बुधैः।।३।।
प्रासादमण्डपं चैव सभाशालाप्रपां(पास्)तथा।
(अ)रङ्गमिति चैतानि हर्म्यमुक्तं पुरातनैः।।४।।
आदिकं स्यन्दनं शिल्पि(न) शिबिका च रथं तथा।
सर्वैर्(सर्व) यानमिति ख्यातं शयनं वक्ष्यते तथा।।५।।
पञ्च(ञ्ज)रं मञ्चली मञ्चं काकाष्टं फलकासनम्।
तथैव बालपर्यङ्कं पर्यङ्कमिति कथ्यते।।६।।
प्रोक्तं चतुर्विधं चैवमधिकारं धरादिभिः(दि च)।
आधारमपि भूतानामादित्याश्च(ज्) जायते मही।।७।।[४]

वास्तु वस्तु चार जातियों (प्रकार) का कहा है- **भूमि, भवनादि, यान, पर्यंकादि**। इन सभी में भूमि प्रधान वस्तु है। भूमि विमान आदि (भवन, यान, पलंग आदि) को आश्रय देने के कारण वास्तव में वास्तु है। वास्तु विद्वान अन्य को विशेष वस्तु कहते हैं।

पुरातन (पूर्व विद्वानों ने) प्रासाद, मंडप, सभा, शाला, प्रपा, रंगमिति (नाट्यशाला) को **हर्म्य** (भवन) कहते हैं।

स्यंदन, पालकी, रथ ये सब **यान** कहलाते हैं।

पंजर, मञ्चली, मंच, तख़्त, काकाष्ट (आठ पैर वाला), कौवे के आकार जैसा पलंग, फलकासन तथा छोटा पलंग ये सब **पर्यंक** (फर्नीचर) कहलाते हैं।

इस प्रकार से भूमि तथा अन्य तीन (भवन, यान व शयन) का वर्णन किया गया है। सूर्य के कारण पृथ्वी सब भूतों के रहने का आधार है।

---

[४] मानसार अध्याय २

१.३.३ मयमत ग्रन्थ के अनुसार

अमर्त्याश्चैव मर्त्याश्च यत्र यत्र वसन्ति हि।
तद् वस्त्विति मतं तज्ज्ञैस्तद्भेदं च वदाम्यहम्।।१।।
भूमिप्रासादयानानि शयनं च चतुर्विधम्।
भूरेव मुख्यवस्तु स्यात् तत्र जातानि यानि हि।।२।।
प्रासादादीनि वास्तूनि वस्तुत्वाद् वस्तुसंश्रयात्।
वस्तुन्येव हि तान्येव प्रोक्तान्यस्मिन् पुरातनैः।।३।।
सभा शाला प्रपा रङ्गमण्डपं मन्दिरं तथा।।६।।
प्रासाद इति विख्यातं शिबिका गिल्लिका रथम्।
स्यन्दनं चैवमानीकं यानमित्युच्यते बुधैः।।७।।
मञ्चं मञ्चिलिका काष्ठं पञ्जरं फलकासनम्।
पर्यङ्कं बालपर्यङ्कं शयनं चैवमादिकम्।।८।।[५]

विद्वानों ने उन सभी निर्माण को, जो स्थाई या अस्थाई (देवताओं तथा मनुष्यों के लिए) हो, को वास्तु कहा है। भूमि, प्रासाद (भवन इत्यादि), यान (वाहन आदि) तथा शयन (फ़र्नीचर, पलंग इत्यादि) ये चार वास्तु के प्रकार कहे गए हैं। इनमें भूमि मुख्य है।

अन्य अर्थात प्रासाद, यान तथा शयन (फ़र्नीचर, पलंग इत्यादि) आदि का आश्रय, भूमि होने के कारण पुरातन ने इसे **मुख्य** कहा है।

सभा (hall), शाला, प्रपा (पानी पिलाने का स्थान), रंगमण्डप, मन्दिर- ये **प्रासाद** (भवन, राजप्रासाद-राजमहल, देवप्रासाद-मंदिर) कहे गए हैं।

विद्वानों ने शिबिका (पालकी, धीमी गति से चलने वाले वाहन), गिल्लिका (संभवतः अन्य प्रकार की पालकी), रथ, स्यन्दन (जल्दी ले जाने वाला, युद्ध रथ आदि) तथा अनीका (अनीकः, चलती हुई सेना की टुकड़ी, युद्ध में आगे रहने वाला वाहन) को **यान** (वाहन) कहा है।

मञ्च (तख़्त), मञ्चिलिका, काष्ठ-पञ्जर (लकड़ी का पिंजरा), फलकासन (लकड़ी का आसन, पटिया), पर्यंक (पलंग) तथा बालपर्यंक (छोटा पलंग, पालना)-ये **शयन** कहे गए हैं।

---

[५] मयमत अध्याय २

१.४ स्थापत्य वेद व चेतना का संबंध

स्थापत्य वेद को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित करते हैं-

(१) आन्तरिक सज्जा (२) बाह्य सज्जा

(१) आन्तरिक **सज्जा-चेतना के स्तर** inner glorification (व्यक्ति-चेतना)

आन्तरिक सज्जा से तात्पर्य व्यक्ति की स्वयं की चेतना के स्तर से है, उसकी मानसिक अवस्था से है, उसके विचारों से है, उसके मस्तिष्क में उठने वाली तरंगों से है। यह व्यक्ति के मन की स्थिति को दर्शाता है।

(२) बाह्य सज्जा (वास्तुशास्त्र) outer glorification ((समष्टि, विश्व- भवन आदि)

बाह्य सज्जा से तात्पर्य व्यक्ति के (शरीर के) बाहर के सारे क्षेत्र से है। यह जगत का क्षेत्र है। व्यक्ति के जीवन पर आसपास के वातावरण, भवन आदि के प्रभाव का अध्ययन बाह्य सज्जा के अन्तर्गत करते हैं। वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में यह बताया गया है कि नगर, घर, कमरे आदि का निर्माण किस प्रकार कराना चाहिए।

१.४.१ आन्तरिक सज्जा-चेतना के स्तर

चेतना के स्तर के द्वारा हम स्थापत्य वेद को वास्तुशास्त्र से अलग करते हैं। जब हम वास्तु शास्त्र में आन्तरिक सज्जा को जोड़ देते हैं तो दोनों मिलकर **स्थापत्य वेद** कहलाते हैं।

आन्तरिक सज्जा से तात्पर्य व्यक्ति के अन्दर, उसके चित्त की अवस्था, मन की अवस्था के विश्लेषण से है। कार्य करते समय व्यक्ति के मन की क्या अवस्था रहती है? उसकी चेतना का स्तर क्या है?

प्रत्येक व्यक्ति की चेतना के स्तर को हम मुख्यतः सात भागों में विभाजित कर सकते हैं-

- जाग्रत (सामान्य)
- स्वपन (स्वप्न)
- सुषुप्ति (गाढ़ी नींद, स्वप्न रहित निद्रा)
- तुरीय
- तुरीयातीत
- भगवत
- ब्राह्मी

जाग्रत चेतना

चेतना के प्रारंभिक तीन स्तर अर्थात् जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से हम सब लगभग परिचित हैं तथा दैनिक जीवन में इसका अनुभव भी करते हैं।

जाग्रत अवस्था जैसा कि हम रोज अनुभव करते हैं, हम सुबह सोकर उठते हैं, स्नान आदि करते हैं, भोजन करते हैं, कार्य करते हैं, खेलते हैं, पढ़ते हैं इत्यादि सारे कार्य हम जाग्रत अवस्था में ही करते हैं।

स्वप्न

जैसा कि नाम से स्पष्ट है स्व-पन अर्थात् अपनापन। जब नींद की अवस्था में हम हों, उस समय हमारे दृश्य पटल या मन या चित्त पर, जो विचार चलते रहते हैं या जो कुछ भी चलता रहता है, उस समय हम जो देखते हैं, उसे स्वप्न कहते हैं। यह अवस्था जाग्रत अवस्था तथा गहरी नींद की अवस्था से भिन्न होती है।

सुषुप्ति

सुषुप्ति की अवस्था, गहरी नींद की अवस्था है। यह स्वप्न रहित, निद्रा की अवस्था है। इस अवस्था के बाद जब व्यक्ति जागता है तो उसे केवल इतना ही बोध शेष रहता है कि वह सुख पूर्वक सोया। कब सोया? कहाँ सोया? कितनी देर तक सोया इत्यादि का बोध नहीं हो पाता है। जीवन में कई बार हम इस स्वप्न रहित निद्रा या सुषुप्ति का अनुभव करते हैं।

केवल इन तीन अवस्थों में ही जो व्यक्ति रहते हैं उनके जीवन पर वास्तु का प्रभाव होता है। आगे उच्च अवस्था का वर्णन किया जा रहा है, इन उच्च अवस्था में रहने वाले व्यक्तियों के जीवन पर वास्तु का दुष्प्रभाव नहीं होता है।

तुरीय

अभी तक हमने जिन तीन अवस्थाओं को देखा, उसका अनुभव व्यक्ति सामान्यतः अपने जीवन में करता है।

तुरीय अवस्था को हम समझने के लिए कह सकते हैं कि यह वह अवस्था है, जिसमें हम सोए न हो तथा मन में कोई विचार भी न हो।

तुरीय अवस्था को हम भावातीत अवस्था के नाम से भी जानते हैं। भावातीत का अर्थ है भाव से अतीत, भाव से परे या भाव से दूर। यह, वह अवस्था है, जब एक विचार या भाव

समाप्त हुआ है तथा दूसरा भाव या विचार अभी उठा नहीं है अर्थात् भाव के बीच के सन्धि स्थल या भाव के बीच की गेप (अन्तराल) का बोध, हमें इससे होता है। यह अवस्था पूर्ण शान्ति की अवस्था है। इस अवस्था में कोई क्रिया नहीं है तथा हम जाग भी रहे हों तथा चित्त पर या मानस पटल पर कोई विचार या चित्र न हो।

हमारे मन या चित्त पर सतत विचार का प्रक्षेपण होता रहता है, विचार चलते रहते हैं। किसी भी कारण से विचार का प्रक्षेपण रुक जाए, मन में कोई विचार न हो तथा हम जाग्रत अवस्था में हों तो वह अवस्था भावातीत अवस्था होती है। उस अवस्था में जाग्रत अवस्था में रहते हुए भी मन में कोई विचार नहीं होता है।

(अब सबसे महत्वपूर्ण व कठिन बात यह है कि पर्दे पर देखने जाओं तो दिखता चित्र है, पर्दा दिखते हुए भी दिखाई नहीं देता है। बगैर पर्दे को देखे आप चित्र को नहीं देख सकते हैं, परन्तु जब आप देखते हैं तो दिखता चित्र है, उसका आधार (पर्दा) नहीं दिखता। जबकि चित्र को सत्ता (आधार) पर्दा दे रहा है और वही दिखता नहीं है। सारे जगत को आप सत्ता दे रहे हैं परन्तु दिख जगत रहा है। यह समझाना थोड़ा मुश्किल है, इसीलिए कहा है कि कई जन्म के पुण्य उदित हों, गुरु कृपा हो तो यह भेद खुल जाता है कि सारे जगत को मैं सत्ता प्रदान कर रहा हूँ। सारे वेदान्त व आगम ग्रन्थों या शास्त्रों का चरम लक्ष्य इसी अवस्था की प्राप्ति है।)

यह जो चेतना का स्तर है, यह सर्वसमर्थ स्तर है। इस चेतना में ही सारी क्रिया की शक्ति है। यह चेतना सब कुछ करने में समर्थ है। सारी प्रकृति, सारा जगत शून्य कहें या ईश्वर कहें या ऊर्जा कहें, से यही आया है। उस ऊर्जा से आया है जो ऊर्जा किसी भी रुप में (मेकेनिकल, इलेक्ट्रिकल, ऊष्मा आदि) व्यक्त नहीं हुई है, अपने शुद्धतम रुप में है।

जब हमारे मन में कोई विचार नहीं होता है, उस समय हमारा मन सर्व समर्थ अवस्था में होता है। वहाँ से हम कोई भी विचार उठा सकते हैं, उसे प्रकृति की शक्तियाँ पूरा करती हैं।

भावातीत अवस्था में जो चेतना होती है, उसे सर्वसमर्थ चेतना (फिल्ड ऑफ ऑल पॉसिब्लिटीस) भी कहते हैं। यह पूर्ण शान्ति की अवस्था है यह पूर्ण विश्राम की अवस्था है तथा इसमें कोई क्रिया नहीं होती है।[६]

---

[६] चेतना-महर्षि महेश योगी जी

तुरीयातीत

चेतना का पाँचवा स्तर, जो कि हर दृष्टि से, व्यावहारिक जगत में, अत्यन्त उपयोगी एवं अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

हम पहले एक उदाहरण देखेंगे, जिसके द्वारा हम यह समझेंगे कि तुरीयातीत अवस्था क्या है?

मान लो कि हमें एक सफेद रंग के लठ्ठे (कपड़ा) को रंगना है, तो हम क्या करेंगे कि किसी बर्तन में उस रंग का (जिस रंग से रंगना है) घोल बना लेंगे तथा उसमें लठ्ठे के कपड़े को कुछ समय के लिए डुबो देगें, जिससे उस कपड़े पर रंग चढ़ जाएगा। उसके बाद उसे धूप में सूखा देगें, सुखाने से कुछ रंग उड़ जाएगा।

उस कपड़े को पुनः, उस घोल में डुबोएगे, जिससे कुछ रंग और उस पर चढ़ जाएगा, फिर पुनः उसे धूप में सुखा देगें। उसका कुछ रंग पुनः धूप में उड़ जाएगा। इस क्रिया को बार-बार करने के बाद, एक अवस्था, ऐसी आएगी कि अब उस कपड़े पर न तो रंग चढ़ेगा तथा न ही धूप में उसका रंग उड़ेगा।

ठीक इसी प्रकार, जब हम भावातीत ध्यान करते हैं, तुरीय अवस्था में रहते हैं, तो हम पूर्ण शान्ति का अनुभव करते हैं। इस अवस्था में कोई क्रिया नहीं होती। ध्यान से उठने के बाद, जब हम इस जगत में क्रिया करते हैं तो जो शान्ति हमें ध्यान से मिली थी, जो स्थिरता हमने ध्यान से पाई थी, उसमें कुछ कमी होती है या उसका क्षय होता है। इस क्रिया की अवस्था के बाद, हम पुनः ध्यान करते हैं (जैसे कपड़े का रंग उड़ा और पुनः डुबोया)। इस प्रकार बार-बार ध्यान कर, क्रिया करने से अर्थात क्रिया और शान्ति (ध्यान), क्रिया और शान्ति, क्रिया और शान्ति, करने से हमें क्रिया में भी शान्ति का अनुभव होने लगता है। कार्य करते समय भी हम शान्ति का अनुभव कर सकते हैं, अर्थात ध्यान की शान्ति, क्रिया करते समय भी, बनी रहती है। जैसे हमने उदाहरण में देखा था कि धूप में सुखाने पर भी, कपड़े का रंग नहीं उड़ता।

तो जब क्रिया के समय भी शान्ति, सजगता बनी रहती है तो, उस अवस्था को तुरीयातीत अवस्था कहते हैं। यही अवस्था साक्षी अवस्था के नाम से भी जानी जाती है।

इस अवस्था में, मुझे क्रोध आया, मुझे पता है। मुझमें कामना जगी, मुझे पता है। मेरा मन खुश है, मुझे पता है। आज मेरा मन दुखी है, मुझे पता है। मैं विचारों का दृष्टा हूँ, मैं विचारों को देखता हूँ, मैं साक्षी हूँ, मैं मन नहीं हूँ। मैं मन का दृष्टा हूँ, साक्षी हूँ।

इस प्रकार की जो अवस्था है, वही तुरीयातीत या साक्षी अवस्था कहलाती है, इस अवस्था तक पहुँचना, प्रत्येक स्थपति या वास्तुशास्त्री के लिए परम आवश्यक है।

जब हम साक्षी भाव से कार्य को करते हैं तो कार्य के परिणाम का बुरा फल हमें नहीं मिलता, कार्य हम पर अपना प्रभाव नहीं डालते, इसे ही निष्काम कर्म कहते हैं।

इस अवस्था में रहने वाले व्यक्ति पर वास्तु अपना दुष्प्रभाव नहीं डालती है।

भगवत चेतना

यह अवस्था द्वैत की अवस्था है, इससे सारा जगत दो के रूप में दिखता है।

परम ऊर्जा, जो अलग-अलग रूप में व्यक्त होती है, भासती है।

ब्राह्मी चेतना

(अद्वैत अवस्था) इस अवस्था में सारा भेद मिट जाता है तथा अहं का भी नाश हो जाता है एवं सब कुछ निर्गुण निराकार हो जाता है।

वास्तु व चेतना के स्तर का विवेचन

इस प्रकार से, यह चेतना के सात स्तर होते हैं। पहले तीन स्तर का अनुभव, प्रत्येक व्यक्ति, अपने जीवन में करता है। वास्तुशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र के नियम, इन तीन अवस्था में रहने वाले, जीने वाले, व्यक्ति के जीवन पर ही लागू होते हैं, वास्तु इन्हें ही प्रभावित करती है।

इन तीन अवस्थाओं के अलावा, अन्य अवस्था (तुरीय, तुरीयातीत आदि) में रहने वाले व्यक्ति पर, वास्तु के दुष्प्रभाव का असर नहीं होता हैं।

इसके अतिरिक्त, एक अच्छा वास्तुशास्त्री बनने के लिए भी, चेतना के पाँचवें स्तर तक जाना परम आवश्यक है, क्योंकि आगे जब स्थपति (वास्तुशास्त्री) के लक्षण या गुण देखेंगे, तब देखेंगे कि स्थपति या वास्तुशास्त्री प्रज्ञावान होना चाहिए, उसकी चेतना का स्तर ऊपर उठा हुआ होना चाहिए।

इस प्रकार से वास्तुशास्त्र के साथ जब हम चेतना विज्ञान को भी जोड़ देते हैं तो दोनों मिलकर स्थापत्य वेद कहलाते हैं।

तुरीय तथा उसके ऊपर की अवस्था प्राप्त करने के लिए, ध्यान, साधना की आवश्यकता होती है। महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय में भावातीत ध्यान करना आवश्यक है, अनिवार्य है। प्रतिदिन सुबह-शाम नियमित रुप से ध्यान किया जाता है। परमपूज्य महर्षिजी ने सिद्धि सूत्र के माध्यम से व्यक्ति के जीवन में पूर्णता का बोध कराया है।

प्रज्ञा स्थिर करने में सहायक श्लोक

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।२।४१।।[७]

हे अर्जुन! निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है, किन्तु अस्थिर विचारवाले विवेकहीन मनुष्यों की बुद्धियाँ बहुत भेदवाली व अनन्त होती है।

इसलिए कार्य करते समय अपनी बुद्धि स्थिर तथा एक होना चाहिए उसमें मल्टीपल ऑप्शन नहीं होना चाहिए।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।१।३।१४।[८]

उपनिषद कहता है कि उठो! जागो! तथा ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उत्तम पुरुष के पास जाओ। जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण व दुस्तर होती है, तत्वज्ञानी लोग उस मार्ग को वैसा ही दुर्गम बताते हैं।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते।१।२।२।[९]

श्रेय व प्रेय (दोनों आपस में मिले हुए) मनुष्य के पास आते हैं। उन दोनों को बुद्धिमान पुरुष भली प्रकार विचारकर अलग-अलग करता है। विवेकी पुरुष प्रेय के सामने श्रेय को ही वरण करता है, किन्तु मूढ योग-क्षेम के निमित्त से प्रेय को वरण करता है।।

कार्य करते समय हमारे पास हमेशा दो विकल्प होते हैं या रहते हैं- एक श्रेय जो हमारे लिए उचित है, श्रेयस्कर है तथा दूसरा प्रेय जो हमें प्रिय है, अच्छा लगता है। यदि हम प्रत्येक कार्य करते समय श्रेय का चयन करते जाएँ तो श्रेष्ठ या उच्चतम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

---

[७] भगवतगीता अध्याय २ श्लोक ४१, [८-९] कठोपनिषद

प्रत्येक कार्य करते समय से हमारा अभिप्राय यह है कि प्रत्येक कार्य फिर चाहे वो भोजन करना हो या टी.वी. पर कोई चेनल देखना हो। कैसे ? जैसे भोजन करते समय यदि हमारा पेट ३ रोटी खाने के पश्चात् भर जाता है तथा अधिक भोजन की आवश्यकता नहीं है, परन्तु भोजन बहुत स्वादिष्ट है या मिठाई आदि अन्य पदार्थ भी भोजन में उपलब्ध होने पर यदि हम अधिक भोजन करेंगे तो नींद या आलस्य आने की आशंका होगी तथा इससे कार्य में बाधा होगी, ऐसा विचार कर अधिक भोजन न करें। अधिक भोजन या मिठाई खाना प्रिय तो हो सकता है परन्तु श्रेयस्कर नहीं। इसी प्रकार मनपसंद टी. वी. चेनल देखना यदि लक्ष्य की ओर बढ़ने में सहायक न हो तो प्रिय हो सकता है श्रेय नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य करते समय हम श्रेय को अपनाते जाएँगे तो लक्ष्य को शीघ्रता से प्राप्त कर पाएँगे।

ज्ञानं चेतनायां निहितम्

सारा ज्ञान हमारी चेतना में ही निहित है।

सारा का सारा ज्ञान हमारी चेतना में ही निहित है, छिपा हुआ है, परन्तु हमने स्वयं उस पर बहुत सारा आवरण कर उसे ढक रखा है। उस आवरण को हटाने पर चूँकि ज्ञान चेतना में ही स्थित है अतः स्वयं प्रकाशित होने लगता है। जैसे महाभारत के समय की एक कथा आती है कि एकलव्य नामक भील बालक गुरु द्रोणाचार्य के पास धनुर्विद्या सीखने जाता है। गुरु द्रोणाचार्य प्रतिज्ञा में बंधे होने के कारण उसे धनुर्विद्या सिखाने में असमर्थ रहते हैं तब वह गुरु की प्रतिमा बनाकर, उसके सामने अभ्यास करता है तथा अर्जुन से भी श्रेष्ठ धनुर्धर बनता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सारा ज्ञान चेतना के अन्दर होने के कारण एकाग्र चित्त वृत्ति या माध्यम मिलने पर प्रकट हो जाता है। इस पाठ्यक्रम में भी हमारा उद्देश्य केवल आवरण हटाना ही है, ज्ञान आपके भीतर होने के कारण स्वयं प्रकाशित हो जाएगा।

योगस्थः कुरु कर्माणि।।२।४८।।[१०]

योगः कर्मसु कौशलम्

भगवान कहते हैं कि योग में अर्थात् समभाव में स्थित होकर कार्य कर, कार्य करते समय लाभ-हानि, जय-पराजय आदि का विचार मत कर। कार्य करते समय दृष्टा भाव में स्थित होकर कार्य कर।

---

[१०] भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक ४८

जब कार्य या कर्म व्यक्ति का स्वभाव बन जाता है तो उसे प्रयत्न (एफर्ड) नहीं करना पड़ता, कार्य स्वभाव होने के कारण स्वतः होता है क्योंकि वह कार्य से ऊपर उठ गया है।

उदाहरण के लिए जैसे दो व्यक्ति हैं एक ही ऑफिस या कार्यालय में कार्य करते हैं, कार्य की समाप्ति के उपरान्त दोनों को किसी पार्टी या समारोह में एक साथ जाना है तथा अभी समारोह प्रारम्भ होने में समय है। एक मित्र दूसरे से कहता है कि चलो मेरे घर चलते हैं थोड़ा फ्रेश हो जाते हैं। घर पहुँचकर व्यक्ति जिसके यहाँ स्वीमिंग पूल भी है, स्वीमिंग के लिए तैयार होकर स्वीमिंग करने लगता है तथा पानी की सतह आराम से चित्त (पीठ के बल) स्थिर अवस्था में लेट जाता है। उसका मित्र भी इस क्रिया को देखकर सोचता है कि चलो मैं भी तैर कर फ्रेश हो जाता हूँ। उसे तैरना नहीं आता है तथा पानी में उतरकर किनारे पर ही रैलिंग को पकड़कर पैर मारकर तैरने का प्रयास करता है तथा थक जाता है, जबकि उसका मित्र १०-१५ मिनिट पानी की सतह पर रहकर फ्रेश होता है। अब देखने की बात यह है कि एक व्यक्ति उस क्रिया से तरोताजा होता है जबकि दूसरे व्यक्ति को वही क्रिया थका देती है ऐसा क्यों? जब तक हम कार्य में निष्णात नहीं हो जाते हैं तब कार्य को करने में हमें अधिक श्रम या बल लगता है, कार्य में निष्णात होने के उपरान्त कार्य अपने वेग से ही संचालित होता है, उसमें अधिक श्रम नहीं लगता, वह स्वभाव बन जाता है, स्वाभाविक हो जाता है। योग में स्थित होकर कार्य करने में अधिक बल नहीं लगता तथा कार्य अधिक कुशलता से सम्पन्न होता है।

क्रिया सिद्धि सत्वे भवति महितां नोपकरणे

बड़े कार्यों में सफलता सत्य से ही होती है, उपकरण से नहीं, ट्रिक से नहीं।

निर्बल के बल राम

कोई भी कार्य करते समय हमें अपना पूरा बल या शक्ति लगाना चाहिए। कार्य करते समय यह विचार नहीं करना चाहिए कि कार्य बहुत छोटा या बहुत ही बड़ा है, इस कार्य को हम किस प्रकार पूरा कर पाएँगे? आइए एक कहानी के द्वारा देखने का प्रयास करें-

एक टिप-टिप या टिटहरी की कहानी है कि समुद्र के किनारे पर होने से उसके अण्डे पानी में बह जाते हैं। वह टिटहरी समुद्र से प्रार्थना करती है कि मेरे अण्डे वापस कर दे, परन्तु समुद्र कहाँ उसकी सुनता। अन्त में वह समुद्र को चेतावनी देती है कि मेरे अण्डे वापस कर दें अन्यथा वह समुद्र का पूरा जल सुखा देगी। प्रत्युत्तर न मिलने पर वह अपनी चोंच

में पानी भरकर दूसरे स्थान पर डालने लगती है, उसके परिवार के अन्य सदस्य उसे समझाते हैं कि ऐसा न करें क्योंकि समुद्र को सुखाना संभव नहीं है परन्तु वह नहीं मानती है एवं अपने कार्य में लगी रहती है। परिवार के सदस्य भी उसके कार्य में सहयोग देने लगते है। धीरे-धीरे सारे पक्षी समुदाय के सदस्य उसको सहयोग देने लगते है। बात पक्षियों के राजा गरुड़ के पास पहुँचती है वे समुद्र को चेतावनी देते हैं कि इसके अण्डे वापस कर दें अन्यथा वे समुद्र का सारा जल सुखा देंगे। कहानी कहती है कि समुद्र ने अण्डे वापस कर दिए।

यहाँ यह बताया गया है कि कार्य करते समय अपना पूरा बल लगाना चाहिए, कार्य के आकार को देखकर भयभीत नहीं होना चाहिए। जब हम कोई अच्छा कार्य करते हैं, अपना पूरा बल लगाते हैं तो प्रकृति की शक्तियाँ हमें सहयोग प्रदान करती है।

एक अन्य कहानी इस प्रकार है-

एक गाय है जिसे चरवाए ने एक घास के क्षेत्र या मैदान में खूँटे से बाँध दिया है इस कहानी में दो परिकल्पना है कि गाय की भूख अनन्त है तथा मैदान में खाने के लिए घास भी अनन्त है। गाय के गले में जो रस्सी बंधी है उसके कारण खाने का क्षेत्र सीमित है। अब गाय अपने घेरे की घास खाने के बाद चिल्लाएँ, रम्भाएँ तो ग्वाला उसकी रस्सी की लम्बाई बढ़ा देगा, उसे अधिक क्षेत्र की घास खाने को मिलेगी। ठीक इसी प्रकार जो कार्य क्षेत्र हमें ईश्वर ने प्रभु में दिया है, उस कार्यक्षेत्र का कार्य हम यदि पूरा बल लगाकर करें तो ईश्वर हमारा कार्यक्षेत्र या संभावनाओं को बढ़ाता है आगे का कार्य सौंपता है, परन्तु हम कार्य में यह सोचने लग जाएँ कि यह कार्य छोटा है, मैं बड़ा कार्य ही करूँगा तो नई संभावनाएँ बनने में अधिक समय लग सकता है।

जो इच्छा करिहौ मन माहीं प्रभु परताप कछु दुर्लभ नाहीं

एक महत्वपूर्ण तथ्य को देखने का प्रयास करते हैं। यह कहा गया है कि जो इच्छा आप करोगे वह प्रभु के प्रताप से पूरी होगी। हम देखते हैं कि हमारी अनेकानेक इच्छाएँ होती है, कई इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं तो अनेक पूरी नहीं हो पाती है। इच्छा कहाँ से करना कि वह पूरी हो। यह कहा है कि संकल्प मात्रेण सिद्ध्यति। आपको केवल संकल्प करना है, प्रकृति की शक्ति उस संकल्प को पूरा करेगी। अब संकल्प कहाँ से करना, कैसे करना इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहते हैं कि जो इच्छा करिहौ मनमाहीं। मन की अन्तर्तम गहराई से

संकल्प उठाना या करना। अब मन की अन्तर्तम गहराई क्या है? वहाँ तक कैसे पहुँच जा सकता है, इसके लिए अपने कोर्स या पाठ्यक्रम में ध्यान की विधि बताई गई है। जिसके द्वारा व्यक्ति उस अवस्था में पहुँच सकता है जहाँ से संकल्प उठते हैं जो कि निर्विकल्प अवस्था है। उस अवस्था में जाकर संकल्प करने से प्रकृति की सारी शक्ति उस संकल्प को पूरा करने में लग जाती है तथा कम से कम समय में उस इच्छा को पूरा करती है।

धर्म की चार बातें

अपने यहाँ किसी भी कार्य को करते समय उसके उद्देश्य को अत्यन्त महत्व दिया गया है। भारत वर्ष में अनेक संस्थाएँ सेवा के कार्य में जुड़ी हुई हैं। इनसे में कई संस्थाएँ विदेश से आकर बड़ी ही कुशलता से सेवा कार्य करती हैं, अस्पताल बनवाती हैं, रोगियों की सेवा, देखभाल, दवा आदि का प्रबन्ध करती हैं। इतना सब कुछ होने के उपरान्त भी यदि उनका उद्देश्य इस सेवा कार्य के पीछे कुछ और हो तो वे संस्थाएँ पूजनीय या सराहनीय नहीं हो पाती हैं, वरन् कई अवसर पर निन्दा का पात्र बनती हैं, ऐसा क्यों? कारण का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि उद्देश्य की ठीक न हो पाना है।

यदि वास्तु सीखते समय या परामर्श देते समय भी हमारा उद्देश्य क्या है इस बात का बड़ा महत्व है। अपने यहाँ वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ के प्रारम्भ में भी यह कहा है कि अब जगत के भले की कामना से वास्तुशास्त्र का वर्णन करते हैं या कहते हैं। तो परामर्श देते समय हमारा उद्देश्य यदि केवल धन कामना है तब तो विचार करना पड़ेगा ?

अथाऽतः सम्प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।। [11]

आइए, एक कहानी के माध्यम से बात को समझने या कहने का प्रयास करते है। एक बार एक बहुत ही पहुँचे हुए (ज्ञानी) सन्त रास्ते से जा रहे थे। उन्हें मार्ग में मरणासन्न अवस्था में एक सिपाही या सैनिक मिला। वे सन्त उस सिपाही से पूछते है कि अब तुम्हारा अन्तिम समय निकट है, क्या धर्म की चार बातें मैं तुम्हें सुना दूँ? इस पर सैनिक कहता है कि हे बाबा! अन्तिम समय में धर्म की बातें सुनकर मुझे कोई लाभ तो होने वाला नहीं है हाँ, मेरा गला प्यास से सूख रहा है यदि आप पानी पिला दें तो बड़ी कृपा होगी। सन्त उसे पानी पिला देते हैं। इसके उपरान्त सैनिक कहता है कि बाबा मेरा सिर लटक रहा है क्या इसका कोई उपाय कर सकते हैं? बाबा पास ही रखा हुआ मिट्टी का ढेला उसके सिर के नीचे

---

[11] विश्वकर्म प्रकाश अध्याय १ श्लोक २४

रख्र देते हैं। इस प्रकार का उपाय करने पर सिपाही आराम का अनुभव करता है। उसके पश्चात बाबा से कहता है कि हे महाराज! मुझे ठण्ड लग रही है क्या इससे बचने का कोई उपाय हो सकता है, बाबा अपनी कफनी (शाल) उतारकर उसे औंढा देते हैं। अब प्यास भी बुझ गई, शरीर भी आराम से है, उसे ठण्ड भी नहीं लग रही है, शरीर में थोड़ी गर्मी भी आ गई है, तब उसकी भावनाएँ जोर मारने लगती है, उसकी आँख्रों से आँसू बहने लगते हैं। वह सन्त से कहता है कि जिस धर्म से आपने यह सब पाया है- दूसरे की तकलीफ, मुसीबत को कम करना, दूसरों को ऊँचा उठाना, उस धर्म की चार बातें मैं भी जानना चाहता हूँ, सुनना चाहता हूँ, तो वास्तु सीखने के पश्चात यदि अपना उद्देश्य लोगों को वास्तु के दोष बताकर भयभीत करना है, डराना है, उनसे केवल पैसा या धन कमाना है, तब तो वास्तु सीखने या सिखाने के उद्देश्य के विपरीत है, निरर्थक है। हाँ यदि इसका उद्देश्य यह है कि इस कोर्स को सीखने के पश्चात् मैं किस प्रकार लोगों का भला कर सकता हूँ, सुझाव द्वारा किस प्रकार उनके उत्थान में सहायक हो सकता हूँ, तब तो उद्देश्य भी ठीक है तथा परमेश्वर के आशीर्वाद से धन भी बरसेगा, क्योंकि क्लाइन्ट (जातक, यजमान) को लाभ होने पर, आपको अधिकाधिक कार्य मिलेगें तथा आपको यश व धन की प्राप्ति होगी।

वास्तु से स्वाभाविक विकास

सभी मनुष्य सुखी होना चाहते हैं। यह मानव का स्वभाव है, उसका एक प्राकृतिक गुण हैं। जैसे पानी का स्वाभाविक गुण है शीतलता। यदि पानी को आग पर कुछ समय के लिए रख दिया जाए तो वह गर्म हो जाता है, लेकिन आग से हटा देने पर, वह पानी अपना स्वाभाविक धर्म, शीतलता होने के कारण धीरे-धीरे ठण्डा हो जाता है। (या कमरे के तापमान पर आ जाता है।)

ठीक उसी प्रकार किसी व्यक्ति का स्वाभाविक गुण या प्रतिभा कैसे प्रकट हों? उसका स्वाभाविक विकास कैसे हो- इसके लिए सबसे आवश्यक व पहली शर्त है कि वह व्यक्ति ऐसे वातावरण, ऐसे परिवेश, ऐसी जगह पर रहे, जो उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति या गुणों के अनुरूप हो, ताकि उस व्यक्ति के सहज गुण प्रकट हो सकें। वह विकास कर सके, उसे उसके कार्य में रुकावट का अनुभव न हो, प्रकृति उसे पूरा-पूरा सहयोग दें।

हम अपने स्वयं के जीवन में देखते हैं कि कभी-कभी हमारे कार्य, थोड़े श्रम से ही सफल हो जाते हैं, जबकि कभी अत्यधिक श्रम करने पर भी उस कार्य में उतनी सफलता नहीं मिलती।

व्यक्ति जिस मकान में रहता है, जहाँ पर काम करता है, उसके जीवन पर इन सभी का गहरा प्रभाव पड़ता है। यह सब उसके निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करते हैं अतः ऐसे भवन में निवास किया जाए जो व्यक्ति के स्वाभाविक विकास में सहायक हों।

पंच ज्ञानेन्द्रिय व वास्तु

हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जिनसे हम ज्ञान गृहण करते हैं। वे इन्द्रियाँ इस प्रकार हैं-आँख, नाक, कान, जीभ व त्वचा।

आँख से हम आकार व रंग देखते हैं। कान से हम सुनते हैं। त्वचा से हम स्पर्श करते हैं, अर्थात ठण्डा-गर्म आदि का अनुभव करते हैं। जीभ से हम स्वाद लेते हैं। हम जो ज्ञान गृहण करते हैं, उसका लगभग ८० से ८५ प्रतिशत भाग हम आँख से ग्रहण करते हैं।

जिस स्थान पर हम रहते हैं, जहाँ कार्य करते हैं, उस स्थान का आकार व रंग, आन्तरिक सज्जा यदि हमारी आवश्यकता व मन के अनुकूल हों तो नेत्र इन्द्रिय सन्तुष्ट हो जाएगी, उस स्थान पर, मन के अनुकूल ध्वनि हो तो कर्ण इन्द्रिय सन्तुष्ट होगी। इसी प्रकार मन के अनुकूल गन्ध हो तो घ्राणेन्द्रिय सन्तुष्ट हो जाएगी तथा उस स्थान का तापमान एवं बैठक आदि की व्यवस्था हमारे अनुकूल हो तो त्वचा अनुकूलता का अनुभव करेगी, अर्थात स्पर्श इन्द्रिय सन्तुष्ट होगी। इस प्रकार, हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ सन्तुष्ट हो जाएँगी। इन्द्रियों के सन्तुष्ट होने पर मन प्रसन्न होगा, जिससे वह मन शीघ्रता से तथा उचित निर्णय लेगा। निर्णय सही हों, सही समय पर हों तो जिस लक्ष्य को निर्धारित किया हो, जो कार्य सोचा है, उसे प्राप्त करने में आसानी होती हैं। लक्ष्य प्राप्त करने से, सफलता प्राप्त करने से जीवन में उत्साह बढ़ता है, अर्थ अर्थात धन की प्राप्ति होती है, जिससे समृद्धि आती है।

धर्म से कमाया गया अर्थ या धन, अपने साथ सुख व शान्ति लाता ही है। जिससे व्यक्ति का उत्तरोत्तर विकास होता है। जिससे, वह सन्तुष्ट होकर सबके साथ मिलजुल कर, भाईचारे का व्यवहार करता है तथा बदले में भी वही पाता हैं, सीधे शब्दों में कहें, तो व्यवहार कुशल होता है, व्यक्ति झुंझलाता नही है, कड़वा नहीं बोलता है। सब उसके विकास में सहायक होते हैं। परिवार और अधिक खुश रहता है, परिवार के सदस्यों की इच्छाओं की पूर्ति होती है, जिससे वे भी खुश रहते है। यह सब इस पर निर्भर करता है कि आपके निर्णय सही हों व सही समय पर हों। निर्णय सही कैसे हों? यह इस बात पर निर्भर करता है कि निर्णय शान्त, स्थिर व प्रसन्न चित्त या मन से किए जाएँ। इसके लिए पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का सन्तुष्ट होना आवश्यक है।

यह उस प्रकार के परिवेश, मकान आदि पर निर्भर करता है, जिसमें व्यक्ति निवास करता है। इस बात पर भी निर्भर करता है कि उसकी दिनचर्या कैसी है? उसका भोजन क्या है, वह किस प्रकार के लोगो के सम्पर्क में है, आदि।

उपरोक्त सभी बातें ही वास्तुशास्त्र का विषय है, वास्तु का क्षेत्र है। इसलिए व्यक्ति वास्तु के अनुरूप निर्माण में रहे, उसके नियमों के अनुसार आचरण करें तो व्यक्ति अपने जीवन में बाधारहित सफलता पा सकता है।

शुभ वास्तु के प्रभाव

सुख	समृद्धि	उत्तम स्वास्थ्य
समस्यारहित जीवन	लक्ष्य की प्राप्ति	उन्नति के अवसर
प्रकृति का सहयोग	मित्रता	भाईचारा
सुचारू जीवन	उत्तरोत्तर सुखी	धर्म, अर्थ,
काम सहित	मोक्ष की प्राप्ति।	

अशुभ वास्तु के दुष्प्रभाव

अशान्ति	समस्याएँ	शत्रुता	जीवन संकट
उन्नति में रुकावट	दुःखी जीवन	रोग	अस्थिरता

१.५ बाह्य सज्जा

वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ

अभी तक हमने वास्तु की आवश्यकता को समझा, उसके महत्व को जाना। अब हम वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ या बाह्य सज्जा को देखने का प्रयास करेंगे।

मानसार ग्रन्थ के अध्याय ६८ मधुच्छिष्टविधान में ३२ ऋषियों के नाम का उल्लेख किया गया है। ये सभी वास्तुशास्त्र के प्रवर्तक ऋषि हैं। इन सबके वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ हैं, जिनमें से अधिकांश अप्राप्य हैं। ऋषियों के नाम इस प्रकार हैं-

विश्वकर्मा च विश्वेच(शः) विश्वसारं(रः) प्रबोधकः।
वृतश्चैव मयश्चैव त्वष्टा चैव मनुर्नलः।।५।।
मानविन्मानकल्पश्च मानसारो बहुश्रुतः।

प्रष्टा च मानबोधश्च विश्वबोधो ना(न)यश्च तथा।।६।।
आदिसारो विशालश्च विश्वकाश्यप ए(श्चै)व च।
वास्तुवोधो महातन्त्रो वास्तुविद्यापतिस्तथा।।७।।
पाराशरीयकश्चैव कालयूपो महाऋषिः(हर्षिश्च)।
चैत्याख्यः चित्रकः आ(श्चा)वर्यः साधकसारसंहितः।।८।।
भानुश्चेन्द्रश्च लोकज्ञः सौराख्यः शिल्पिवित्तमः।
तदेव(ते एव) ऋषयः प्रोक्ता द्वात्रिंशतिः संख्यया।।९।।[१२]

विश्वकर्मा, विश्वे, विश्वसार, प्रबोधक, वृत्त, मय, त्वष्टा, मनु, नल, मानविन, मानकल्प, बहुश्रुत मानसार, प्रष्टा, मानबोध, विश्वबोध ,नय, आदिसार, विशाल, विश्वकाश्यप, वास्तुबोध, महातन्त्र, वास्तुविद्यापति, पाराशरीयक, महाऋषि कालयूप, चैत्य, चित्रक, आवर्य, साधकसार सहित, भानु, इन्द्र, लोकज्ञ तथा सौर जो कि उत्तम शिल्पी हैं। ये ऋषि संख्या में बत्तीस हैं। ये अपने गोत्र से जाने जाते हैं तथा सर्वत्र योग्य हैं।

उपरोक्त ऋषियों में अनेक ऋषि द्वारा रचित ग्रन्थ अप्राप्य हैं। विश्वकर्मा, मय, मानसार आदि ऋषियों द्वारा रचित ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

अब वास्तु के प्रमुख ग्रन्थों की विषयवस्तु को देखें-

अठारह महापुराण प्रसिद्ध हैं। सभी महापुराणों में वास्तु का वर्णन मिलता है तथापि अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण, भविष्य व नारद पुराण में विशेष रुप से वास्तु का उल्लेख किया है।

अग्नि पुराण

अग्नि पुराण में अनेक विषयों (ज्योतिष, वास्तु, तन्त्र, व्याकरण आदि) का समावेश है। अग्निपुराण वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ के रुप में मान्य है। इसमें भूमि चयन, परीक्षण, भवन निर्माण, मुहूर्त, वास्तुशान्ति, दुर्ग निर्माण, प्रतिमा निर्माण, प्रतिमा की प्रतिष्ठा, अभिषेक विधि आदि विषयों को बताया गया है।

---

[१२] मानसार ६८

मत्स्य पुराण

अग्नि पुराण के समान ही मत्स्य पुराण में भी अनेक विषयों का समावेश है एवं वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रन्थ रुप में इसे मान्यता प्राप्त है। इसमें गृहारम्भ मुहूर्त, विधि, स्तम्भ, एकशाला से चतुश्शाल गृह, गृह दोष, द्वार स्थापना, लिंग व पीठ मान स्थापना आदि विषयों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

मानसार

मानसार ग्रन्थ की रचना मानसार नामक ऋषि द्वारा की गई है। इस ग्रन्थ में ७० अध्यायों में ५२७५ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ में वास्तुशास्त्र के सभी पक्षों का विस्तार से वर्णन है। यह पूरा ग्रन्थ वास्तुशास्त्र को ही समर्पित है। इसमें भूमि चयन, परीक्षण एवं अधिग्रहण, भूमि पर देवताओं की स्थापना, हवन, नगर रचना, बहुमंजिला भवन, देवताओं के मन्दिर, गृह की योजना, गृहप्रवेश, प्रतिमा निर्माण एवं स्थापना विधि का वर्णन है।

मयमत

मयमुनि द्वारा रचित मयमत वास्तुशास्त्र का अत्यन्त ही प्रचलित व प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल ३६ अध्याय हैं। मानसार के समान ही इसमें भूमि चयन, परीक्षण, नींव भरने की विधि, नगर व ग्राम की रचना, मंदिर स्थापना, गृह बनाने की विधि का वर्णन है। इसमें ३६ अध्याय तथा ३३०० श्लोक हैं।

समरांगण सूत्रधार

धार के राजा भोज द्वारा १० वीं शताब्दी में इस ग्रन्थ की रचना की गई। यह वास्तुशास्त्र का अत्यन्त ही लोकप्रिय ग्रन्थ है। इसमें कुल ८४ अध्याय तथा ८००० से अधिक श्लोक हैं। विद्वान टी. गणपति शास्त्री जी ने इसका सम्पादन किया तथा गायकवाड़ ओरियन्टल लाइब्रेरी, बड़ौदा ने इसका प्रकाशन किया। सन् १९५६ से ६० के मध्य विद्वान डॉ. द्विजनाथ शुक्ल ने इसका अनुवाद किया। यह ग्रन्थ लखनऊ व देहली से प्रकाशित हुआ।

इस ग्रन्थ में भवन, राजमहल, मंदिर, नगर आदि के निर्माण का वर्णन मिलता है। प्रतिमा बनाने की विधि, रंग, लेप बनाना व लगाना आदि का वर्णन विस्तार से किया गया है। इस ग्रन्थ के यन्त्र अध्याय में विमान का वर्णन भी मिलता है।

विश्वकर्म वास्तुशास्त्र

इस ग्रन्थ में ८४ अध्यायों में ३००० से अधिक श्लोक हैं। वास्तुशास्त्र के सभी पक्षों को विस्तार से बताया गया है। विभिन्न प्रकार के नगर नियोजन तथा विभिन्न कक्षों के नियोजन को विशेष रूप से कहा गया है।

विश्वकर्म प्रकाश

विश्वकर्म जी द्वारा रचित इस वास्तुशास्त्र में १३ अध्याय हैं, १३७४ श्लोक हैं। इसमें भूमि चयन, परीक्षण, मुहूर्त, गृह-पदार्थ, पदविन्यास, शिलान्यास, मंदिर निर्माण, जलाशय, दुर्ग निर्माण के विषयों को विस्तार से कहा है। शल्य ज्ञान, शल्य दोष दूर करने की विधि, गृह दोषों का वर्णन भी किया गया है।

मनुष्यालय चन्द्रिका

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस ग्रन्थ में मनुष्य के घरों के बारे में विवरण दिया गया है। इसमें ७ अध्यायों में लगभग २४० श्लोक हैं तथा गृहों के निर्माण की विधि को विस्तार से बताया गया है।

राजवल्लभ

राज वल्लभ ग्रन्थ में १४ अध्यायों के ४८० श्लोकों में वास्तुविद्या के सभी पक्षों का विस्तृत वर्णन है। इसमें आयादि, द्वार, मुहूर्त, जलाशय आदि विषय पर भी प्रकाश डाला गया है।

अन्य ग्रन्थ

काश्यप शिल्प	(काश्यप ऋषि)
कामिकागम	
अपराजित पृच्छा	
कारणागम	
प्रासाद-लक्षण	
बृहत-संहिता	वराह मिहिर
भविष्य-पुराण	
रूपमण्डन	(सूत्रधार मण्डन)

लिंग-पुराण

वायु-पुराण

वास्तु-मंजरी

वास्तु-मण्डन

वास्तु-विद्या

शिल्प प्रकाश

शिल्प रत्नाकार

वास्तु-सार

वास्तु-सारणी

विश्वकर्मिय-शिल्पशास्त्र

शुक्र-नीति

शुल्व-सूत्र

प्रासाद तिलक

१.६ वास्तुपुरुष की उत्पत्ति

वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन हमें विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होता है। यहाँ हम कुछ ग्रन्थों के आधार पर वास्तुपुरुष की उत्पत्ति को देखने का प्रयास करेंगे।

१.६.१ अग्निपुराण

पूर्वमासीन्महद् भूतं सर्व भूतभयङ्करम्।
तद्देवैर्निहितं भूमौ स वास्तु-पुरुषः स्मृतः।।१।।४०

हयग्रीव बोले- प्राचीन काल में सब प्राणियों को भय-त्रस्त करने वाला एक महान् भूत (प्राणी) था। देवताओं ने उसे भूमि में दबा दिया, वही वास्तु पुरुष के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१.६.२ मत्स्यपुराण

सूत उवाच

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैवविशालाक्षः पुरंदर।।२।।२५२
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोवोःनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती।।३।।
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।
संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा।।४।।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम्।
पुरान्धकवधे घोरे घोररूपस्य शूलिनः।।५।।
ललाटस्वेदसलिलमपतद्भुवि भीषणम्।
करालवदनं तस्माद्भूतमुद्भूतमुल्बणम्।।६।।
ग्रसमानभिवाःःकाशं सप्तद्वीपां वसुंधराम्।
ततोःन्धकानां रुधिरमपिबत्पतितं क्षितौ।।७।।
तेन तत्समरे सर्वं पतितं यन्महीतले।
तथाःपि तृप्तिमगमन्न तद्भूतं यदा तदा।।८।।
सदाशिवस्य पुरतस्तपश्चक्रे सुदारुणम्।
क्षुधाविष्टं तु तद्भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम्।।९।।

ततः कालेन संतुष्टो भैरवस्तस्य चाः वै।
वरं वृष्णीष्व भद्रं ते यद्‌भीष्टं तवानघ।।१०।।
तमुवाच ततो भूतं त्रैलोक्यग्रसनक्षमम्।
भवेयं देवदेवेश तथेत्युक्तं च शूलिना।।११।।
ततस्तत्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः।
स्वदेहेनान्तरिक्षं च रुन्धानं प्रपतद्‌भुवि।।१२।।
भीतभीतैस्ततो देवैर्ब्रह्मणा चाथशूलिना।
दानवासुररक्षोभिरवष्टब्धं समस्ततः।।१३।।
येन यत्रैव चाःःक्रान्तं स तत्रैवावसत्पुनः।
निवासात्सर्वदेवानांवास्तुरित्यभिधीयते।।१४।।
अवष्टब्धेन तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः।
प्रासीदध्वं सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः।।१५।।
स्थास्याम्यहं किमाकारो ह्यवष्टब्धो ह्यधोमुखः।
ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलिः।।१६।।
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्य भविष्यति।
वास्तूपशमनो यज्ञस्तवाऽऽहारो भविष्यति।।१७।।
यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाऽऽहारो भविष्यति।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाऽऽहारो भविष्यति।।१८।।
अज्ञानात्तु कृतो यज्ञस्तवाऽऽहारो भविष्यति।
एवमुक्तस्ततो हृष्टः स वास्तुरभवत्तदा।।
वास्तुयज्ञः स्मृतस्तस्माततःप्रभृति शान्तये।।१९।।[13]

सूत ने कहा- भृगु अत्रि वशिष्ठ विश्वकर्मा मय नारद नग्नजित विशालाक्ष पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति-ये अठारह वास्तुशास्त्र के उपदेशक अथवा प्रणेता माने गये हैं। मत्स्य रुपधारी भगवान ने संक्षेप में मनु के लिये जिस उत्तम वास्तु विज्ञान का उपदेश किया था उसे मैं आप लोगों को बता रहा हूं।

प्राचीन काल में अन्धक के वध के भीषण अवसर पर जब शिव जी ने विकराल रुप धारण किया था तब उनके ललाट प्रदेश से स्वेद का एक भीषण बन्दु पृथ्वी तल पर गिरा

---

[13] मत्स्य पुराण अध्याय २५२

और गिरते ही उससे एक कराल मुखवाला एक अद्भुत प्राणी उत्पन्न हुआ था, उत्पन्न होते ही वह सातों द्वीपों समेत समस्त वसुन्धरा तथा आकाश को निगलने को उद्यत हुआ और पृथ्वी पर गिरे हुए अन्धक के रक्त बिन्दुओं का पान कर गया। ४-७।

उस विकराल प्राणी ने अन्धक के युद्ध में पृथ्वीतल पर गिरे हुए समस्त रक्त का पान किया और जब पान करने पर भी संतुष्ट नहीं हो सका तो सदाशिव भगवान के सम्मुख घोर तपस्या करने लगा। तीनों लोकों का आहार करने समर्थ वह विचित्र प्राणी अत्यन्त भूख से व्याकुल होकर तपस्या करता रहा। कुछ दिनों बाद भैरव ने संतुष्ट होकर उससे कहा - हे निष्पाप -तुम्हारी जो इच्छा हो उसे मांग लो।

उसने कहा-देवदेवेश-मैं यह चाहता हूं कि तीनों लोकों को ग्रस लेने की सामर्थ्य मुझमें आ जाय। त्रिशूलधारी शिव जी ने कहा कि ऐसा ही होगा। ऐसा कहने के उपरान्त वह विचित्र प्राणी अपने विशाल शरीर से स्वर्ग, सम्पूर्ण भूमण्डल एवं आकाश को निगलते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब भयभीत चित्त देवताओं, ब्रह्मा, शिव तथा समस्त दानव, दैत्य एवं राक्षसों ने ऊपर चढ़कर चारों ओर से उसे रोक लिया। जो लोग उसे जहां पर आक्रान्त किये बैठे थे वे वहीं बने रह गये। सभी देवताओं का निवास होने के कारण वह वास्तु नाम से पुकारा गया।।११-१४।।

इस प्रकार रोके गए उस विचित्र प्राणी ने सभी देवताओं से निवेदन किया हे समस्त देवगण मेरे ऊपर आप लोग प्रसन्न हो। आप लोगों से निश्चलित किया गया मैं भला नीचे मुख किए हुए देर तक किस प्रकार अवस्थित रह सकूँगा। उसके इस निवेदन पर ब्रह्मादि देवताओं ने कहा कि वास्तु के प्रसंग में जो बलि दी जाएगी, वैश्वदेव के अन्त में जो आहार चढ़ाया जाएगा वह निश्चय ही तुम्हारा होगा।।

वास्तु की शान्ति के लिए जो यज्ञ होगा वह भी तुम्हें आहार रुप में प्राप्त होगा। यज्ञोत्सव के प्रारम्भ में दी हुई बलि भी तुम्हें आहार रूप में प्राप्त होगी। वास्तुपूजा के न करनेवाले तुम्हारे आहार होंगे।

अज्ञान से किया गया यज्ञ भी तुम्हें आहार रुप में प्राप्त होगा। ब्रह्मादि देवताओं के ऐसा कहने पर वह वास्तु नामक प्राणी परम सन्तुष्ट एवं हर्षित हुआ। तभी से लोक में शान्ति के लिए वास्तु यज्ञ का प्रचलन हुआ।

१.६.३ समरांगण सूत्रधार

समरांगण सूत्रधार, धार के राजा भोज द्वारा, ग्यारहवीं सदी में लिखा गया, वास्तुशास्त्र का, अत्यन्त ही महत्वपूर्ण तथा प्रामाणिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अध्याय छह में सहदेवाधिकार यानी भवन जन्म कथा का वर्णन किया गया है। जिसमें हमें वर्णन मिलता है कि, कैसे पहले देवता व मनुष्य साथ-साथ रहते थे, वे क्षुधा, पिपासा (भूख, प्यास) एवं दुखों से रहित, स्थिर यौवन वाले थे। फिर देवताओं की अवज्ञा से उनकी अर्थात मनुष्यों की वृत्ति में, चेतना में ह्रास (गिरावट), होने लगा। उन्हें क्रमशः भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, वर्षा व शरीर की अन्य आवश्यकता सताने लगी। तब उन्हें भवन की आवश्यकता महसूस हुई तथा वे घर बनाकर रहने लगे।

एकोऽग्रजन्मा वर्णोऽस्मिन् वेदोऽभूदेक एव च।
ऋतुर्वसन्त एवैकः कुसुमायुधबान्धवः।।१२।।
न खेटनगरग्रामपुरक्षेत्रखलादिकम्।
न दंशमशकक्रव्याद्भयं वा न ग्रहादि च।।१४।।
कल्पद्रुमाप्तभोगानां न तेषां प्रभुरप्यभूत्।
पुरास्मिन् भारते वर्षे तेषां निवसतामिति।।१५।।
जगाम सुबहु कालः सुरैः सार्ध सुरश्रियाम्।
अज्ञाततत्प्रभावानां सहसंवाससंभवा।।१६।।
अथैषामभवद् दैवादवज्ञा क्षिदशान् प्रति।
अपूज्यमानस्ते पूज्या सर्वेऽप्यखिलवेदिनः।।१७।।[१४]

केवल एक ही वर्ण था। वेद भी एक ही था। ऋतुओं में एक ही ऋतु, कामदेव का सखा (मित्र) वसन्त था।।

न तो खेट, नगर, ग्राम, पुर, क्षेत्र या खल आदि थे। न दंश से (डसने से), न मच्छर से, न ही मांस खाने वालों से कोई भय था। न ही ग्रह आदि का कोई भय था।

न ही कल्पवृक्ष से प्राप्त होने वालों भोग व ऐश्वर्य का कोई राजा था। इस प्रकार से, प्राचीन भारत वर्ष में, देवों की श्री धारण किए हुए लोग निवास करते थे।।१५।।

उन लोगों को रहते-रहते बहुत समय बीत गया। वे देवताओं के साथ रहते थे, परन्तु वे देवताओं के प्रभाव को नहीं जानते थे, (उससे अपरिचित थे।)

---

[१४] समरांगण-सूत्रधार अध्याय ६

देवताओं के साथ (बहुत समय तक) रहने के बाद वे (मनुष्य) उनकी (देवताओं की) अवज्ञा करने लगे। सब कुछ जानते हुए भी उन लोगों के द्वारा, वे देव, अब पूजित नहीं रहे।(उन्होंने देवताओं की पूजा करना बन्द कर दिया।)

अविनीतेष्वभाग्येषु स शालिस्तुषतामगात्।
प्रवृद्धरजसां तेषां सा पुण्यश्लोकता गता।।३०।।८।।स.सू ६।।

अपनी आत्मा के प्रभाव का ह्रास करने वाले, उन दुर्भागियों का वह शालि-तण्डुल भी सूख गया, उसमें भूसी पैदा हो गई। राजस प्रकृति के प्रकोप के कारण, उनकी पुण्यश्लोकता भी चली गई।।

१.६.४ विश्वकर्म प्रकाश

पुरा त्रेतायुगे ह्यासीन्महाभूतं व्यवस्थितम्।
स्वाप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः।।६।।
तं दृष्ट्वा विस्मयं देवा गताः सेन्द्रा भ(म)यावृताः।
ततस्ते भयमापन्ना(मयमापन्ना) ब्रह्माणं शरणं ययुः।।७।।
भूतभावन भूतेश महभ्दयमुपस्थितम्।
क्व यास्यामः क्व गच्छामो वयं लोकपितामहः।।८।।
मा कुर्वन्तु भयं देवा विगृह्यैतन्महाबलम्।
(मा भयङ्कुरुवो देवाविगृह्येत महाबलम्)
निपात्याधोमुखं(पातयाधोमुखं) भूमौ निर्विशङ्का भविष्यथ।।९।।
ततस्तैः क्रोधसन्तप्तैर्गृहीत्वा तं महाबलम्।
विनिक्षिप्तमधो वक्रं (? वक्त्रं) स्थिता(ताः) तत्रैव ते सुराः।।१०।।[३५]

पहले त्रेतायुग में एक महाभूत व्यवस्थित हुआ। उसने, अपने शरीर से सभी भुवन को ढक लिया। (वह सारे भुवन में व्याप्त हो गया, आच्छादित हो गया। अर्थात् वास्तु का क्षेत्र सारा भुवन हैं।)

इस प्रकार देखकर देवता आश्चर्य को प्राप्त हुए तथा भयभीत होकर इन्द्र के साथ ब्रह्माजी की शरण में गए।

हे ! भूतों को उत्पन्न करने वाले, भूतों के स्वामी (मालिक), बड़ा भय सामने उपस्थित हुआ है। हे ! लोक के पितामह (लोकों को पैदा करने वाले) हम सब कहाँ और किधर जाएं?

ब्रह्मा (सृजन के देवता) ने कहा कि तुम डरो मत, उस महाबली को पकड़कर भूमि पर नीचे की ओर मुख करके गिरा दो तथा शंका से रहित हो जाओगे।

ऐसा सुनकर क्रोध से सन्तप्त देवताओं ने उस महाबली को पकड़ लिया तथा उसे नीचे मुख करके गिरा दिया एवं उस पर स्थित हो गए अर्थात् उसके ऊपर बैठ गए।

तमेववास्तुपुरुषं ब्रह्मा समसृजत्प्रभुः।।
कृष्णपक्षे तृतीयायां मासि भाद्रपदे तथा।।११।।
शनिवारे भवेज्जन्म नक्षत्रे कृतिकासु च।
योगस्तस्य व्यतीपातः करणंविष्टि संज्ञकम्।।१२।।
भद्रान्तरे भवेज्जन्म कुलिके तु तथैव च।
क्रोशमानं महाशब्दं ब्रह्माणं समपद्यत।।१३।।
चराचरमिदं सर्वे त्वया सृष्टं जगत्प्रभो।
विनापराधेन च मां पीडयन्ति सुराभृशम्।।१४।।[३५]

वही वास्तुपुरुष को भाद्रपद महीने के कृष्ण पक्ष की तीज तिथि को वास्तुपुरुष ब्रह्मा जी ने रचा। शनिवार, कृतिका नक्षत्र, व्यतीपात (बड़ा उपद्रव) योग तथा विष्टि करण में वास्तुपुरुष का जन्म हुआ।

उसकी (वास्तुपुरुष की) उत्पत्ति भद्रा के बीच में, कुलिक (कारीगर) मुहुर्त में हुई। वह बहुत अधिक शब्द करता हुआ, ब्रह्मा के सामने उपस्थित हुआ।

उसने कहा कि हे प्रभु (ऐश्वर्य वान) आपने, यह सारे चर (चलने वाला) व अचर (स्थिर) जगत् की रचना की है, किन्तु ये देवता गण बिना अपराध के मुझे कष्ट देते हैं।

वास्तुपूजन कब करें?

वरं तस्मै ददौ प्रीतो ब्रह्मा लोकपितामहः।
ग्रामे वा नगरे दुर्गे वा पत्तनेऽपि वा।।१५।।
प्रासादे च प्रपायां च जलोद्यान तथैव च।
यस्त्वां न पूजयेन्मर्त्यो मोहाद्वास्तुनर प्रभो।।१६।।
अ (?आ) श्रियं मृत्युमाप्नोति विघ्नस्तस्य पदे पदे।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति।।१७।।[३]

---

[३५] विश्वकर्म-प्रकाश अध्याय १

लोकपितामह ब्रह्मा ने उसके वचंन सुनकर प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि जो कोई मनुष्य ग्राम या नगर या किला या बन्दरगाह, महल और प्याऊ, जलाशय व बगीचा बनवाते समय प्रारम्भ में, हे वास्तुपुरुष तुझे मोह के कारण न पूजे, वह दरिद्रता को तथा मृत्यु को प्राप्त होगा तथा उसे हर कदम पर बाधाओं का सामना करना पड़ेगा एवं भविष्य में तेरा आहार बनेगा।

इत्युक्त्वान्तर्दधे सद्यो देवो ब्रह्माविदांवरः।
वास्तुपूजां प्रकुर्वीत गृहारम्भ प्रवेशने।।१८।।[१६]

इतना कहकर ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी तुरन्त अन्तर्ध्यान हो गए। इसलिए घर बनवाना शुरु करते समय तथा प्रवेश के समय वास्तुपूजा करना चाहिए।

१.६.५ विश्लेषण

इस प्रकार से हमने देखा कि चेतना के स्तर में गिरावट के बाद ही वास्तु दोषों का लगना प्रारम्भ होता है या लगते हैं अतः अपनी चेतना का स्तर हमेशा ऊँचा होना चाहिए।

चेतना का स्तर ऊँचा उठाने के लिए शास्त्र के अनुसार आचरण करना, ध्यान करना, चित्त व मन को निर्मल करना व रखना चाहिए। साक्षी भाव में स्थित रहना, सब कुछ ईश्वर की कृपा है, ईश्वर का प्रसाद है, ईश्वर का कार्य है यह मानकर कार्य करना चाहिए।

विश्वकर्म प्रकाश में बताया है कि वास्तुपुरुष की उत्पत्ति सतयुग के बाद त्रेतायुग में हुई। सतयुग का अर्थ हम ऐसे ले सकते हैं कि ऐसा युग जिसमें सतोगुणी चेतना प्रधान होती है। त्रेतायुग से रजोगुणी चेतना प्रधान होने लगी।

इस प्रकार वास्तुपुरुष की उत्पत्ति या भवन में स्थित वास्तु दोषों का मनुष्यों पर प्रभाव रजोगुणी या तमोगुणी चेतना में होता है। सतोगुणी चेतना के व्यक्ति को वास्तु का दुष्प्रभाव नहीं होता है।

सतोगुण-सतोगुणी-जिस काल में इस देह मे (तथा) अन्तकरण और इन्द्रियों में चेतनता और बोध शक्ति उत्पन्न होती है। उस काल में ऐसा जानना चाहिए कि सत्वगुण बढ़ा है।

---

[१६] विश्वकर्म-प्रकाश अध्याय १

रजोगुण- हे अर्जुन रजोगुण के बढ़ने पर लोभ (और) प्रवृत्ति अर्थात् सांसारिक चेष्टा (तथा) सब प्रकार के कर्मो का (स्वार्थ बुद्धि से) आरम्भ (एवं) अशान्ति अर्थात् मन की चञ्चलता और विषय भोगों की लालसा यह सब उत्पन्न होते हैं।

तमोगुण- हे अर्जुन तमोगुण के बढ़ने पर (अन्तःकरणः और इन्द्रियों में) अप्रकाश (एवं कर्तव्यकर्मों में अप्रवृत्ति और प्रमाद अर्थात् व्यर्थ चेष्टा और निद्रादि अन्तःकरण की मोहिनी वृत्तियाँ यह सब ही उत्पन्न होते हैं। (१३-१४) भगवद् गीता

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ में कहा है कि पहले देवता व मनुष्य साथ-साथ रहते थे, मनुष्यों की चेतना का स्तर देवताओं की चेतना के स्तर के समान था। उनके (मनुष्यों के) मन में जो भी संकल्प उठता था वह तुरन्त ही पूरा हो जाता था। उनकी चेतना शुद्ध थी। इस प्रकार की चेतना सत्व गुण प्रधान होती है।

समरांगण सूत्रधार, धार के राजा भोज द्वारा, ग्यारहवीं सदी में लिखा गया, वास्तुशास्त्र का, अत्यन्त ही महत्वपूर्ण तथा प्रामाणिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अध्याय छह में सहदेवाधिकार यानी भवन जन्म कथा का वर्णन किया गया है। जिसमें हमें वर्णन मिलता है कि, कैसे पहले देवता व मनुष्य साथ-साथ रहते थे, वे क्षुधा, पिपासा (भूख, प्यास) एवं दुखों से रहित, स्थिर यौवन वाले थे। फिर देवताओं की अवज्ञा से उनकी अर्थात मनुष्यों की वृत्ति में, चेतना में ह्रास (गिरावट), होने लगा। उन्हें क्रमशः भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, वर्षा व शरीर की अन्य आवश्यकता सताने लगी। तब उन्हें भवन की आवश्यकता महसूस हुई तथा वे घर बनाकर रहने लगे।

इससे हमें, यह पता चलता है कि जब तक मनुष्य की चित्त वृत्ति में ह्रास नहीं हुआ, वे देवता के साथ रहते थे, भूख, प्यास व शरीर की अन्य आवश्यकताओं से मुक्त थे। चित्त की वृत्ति के ह्रास, चेतना के स्तर में गिरावट के बाद, उन्हें शारीरिक आवश्यकताऐं सताने लगी एवं शीत, गर्मी, वर्षा आदि से बचने के लिए भवन की आवश्यकता महसूस हुई और वे भवन बना कर रहने लगे।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि चेतना का, हमारे विचारों का, हमारे आचार का, वास्तु पर अत्यन्त ही गहरा प्रभाव पड़ता है। हमारे पवित्र आचरण से, वातावरण कहें या वास्तु, शुद्ध या पवित्र होने लगता है। इस प्रकार से नियमित पवित्र आचरण से, वास्तु के दोषों को सुधारा जा सकता है। इसलिए अपने यहाँ सिद्ध के चरण घर में डलवाने की परम्परा रही है।

---

[१७] विश्वकर्म-प्रकाश अध्याय १

१.७ वास्तुशास्त्री के लक्षण

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ, के अनुसार वास्तुशास्त्री के चार प्रमुख लक्षण बताए गए हैं जो इस प्रकार हैं-

स्थापत्यमुच्यतऽस्माभिरिदानीं प्रक्रमागतम्।
ज्ञातेन येन ज्ञायन्ते स्थपतीनां गुणागुणाः।।१।।
शास्त्रं कर्म तथा प्रज्ञा शीलं च क्रिययान्वितम्।
लक्ष्यलक्षणयुक्तार्थशास्त्रष्टो नरो भवेत्।।२।।[१८]

अब क्रमप्राप्त स्थापत्य का मैं वर्णन करता हूँ जिसके जानने से स्थपतियों के गुण-दोषों का ज्ञान होता हैं। यह स्थापत्य चार प्रकार का होता हैं शास्त्र, कर्म, प्रज्ञा तथा क्रियान्वितशील अर्थात् आचरण। इस प्रकार लक्ष्य (उदाहरण) तथा लक्षण अर्थात् शास्त्र में निष्ठा रखने वाला नर ही स्थपति होता हैं।

शास्त्र, कर्म, प्रज्ञा व शील।

अब शास्त्र क्या है? कर्म क्या है? प्रज्ञा क्या है? शील क्या है? इसे हम क्रमशः देखने का प्रयास करेंगे। हमारे यहाँ शास्त्रों में एक परम्परा सी जान पड़ती है कि सबसे खास बात, सबसे पहले कही गई। फिर चाहे वो श्रीमद्‌भगवत गीता हो या पतञ्जलि योगसूत्र।

गीता जैसे ही शुरू होती है सबसे पहले भगवान ने दूसरे ही अध्याय में अर्जुन को ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया।

पतञ्जलि योगसूत्र में भी, प्रारम्भ में ही कहा है- **योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।**[१९] अर्थात चित्त की वृत्तियों का रुक जाना ही योग है। इस प्रकार सबसे ख़ास बात, सबसे पहले कह देने की परम्परा, हमारे यहाँ, शास्त्रों में है।

वास्तु के लगभग सभी ग्रन्थों में, चाहे वो मानसार हो या मयमत हो या मनुष्यालय चन्द्रिका हो, सबसे पहले, लगभग पहले या दूसरे अध्याय में स्थपति के लक्षण बताए गए हैं, अतः इनकी महत्ता प्रतिपादित होती हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि एक वास्तुशास्त्री को शास्त्र में बताए गए गुणों से युक्त होना ही चाहिए।

वास्तु शास्त्री के लक्षण

- शास्त्र
- कर्म
- प्रज्ञा
- शील

१.७.१ शास्त्र

शास्त्र के विषय में अध्ययन करने से पूर्व हम शास्त्रीय ज्ञान की महत्ता प्रतिपादन करते हैं। एक स्थपति को वास्तुशास्त्र से संबंधित सभी शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए।

मनुष्यालय चन्द्रिका ग्रन्थ में स्थपति के बारे में इस प्रकार कहा है-

सर्वशास्त्रविहितक्रियापटुः सर्वदावहितमानसः शुचिः।
धार्मिको विगतमत्सरादिको यः स च स्थपतिरस्तु सत्यवाक्।।१२।।१।।[१]

स्थपति वह है जो सभी शास्त्रों में कही गई तकनीकों के क्रियान्वयन में निपुण हो। जिसका मन पवित्र व शान्त हो, जो धार्मिक हो, जो मत्सर आदि दोषों से रहित हो तथा जो केवल सत्य वचन ही कहता हो, ऐसा व्यक्ति स्थपति कहलाता है।

(मत्सर आदि ७ दोष-ईर्ष्या, लालच, दरिद्र, दुष्ट, घमंड, शत्रुता रखने वाला, क्रोध)

मयमत ग्रन्थ में भी स्थपति के लक्षण इस प्रकार बताएं हैं- (अध्याय ५ श्लोक १३ से २४ तक)

स्थपतिः सूत्रग्राही च वर्धकिस्तक्षकस्तथा। प्रसिद्धदेशसङ्कीर्णजातियोऽभीष्टलक्षणः।।१४।।

स्थपतिः स्थापनार्हः स्यात् सर्वशास्त्र विशारदः।
न हीनाङ्गोऽतिरिक्ताङ्गो धार्मिकस्तु दयापरः।।१५।।[२०]

स्थपति प्रसिद्ध देश व संकीर्ण जाति का एवं अभीष्ट लक्षण से युक्त होना चाहिए। वह स्थापना का कार्य भली प्रकार जानता हो एवं सभी शास्त्रों में विशारद (निपुण) हो। वह हीन अंग या अधिक अंग का नहीं हो। वह धार्मिक तथा दयालु हो। वह अभिजात वर्ण (कुलीन परिवार) का हो। वह लालच (लोभ), ईर्ष्या (द्वेष) एवं कमज़ोरी से रहित हो।

अमात्सर्योऽनसूयश्चातन्द्रितस्त्वभिजातवान्।
गणितज्ञः पुराणज्ञः सत्यवादी जितेन्द्रियः।।१६।।

---

[१८] समरांगण-सूत्रधार अध्याय ४४, [१९] पतंजलि योगसूत्र पाद १

वह गणित में निपुण हो, पुराण का ज्ञाता हो, सत्यवादी एवं जितेंद्रिय हो।

चित्रज्ञः सर्वदेशज्ञश्चान्नदश्चाप्यलुब्धकः।
अरोगीचाप्रामादी च सप्तव्यसनवर्जितः।।१७।।

वह चित्रकारी में निपुण हो, सभी देशों की जानकारी रखता हो। वह दानी हो तथा लोभी न हो। वह रोगी व प्रमादी न हो तथा सात व्यसन से रहित हो।

(टिप्पणी- सप्त व्यसन- मृगया, द्यूत, दिवा-स्वपन, परिवाद, स्त्रीयाह, मद, taurya-trika, vrithatya,)

सुनामा दृढबुद्धिश्च वास्तुविद्याब्धिपारगः।
स्थपतेस्तस्य शिष्यो वा सूत्रग्राही सुतोऽथवा।।१८।।
स्थपत्याज्ञानुसारी च सर्वकर्मविशारदः।

वह विख्यात तथा दृढ़ बुद्धि हो एवं वास्तुशास्त्र के समुद्र को लाँघ चुका हो, पार कर चुका हो।

उसकी महत्ता को समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ में इस प्रकार प्रतिपादित किया है-

वास्तुद्वारक्षणान् भूयः सर्वान् जानाति शास्त्रतः।
यस्तु शास्त्रमविज्ञाय प्रयोक्ता स्थपतिर्भवेत्।।६।।
हन्तव्यः स स्वयं राज्ञा मृत्युवद् राजहिंसकः।
मिथ्याज्ञानादहङ्कारी शास्त्रे चैवाकृतश्रमः।।७।।
अकालमृत्युर्लोकस्य विचरेद् वसुधातले।
यस्तु केवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः।।८।।[२१]

भावार्थ-(जो व्यक्ति, शास्त्र को न जानकर, कार्य-संचालक स्थपति का ढोंग करता है, उस राजहिंसक कुस्थपति को, राजा स्वयं, मृत्यु के समान उसे मारे, क्योंकि ऐसा स्थपति, मिथ्या-ज्ञान के कारण अहंकारी है और जिसने शास्त्र में परिश्रम भी नहीं किया है, वह संसार में, लोगों की अकारण मृत्यु के समान विचरण करता है।)

भवन का आकार, विभिन्न अनुपात, द्वार आदि की स्थिति, किस कमरे का निर्माण किस दिशा में करना, पलंग का सिरहाना किस दिशा में होना चाहिए, आदि अनेकानेक बातों का निर्धारण शास्त्र के आधार पर ही किया जाता है, अतः शास्त्रीय ज्ञान होना आवश्यक है।

---

[२०] मनुष्यालय चन्द्रिका अध्याय १

अब मानो कि शास्त्रीय ज्ञान न हो तो क्या हो? उदाहरण के लिए जैसे वास्तु में एक स्थान (पूर्व दिशा व आग्नेय कोण के बीच में, अन्तरिक्ष का पद) होता है उस स्थान पर द्वार बनवाए तो चोरी होने का भय बना रहता है। अब यदि इस बात की जानकारी उस वास्तुशास्त्री को नहीं होगी जिसने शास्त्र का अध्ययन नहीं किया है। (वैसे तो शास्त्र का अध्ययन न करने वाला वास्तुशास्त्री नहीं कहलाता है) तो क्या होगा? जो व्यक्ति ऐसे घर में निवास करेगा उसके यहाँ चोरी होने की आशंका बनी रहेगी, अब इस बात का दुष्परिणाम उसे भोगना होगा। अतः कहा है कि वास्तुशास्त्री को शास्त्र का ज्ञान होना आवश्यक है।

वास्तु में एक स्थान होता है जिसे मर्म स्थान कहते हैं उस स्थान पर स्तम्भ (कॉलम) या दीवार नहीं होना चाहिए, यदि हो तो गृहस्वामी का अनिष्ट (हृदय रोग, मृत्यु आदि) होने की आशंका बनी रहती है। इस प्रकार शास्त्र की जानकारी वास्तुशास्त्री को न होने से दोष का परिणाम गृहस्वामी को भोगना पड़ता है। इसीलिए कहा है कि ऐसे वास्तुशास्त्री को राजा मृत्युदण्ड दे।

अतः एक वास्तुशास्त्री को शास्त्र का ज्ञान होना परम आवश्यक है।

१.७.२ कर्म

स मुह्यति क्रियाकाले दृष्टवा भीरुरिवाहवम्।
केवलं कर्म यो वेत्ति शास्त्रार्थ नाधिगच्छति।।९।।[२२]

जो स्थपति, केवल शास्त्र को जानता है, परन्तु कार्य करने में दक्ष नहीं है, एक्सपर्ट नहीं है, वह कार्य के समय युद्ध को देखकर डरपोक के समान मोह को प्राप्त होता है।

इसके विपरीत जो केवल कार्य को करना जानता है, परन्तु कैसे करना, यह नहीं जानता, वह नेत्रहीन (अन्धे) के समान है।

बचपन में, एक कहानी अधिकांश लोगों ने पढ़ी होगी, एक नेत्रहीन और एक पंगु (लंगड़ा,चलने में असमर्थ) दो दोस्त थे। दोनों मेले में जाना चाहते थे। पंगु, उस नेत्रहीन के कन्धे पर बैठ गया तथा वह नेत्रहीन को रास्ता बताता रहा, इस प्रकार दोनों मेले में पहुँच गए।

यहाँ पंगु, बिना क्रियाज्ञान के केवल शास्त्रीय ज्ञान को ले सकते हैं। केवल शास्त्रीय ज्ञान, केवल थ्योरी का ज्ञान पर्याप्त नहीं है, उसका प्रेक्टीकल पक्ष, उसका प्रायोगिक पक्ष भी स्पष्ट होना चाहिए व कार्य करते आना चाहिए।

---

[२१] **समरांगण-सूत्रधार अध्याय ४४**

नेत्रहीन, कर्म को कहा है। जिसे केवल कर्म करना आता है परन्तु क्या कार्य करना, कैसे करना, उसे नहीं आता है। अतः शास्त्र व कर्म दोनों का ज्ञान आवश्यक है।

एक स्थपति को प्लाट का ले ऑउट बनाना, ड्राईंग बनाना, मर्म निकालना, उस पर गुनिया करना, दिशा ज्ञात करना, पदविन्यास करना, कमरों आदि का आयादि निकालना, कॉलम की स्थिति, उन्हें प्लेस करना, दीवार आदि की चुनाई, आदि अनेकानेक कार्य प्रेक्टीकल करना, उसे स्वयं आना चाहिए।

जैसे कार, साईकल या स्कूटर को चलाने के सिद्धान्त (किताबी ज्ञान या पुस्तकीय ज्ञान) का ज्ञान होना एक बात है परन्तु उसको व्यावहारिक रूप में चलाना एकदम अलग है।

अतः एक स्थपति को, शास्त्र के ज्ञान के साथ-साथ, उसका प्रायोगिक पक्ष अर्थात कार्य का क्रियान्वयन करना व कराना, आना चाहिए।

१.७.३ प्रज्ञा

शास्त्र तथा कर्म का भली प्रकार ज्ञान होने के अलावा, स्थपति की प्रज्ञा (विशेष प्रकार की चेतना, बुद्धि) अत्यन्त विकसित होना चाहिए। उसे प्रज्ञावान होना चाहिए। इस प्रज्ञा को विकसित करने में, ध्यान की जो अपनी विधि है, वह विशेष रूप से सहायक होती है। अतः प्रतिदिन, दोनों समय, नियमित रूप से ध्यान करना परम आवश्यक है।

यह जो वास्तु का विषय है, अत्यन्त ही कठिन पहेली के समान है, अनेक अर्थ को रखने वाला है, गुप्त रहस्यों को अपने अन्दर समेटे है तथा बहुत विस्तारित है, ऐसे विशाल सागर को केवल प्रज्ञा के सहारे ही पार किया जा सकता है।

यह जो वास्तुशास्त्र है, इसमें अनेक रहस्य हैं, इसमें बहुत सी बातों को सांकेतिक रूप से कहा है, कई बार विषय को समझ कर उसे परिस्थिति के अनुसार कार्य रूप में परिणित करना होता है, बदलना होता है। यह सारा कार्य चेतना शुद्ध होने पर ही किया जा सकता है, अतः कहा है कि वास्तुशास्त्री चेतनावान हो, प्रज्ञावान हो।

---

[२२] समरांगण-सूत्रधार अध्याय ४४

१.७.४ शील

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ में कहा है कि-शास्त्र का भी ज्ञान हो, कार्य करने में भी कुशल हो तथा प्रज्ञावान होने पर यदि स्थपति शील से रहित है, उसका आचरण पवित्र नहीं हो तो, वह पूजनीय नहीं हो सकता है। एक स्थपति को, आचरण से भी पवित्र होना चाहिए। इस संसार में शीलवान स्थपति ही पूजनीय होता है। उसका दर्शन ही शुभ माना गया है।

स्थपति का मन, न केवल पवित्र होना चाहिए, बल्कि यह बात उसके आचरण एवं व्यवहार से भी दिखना चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि-

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।।२०।।
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।।२१।।[२३]

इस प्रकार जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्ति रहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिए तथा लोकसंग्रह को देखता हुआ तू (अर्जुन) भी कर्म करने के ही योग्य है। क्योंकि श्रेष्ठ पुरूष, जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसके अनुसार ही आंचरण करते है। वह पुरूष जो कुछ प्रमाण कर देता है, लोग भी उसी के अनुसार आचरण करते हैं।

जैसा आचरण, व्यवहार बड़े लोग करते हैं, उनके भक्त, अनुयायी, शिष्य भी वैसा ही व्यवहार करते हैं। अतः स्थपति शीलवान होना चाहिए।

१.८ वास्तु का क्षेत्र

वास्तुशास्त्र का क्षेत्र कितना व्यापक है? इसका उत्तर पाने के लिए वास्तुशास्त्र के एक अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ समरांगण सूत्रधार के अध्याय तीन को आधार बनाकर देखने का प्रयास करते हैं। इस अध्याय में विश्वकर्माजी के पुत्र जय, उनसे वास्तु संबंधी प्रशन पूछते हैं। जो इस प्रकार हैं-

१.८.१ अध्यात्म विद्या, गुरु-शिष्य परम्परा,

उसके बाद जय नामक पुत्र ने अपने पिता विश्वकर्मा जी की बातें सुनकर, हाथ जोड़कर, मधुर व गम्भीर वाणी में कहा।१

अब जय अपने प्रश्नों का आरम्भ करते हुए विनम्रता से पूछते हैं-

सृष्टि की उत्पत्ति - अध्यात्म विद्या-सृजन परम्परा, तत्व-सांख्य, माया-प्रकृति पुरुष एक से अनेक की उत्पत्ति,

पहले पूर्ण प्रलय में जब एकार्णवी (एक मात्र समुद्र ही था) अवस्था थी, तब (उसमें से) महाभूत, अमरपुरी और नक्षत्र-चक्र कैसे उत्पन्न हुए?[२४]

अब यहाँ ध्यान पूर्वक देखने पर हम पाते हैं कि जय का पहला प्रश्न यह है कि यह सारी सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई? प्रलय की अवस्था में तो सब कुछ एक में ही समा गया, लय को प्राप्त को गया फिर किस प्रकार वह पुनः एक से व्यक्त होने लगा? जैसा कि हम जानते हैं कि सारा का सारा जगत अव्यक्त से आता है, अव्यक्त से व्यक्त होता है उसके पश्चात पुनः उसी में विलीन हो जाता है। जब यह अव्यक्त से व्यक्त होता है तो हम कहते हैं कि सृष्टि हुई, जब व्यक्त से अव्यक्त होता है विलीन होता है तो हम कहते हैं कि प्रलय हुई, लय हुआ। जैसा कि हम देख चुके हैं कि पंचमहाभूत से ही सारा जगत उत्पन्न हुआ है तथा पुनः उसी में विलीन हो जाता है।

जय के प्रश्न से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उसे यह ज्ञात है कि अव्यक्त अवस्था से ही पहले महाभूतों की उत्पत्ति हुई। उसके बाद अमरपुरी (देवताओं के रहने के स्थान) तथा नक्षत्र (तारों के समूह) आदि बने।

पंचमहाभूत-आकाश, वायु, तेज (अग्नि), जल व पृथ्वी।

१.८.२ भूगोल-ज्याग्रफी,

पृथ्वी का आकार क्या है? इसका आधार क्या है? इसका प्रमाण क्या है? इसका विस्तार कितना है ? इस पृथ्वी की परिधि कितनी है तथा इसका बाहुल्य कितना है?[१]

---

[२३] **भगवत-गीता अध्याय ३**

यह वास्तुशास्त्र का ग्रन्थ पृथ्वी (मृत्यु लोक) के लिए लिखा गया है तो जय आगे पूछते हैं कि इस पृथ्वी जिस पर हमें निर्माण कार्य करना है, उसका आकार, परिमाण, परिधि कितनी है। इसका विस्तार कितना है आदि।

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी देखें तो यह ग्रन्थ दसवीं शताब्दी का है। इस ग्रन्थ की रचना राजा भोज ने की है। उस समय इस बात का ज्ञान था कि यह पृथ्वी गोल है, क्योंकि यहाँ प्रश्न करते हुए जय कहते हैं कि इस पृथ्वी की परिधि कितनी है?

इस पृथ्वी पर कितनी ऊँचाई, चौड़ाई व लम्बाई के पहाड़ हैं? इस पर कितने प्रसिद्ध वर्ष (देश, जैसे भारत वर्ष) हैं? कितने द्वीप, कितनी नदियाँ व समुद्र हैं?[१]

प्रश्न आगे बढ़ाते हुए पूछते हैं कि इस पृथ्वी जिस पर हमें निर्माण कार्य करना है, उस पर जो अलग-अलग पहाड़ स्थित हैं, उनकी लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई कितनी है? इस पर चारों ओर जल से घिरे हुए कितने द्वीप हैं? इस पृथ्वी पर कितने समुद्र, नदियाँ व अलग-अलग देश (वर्ष, राष्ट्र) हैं?[२४]

उपरोक्त सभी प्रश्नों से यह बात तो बिल्कुल ही स्पष्ट हो जाती है कि इस ग्रन्थ के रचना काल में इतना ज्ञान था कि पृथ्वी पर एक से अधिक या कई समुद्र हैं, जलवायु व अन्य आधार पर अलग-अलग राष्ट्र हैं, विभिन्न नदियाँ है? पहाड़ की लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई आदि के माध्यम से प्रश्नकर्ता जानना चाहते हैं कि इन पहाड़ों का प्रभाव कितने बड़े भू-भाग को प्रभावित करेगा? जैसे हिमालय से जो बर्फीली हवाएँ चलती हैं उनके रास्ते में कौन-कौन से कितने विशाल पर्वत आते हैं तो उन हवाओं का प्रभाव किस प्रकार का होता है आदि-आदि। राष्ट्र के बीच मार्ग आदि बनाते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना होगा आदि-आदि? आगे जब विश्वकर्माजी इन प्रश्नों का उत्तर देंगे, तब बातें और भी स्पष्ट रुप से सामने आएँगी। अस्तु।

१.८.३ ज्योतिष-एस्ट्रोनॉमी, एस्ट्रोलॉजी

पृथ्वी के ऊपर अर्थात् अन्तरिक्ष में सूर्य, चन्द्रमा व नक्षत्र आदि की अलग-अलग क्या गति है? इनकी एक-दूसरे से दूरी कितनी है?

---

[२४] समरांगण-सूत्रधार अध्याय ३ श्लोक ४

अन्तरिक्ष में इस ज्योति चक्र का आधार क्या है? कौन इस चक्र को घुमाता है? इस लोक में ऊपर व नीचे, महाभूत किस प्रकार अपनी स्थिति में है (अपनी स्थिति को धारण किए हैं)?

सृष्टि निर्माण तथा पृथ्वी के मान आदि के प्रश्न के उपरान्त पृथ्वी पर किस प्रकार अन्य ग्रह-नक्षत्र आदि का प्रभाव उत्पन्न होता है, इसके बारे में है। उन्हें इतना मालूम है कि सूर्य आदि ग्रह, नक्षत्र, तारे व चन्द्रमा आदि ज्योति चक्र हैं, ये आपस में कितनी दूर हैं, इनकी गति क्या है ? इसके आधार पर पृथ्वी के विभिन्न भागों पर पड़ने वाले प्रभाव को जाना जा सकता है।

(जैसे आज हम जानते हैं कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर की परिक्रमा एक वर्ष में पूरी करती है, तब हम कहते हैं कि ऋतु चक्र एक वर्ष में पूरा होता है।)

१.८.४ समाजशास्त्र

प्रारम्भ में युगधर्म की व्यवस्था के अनुसार कौन-कौन सी लोकवृत्ति थी, लोकाचार थे? पहला राजा, ग्रह (गृही) व वर्णी कौन था?[१]

उसके आगे उन्होंने प्रश्न किया कि इस पृथ्वी पर प्रारम्भ में युग के अनुसार किस प्रकार की व्यवस्था थी, युगधर्म के अनुसार लोगों का आचरण किस प्रकार का निर्धारित किया गया। सबसे पहले राजा किसे बनाया गया? उस समय वर्ण व्यवस्था की स्थापना किस प्रकार की गई। उन-उन वर्णों के कार्यों का विभाजन किस प्रकार किया गया।

यहाँ हमें ग्रन्थ में सामाजिक व्यवस्था का वर्णन मिलता है, कोई भी निर्माण कार्य प्रारम्भ करने से पहले जिस समाज के लिए निर्माण कार्य किया जाएगा, उस समाज की सामाजिक व्यवस्था की जानकारी आवश्यक है। लोकाचार, लोगों के व्यापार-व्यवसाय, उनकी सामाजिक जानकारी प्राप्त कर अलग-अलग लोगों के लिए अलग–अलग प्रकार की व्यवस्था करना, एक सफल वास्तुविद् का कर्तव्य है। व्यापार आदि के लिए पत्तन या व्यापारिक नगरियों का निर्माण आदि अनेक बातों का ध्यान रखना होता है।

अपने यहाँ काल (समय को) चार भागों में कहा गया है (बाँटा गया है)-सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग व कलयुग।

---

[२५] समरांगण-सूत्रधार अध्याय ३ श्लोक ५, ६, ७, ८, ९

इन काल के अनुसार (समय के अनुसार) अलग-अलग वृत्तियाँ मुख्य रूप से रहती हैं। जैसे सतयुग में सतोगुणी चेतना प्रधान रुप से रहती है। त्रेता तथा द्वापुर युग में रजोगुणी चेतना प्रधान रुप से रहती है। आज कलयुग में रजोगुणी तथा जैसे-जैसे कलयुग आगे बढ़ेगा तमोगुणी चेतना प्रधान होगी।

सतोगुणी चेतना-जिस समय शरीर मे चेतनता व विवेकशक्ति उत्पन्न हो, उस समय सतोगुणी चेतना होती है।

रजोगुणी चेतना-जब लोभ, स्वार्थ बुद्धि, अशान्ति, विषय भोग की लालसा हो तब रजोगुणी चेतना प्रधान होती है।

तमोगुणी चेतना-अन्तःकरण व इन्द्रियों में लापरवाही, कर्तव्य की उपेक्षा तथा मोह हो तब तमोगुणी चेतना प्रधान रुप से रहती है। (भगवत् गीता अध्याय १४ श्लोक ११-१३)

संगति-लोकाचार, वर्णाश्रम व्यवस्था के पश्चात उनका अगला प्रश्न जिस स्थान पर निर्माण कार्य करना है, उस स्थान की जलवायु तथा मिट्टी के संदर्भ में हैं।

१.८.५ जियोलॉजी-कितने प्रकार की भूमि

इस पृथ्वी पर कितने देश व कितने प्रकार की भूमि निर्धारित गई है, बताई गई है? जनपदाश्रय (जिला) कहाँ व किस प्रकार बसाना चाहिए?[२]

१.८.६ मिट्टी (मृदा) विज्ञान

नगर के लिए शब्द (आवाज), स्पर्श, गन्ध, वर्ण (रंग) व रस (स्वाद) आदि व्यक्त चिह्न के अनुसार कौन सी भूमि शुभ है तथा कौन सी भूमि अशुभ बताई गई है?

विश्लेषण-सृष्टि की उत्पत्ति, पृथ्वी का आकार आदि, पृथ्वी पर ग्रह-नक्षत्र आदि का प्रभाव तथा युगधर्म, आश्रम व्यवस्था को जानने के उपरान्त अब नगर निर्माण की प्रक्रिया के सम्बन्ध में अपने प्रश्नों को प्रारम्भ करते हुए जय पूछते हैं कि जिन स्थान पर नगर का निर्माण कार्य करना है, उस स्थान की भूमि का जब हम चुनाव करेंगे तो हम अपनी पाँच ज्ञान इन्द्रियों के आधार पर कैसे जाने की भूमि नगर बसाने के लिए उपयुक्त है या नहीं?

यहाँ भी हम देखते हैं कि जय के प्रश्न से यह स्पष्ट है कि उन्हें मालूम है कि भूमि का चयन भूमि के रंग, गन्ध, स्वाद, स्पर्श तथा आवाज के आधार पर करते हैं।

पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ-आँख, नाक, कान, जीभ व त्वचा। इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों से हम ज्ञान ग्रहण करते हैं।

एक और महत्वपूर्ण तत्व उभर कर सामने आता है कि निर्माण के क्रम में उन्होंने पहला प्रश्न नगर नियोजन का किया, इससे यह स्पष्ट है कि नगर की रचना ठीक प्रकार से होने पर ही उसमें निवास करने वाले सभी जन सुखी होंगे।

१.८.७ नगर नियोजन नगर किस प्रकार बसाना-राजनीति व वास्तु

किस विधि-विधान से राजधानी बनवाना चाहिए? उचित प्रकार से राजधानी का निर्माण करने से क्या शुभ परिणाम प्राप्त होते हैं तथा अनुचित प्रकार से बसाने पर क्या अशुभ फल प्राप्त होते हैं?[२]

विश्लेषण-राजधानी वह स्थान है जहाँ राजा स्वयं रहता है। राजा राजधानी में रहकर सारे राज्य का संचालन करता है। व्यवस्था, प्रशासन, राज्य के कुशल संचालन आदि अनेक दृष्टि से राजधानी का उचित स्थान पर होना अत्यन्त आवश्यक है। उचित स्थान पर होने के साथ-साथ उसकी पूरी प्लानिंग (नियोजन) भी शास्त्र के अनुरुप होना चाहिए। जैसा कि हमने देखा कि नगर का निर्माण उचित प्रकार से होने पर नगर के सभी निवासियों को उसका लाभ प्राप्त होता है, उसी प्रकार राजधानी के अनुचित प्रकार से निवेश होने पर उसका दुष्परिणाम पूरे राज्य को भोगना पड़ता है। अतः पूरी राजधानी की निर्माण कार्य विधि-विधान तथा उचित लक्षणों से युक्त होना चाहिए, इसी का प्रतिपादन इस श्लोक में किया गया है।

१.८.८ सैन्य विज्ञान या दुर्ग विज्ञान-

दुर्ग (किला) कितने प्रकार के होते हैं? दुर्ग-कर्म करने का क्या क्रम है? कौन से राजधानी के लिए कौन-कौन से आकार शुभ हैं तथा कौन-कौन से आकार अशुभ हैं?

विश्लेषण-दुर्ग शब्द का अर्थ है अप्राप्य, कठिन। सामान्य रुप से दुर्ग का अर्थ है किला। शत्रु की सेना से रक्षा के लिए दुर्ग का निर्माण किया जाता है। किले में रहने पर राजा तथा प्रजा सुरक्षित रहते हैं तो यहाँ जय का अगला प्रश्न है कि हे पिता! दुर्ग कितने प्रकार के होते हैं, कहाँ उन्हें बनवाना चाहिए? दुर्ग बनवाने का क्रम क्या होना चाहिए? पहले बाहर की दीवार बनवाकर निर्माण कार्य करना चाहिए या पहले अन्दर निर्माण कार्य करते

हुए बाहर की ओर निर्माण कार्य करना चाहिए आदि। साथ ही वह पूछते हैं कि राजधानी बनवाने के लिए कौन-कौन से आकार शुभ हैं? कौन-कौन से आकार का प्रयोग नहीं करना चाहिए ?

कश्चात्रानुक्रमविधिः प्रमाणैरुपपादितः।
प्राकारगोपुराट्टालपरिखावप्रकर्म च।।१४।।

कौन सी अनुक्रम (sequence) विधि बताई गई है तथा उसका प्रमाण व रूप किस प्रकार कहा गया है। प्राकार (घेरे की दीवार), गोपुर (नगर आदि का मुख्य प्रवेश द्वार), अट्टालक (अटारी), परिखा (खाई) व वप्रकर्म (बाहरी दीवार) की क्या विधि बताई गई है?[३०]

इन सबका निर्माण किस क्रम से करना चाहिए। दुर्ग, नगर आदि में घेरे की दीवार, प्रवेश द्वार, वह स्थान जहाँ से रास्ता नगर की ओर जाता है, नगर के सुरक्षा के लिए चारों ओर जो खाई बनाई जाती है वह तथा ऊँची अटारी बनाने की क्या विधि है?१४

दुर्ग आदि का निर्माण करते समय कई बातों का ध्यान रखा जाता था। दुर्ग इस प्रकार बनाया जाता था कि शत्रु की सेना उस पर कब्जा न कर सके। इसलिए सबसे पहले तो दुर्ग का प्रवेश स्थान ही दुर्गम बना दिया जाता था। इसके लिए दुर्ग के चारों ओर खाई खोदी जाती थी, यह खाई काफी गहरी होती थी, इसमें या तो कीचड़ होता था या पानी जिसमें कई जीव मगर आदि रहते थे या इस प्रकार का रहता था कि उसमें ज्वलनशील पदार्थ (लकड़ी) आदि डालकर आग लगाई जा सके। इस प्रकार से दुर्ग का प्रवेश दुर्गम होता था।

इसके अतिरिक्त निगरानी रखने के लिए चारों दिशाओं में ऊँचे-ऊँचे स्थान बनाए जाते थे, जैसे आजकल वॉच-टॉवर बनाते हैं। दुर्ग में सामान्यतः एक तथा नगर होने पर एक या एक से अधिक प्रवेश द्वार होते थे। इन प्रवेश द्वारों पर नगर में प्रवेश करने वालों की जानकारी अंकित की जाती थी।

यहाँ जय का प्रश्न इन्हीं सबके बारे में हैं, वह यह भी जानना चाहते हैं कि यह सारा निर्माण किस प्रकार तथा किस क्रम से करना चाहिए।

१.८.९ अर्किटेक्चर- भवन रचना विज्ञान

नगर नियोजन करते समय नगर के विभिन्न विभाग निर्गम-द्वार, प्रतोली, अट्टालक आदि, रथ के लिए मार्ग, चौराहे तथा (अन्य) मार्ग की रचना किस प्रकार करना चाहिए?

नगर, ग्राम तथा खेट के निवेश को भूमि के प्रमाण तथा उसके संस्थान एवं दिशाओं के रास्तों के आधार पर किस प्रकार अलग-अलग करना चाहिए?

विश्लेषण-यहाँ जय के प्रश्न नगर नियोजन के सम्बन्ध में हैं कि नगर आकार आदि के भेद के अनुसार कितने प्रकार के होते हैं? तथा अलग-अलग प्रकार के नगर को किस प्रकार बसाना चाहिए। उसमें कितने मार्ग होना चाहिए, उन मार्गों की चौड़ाई आदि कितनी रखना चाहिए।

नगर के भीतर, पहले किन-किन द्रव्यों को किस क्रम से रखना चाहिए? किस स्थान पर इन्द्र-ध्वज का निवेश (रखना, स्थापित करना) करना चाहिए?

राजा व प्रजा के भले के लिए प्रति वर्ष इन्द्र-ध्वज का महोत्सव, किस प्रकार करना चाहिए?

विश्लेषण-आगे जय पूछते हैं कि नगर में निर्माण का क्रम क्या होता है? पहले किन-किन चीजें को बनवाना चाहिए? यहाँ एक और महत्वपूर्ण प्रश्न उठाते हुए जय पूछते हैं कि हे पिता! आप बताइए कि इन्द्रध्वज को बनवा कर कहाँ स्थापित करना चाहिए तथा प्रत्येक वर्ष उस इन्द्रध्वज का महान उत्सव किस प्रकार मनाना चाहिए?१८

इन्द्रध्वज-यह एक प्रकार का ध्वज है, जिसे बनाकर विशेष मन्त्रों से अभिमंत्रित किया जाता है। देवताओं के गुरु बृहस्पति द्वारा ब्रह्मा जी से राक्षसों पर विजय का उपाय पूछा तो उन्होंने ध्वज का निर्माण करने के लिए कहा। शत्रुओं पर विजय की इच्छा से इन्द्र ने अपने चित्त से यन्त्रस्थित ध्वजा को बना कर शत्रुओं को मोह कर विजय प्राप्त की, वही इन्द्रध्वज कहलाया।

१.८.१० इन्द्रध्वज विधान-लकड़ी वनस्पति विज्ञान

महोत्सव-पूजन, कर्मकाण्ड का ज्ञान पूजन पद्धति

नगर में भीतर व बाहर, किन-किन गृहों में, किन-किन दिशाओं में कौन-कौन से देवताओं की स्थापना करना चाहिए?

विश्लेषण-नगर नियोजन में देवता की स्थापना अत्यन्त ही महत्वपूर्ण कार्य है? नगर की प्रमुख दिशा (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम व उत्तर) व उपदिशा (मुख्य दिशाओं के बीच की दिशा, कोण) में, नगर की सीमा के अन्दर तथा बाहर की ओर देवताओं की स्थापना की जाती है। यहाँ जय का प्रश्न है कि कौन से देवता की स्थापना नगर के अन्दर की ओर करना शुभ होता है? तथा कौन से देवता की स्थापना नगर से बाहर की जाती है? नगर के भीतर जिन देवताओं की स्थापना करना है तो कृपया हमें यह बताइए कि नगर के कौन से भाग में किस देवता को स्थापित करें?

शुभ स्थान पर देवताओं की स्थापना करने से नगर को सुख, समृद्धि की प्राप्ति होती है, अशुभ स्थान पर स्थापित होने पर अशान्ति, उपद्रव आदि होते हैं। यहाँ केवल सांकेतिक रूप से (मोटे तौर पर) बताना चाहेंगे कि उग्र देवता की स्थापना नगर से बाहर की ओर की जाती है, जिससे नगर सुरक्षित रहता है। सौम्य देवता की स्थापना नगर के अन्दर यथा स्थान की जाती है जिससे नगर समृद्धि को प्राप्त करता है।

१.८.११ निघण्टु- मूर्तिकला-प्रतिमा विज्ञान, रंग प्रभाव, भोजन प्रभाव

उन देवताओं के वाहन, परिवार, रंग, रूप, आभूषण, वस्त्र, आयु, वेष, आयुध व ध्वज (झंड़ा) किस प्रक़ार के होते हैं?२०

मंदिर निर्माण के संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रश्न के रुप में जय पूछते हैं कि इन अलग-अलग देवताओं के परिवार के सदस्य के रुप में कौन-कौन से अन्य देवी-देवता होते हैं? मंदिर में मुख्य देवता की स्थापना परिवार के सदस्य के सहित की जाती है। उदाहरण के लिए जब मुख्य रूप से शिवजी का मन्दिर बनाया जाता है तो शिवजी के साथ गौरी, गणेश जी, कार्तिकेय स्वामी आदि की स्थापना की जाती है। देवता के साथ में उनका वाहन भी बनाया जाता है, जैसे शिवजी का वाहन नन्दी (बैल) है।

जैसा कि हम देख चुके हैं कि प्रत्येक देवता एक विशेष प्रकार की ऊर्जा को व्यक्त करता है, वह ऊर्जा किस प्रकार की है, इसका संकेत हमें देवता के रंग, रूप, वस्त्र, आयुध, परिवार, शक्ति, वाहन, ध्वज, नाम आदि के द्वारा मिलता है। इसी बात की ओर संकेत करते हुए जय प्रश्न पूछते हैं कि देवता का रंग कैसा होता है? उनके वस्त्र, आभूषण, अस्त्र-शस्त्र आयुध, आयु, उनका वेष तथा उनकी ध्वजा के बारे में भी हमें बताएँ?

देवताओं, राजा व ब्राह्मण आदि के घर के प्रमाण (लम्बाई, चौड़ाई) तथा ऊँचाई (आदि) कितनी होना चाहिए ?२१

विश्लेषण-यहाँ प्रश्न करते हुए जय कहते हैं कि देवताओं के मन्दिर, राजा के महल तथा ब्राह्मण आदि जो वर्ण हैं उनके घर का मान क्या होना चाहिए? यहाँ हम देखते हैं कि उस समय की टाउन प्लानिंग एकदम स्पष्ट रुप से सामने आ जाती है। आज हम दूर से देख कर यह अनुमान लगा लेते हैं कि यह जो भवन सामने दिख रहा है यह चर्च है, अमुक इमारत मस्जिद हैं, अमुक बिल्डिंग गुरुद्वारा है या अन्य भवन मन्दिर है? कैसे भवन या निर्माण की आकृति, रचना या बनावट देखकर। पहले जो नगर नियोजन करते थे (वास्तुशास्त्र के अनुसार निर्माण करने पर आज भी) उसमें प्रत्येक देवता के लिए अलग-अलग प्रकार के मन्दिर का विधान हैं (शिखर आदि के द्वारा भेद किया जा सकता है), अलग-अलग वर्ण के व्यक्ति के लिए भवनों की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई का मान भिन्न-भिन्न होता है, इससे उस भवन में निवास करने वाले व्यक्ति के वर्ण, पद आदि का ज्ञान होता है। अतः जय का प्रश्न है कि विभिन्न मंदिर, राजा तथा वर्ण के अनुसार व्यक्ति के भवन किस प्रकार होना चाहिए?

१.८.११ भोगविलास, आनन्द-कामशास्त्र

घर में कहाँ पर जल के मध्य में युग्म गृह तथा रसोई घर होना चाहिए? कोषागार, आयुध स्थान व भण्डार गृह कहाँ होना चाहिए? कहाँ पर व्यायाम (कसरत), नृत्य, संगीत व स्नान के लिए स्थान होना चाहिए ? कहाँ पर धारा-गृह बनवाना चाहिए ?२३

गृह या घर सामान्य रुप से वह स्थान है जहाँ व्यक्ति दिन-भर कार्य करने के उपरान्त अपने निवास पर पुनः लौटता है तथा अगले दिन कार्य पर जाने तक आराम, विश्राम आदि करता है। उसका निवास स्थान शान्त, मनोहारी तथा थकावट को दूर करने वाला होना

चाहिए। उसके निवास पर सारी सुविधाएँ होना चाहिए। इस क्रम को पूरा ध्यान में रखते हुए जय प्रश्न करते हैं कि घर में जल क्रीड़ा का स्थान कहाँ बनवाना चाहिए? जो समृद्ध लोग हैं, धनी लोग हैं, उनके घर में पानी का स्थान (जैसे स्विमिंग पूल आदि) होता है, जिसमें वे विभिन्न प्रकार की क्रीड़ा, खेल, भोग-विलास आदि करते हैं, वह स्थान घर में कहाँ तथा कैसा बनवाना चाहिए? कहाँ पर कसरत, नृत्य, संगीत, स्नान तथा फव्वारा बनवाना चाहिए? इसी प्रकार रसोईघर, धन रखने का स्थान, अस्त्र-शस्त्र रखने का स्थान, अनाज को इकट्ठा करने का स्थान कहाँ बनवाना चाहिए?

शयन कक्ष (सोने का कमरा), आवास-गृह, प्रेक्षा-गृह तथा दर्श-गृह किस प्रकार अलग होना चाहिए? क्रीड़ा गृह, झूला-झूलने का स्थान, अरिष्ट-गृह (सूतिका गृह) तथा अन्तःपुर कहाँ होना चाहिए?२४

संगति-गृह के संबंध में किस कक्ष को कहाँ बनवाना चाहिए इत्यादि प्रश्न पूछने के उपरान्त जय गृह की सीमा में ही लेकिन कक्षों के बाहर, आसपास किस प्रकार का निर्माण करना चाहिए उसके संबंध में प्रश्न करते हुए पूछते हैं कि-

१.८.१२ उपवन

विटंक (पक्षी के बैठने का स्थान), भ्रम (नाली), निर्यूह (द्वार, द्वार या स्तम्भ पर बनाई जाने वाली नक्काशी, कंगूरा, कलश), कमरे, संयमन आदि, अशोक वृक्ष से युक्त उपवन, लता-मण्डप गृह को कहाँ बनाया जाए?

जलाशय, दारुगिरि (लकड़ी के पर्वत), चित्र-विचित्र फूलों की वीथियाँ इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रकार की वाटिका (उद्यान, बगीचे) कहाँ-कहाँ बनवाना चाहिए?

राजमहल बनवाते समय महल के विभिन्न कक्ष किस दिशा में होना चाहिए, कैसे होना चाहिए इत्यादि प्रश्न करने के उपरान्त अब इन कक्षों (कमरों) की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, कक्ष आदि बनाने की विधि, पदार्थ तथा आकृति के संबंध में जय प्रश्न करते हैं-

१.८.१३ मान

राजा के महल का निर्माण करते समय उसके (ऊपर कहे गए विभिन्न कक्ष आदि के) मान, उपमान, क्रिया, आयाम, पदार्थ व आकृति क्या होना चाहिए?

यहाँ राजा के महल का वर्णन चल रहा है, मुख्य भवन (जिसमें राजा निवास करता है) तथा उसके बाग-बगीचा का वर्णन करने के उपरान्त अब पूरे राजभवन के संदर्भ में राजा के कार्य संचालन में सहायक प्रमुख व्यक्तियों के आवास के संबंध में प्रश्न पूछते हुए जय कहते हैं कि-

पुरोधःसैन्यभूश्रेष्ठदैवचिन्तकमन्त्रिणाम्।
कं कं च भागं प्राप्य स्युर्निवेशा नृपवेश्मनः।।२८।।

विशाल राज-भवन के किस-किस हिस्से में पुरोहित, सेनापति, ब्राह्मण, ज्योतिषी व मन्त्रियों के भवन होना चाहिए?

१.८.१४ पुरोहित-पूजन-पाठ, कर्मकाण्ड करने वाला व्यक्ति (ब्राह्मण)

अब नगर नियोजन, नगर के किस भाग में किस प्रकार के लोगों को बसाना चाहिए, इस बारे में प्रश्न करते हैं-

पुरे स्युर्दिक्षु भागेषु पदभागेषु केषु च।
विप्रराजन्यविट्शूद्रास्तज्जैरन्तरजैः समम्।।२९।।

नगर की दिशाओं के किस भाग के किस पद पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र आदि के भवन होना चाहिए?

तथा कृषितुलाशिल्पकलापण्योपजीविनः।
हिंसाश्रिताश्च पुरुषा निवेश्याः स्युः कथं क्व च।

खेती, तुला (तराजू), शिल्प कला व पण्य (व्यापार) से आजीविका करने वाले तथा हिंसा के आश्रित (हिंसा कर जीवन यापन करने वाले) पुरुषों के भवन कहाँ होना चाहिए ?

हिंसा पर आश्रित-मांस बेचने वाले तथा शिकारी आदि

१.८.१५ जल व्यवस्था-हाईड्रोलिक सिस्टम

कितने प्रकार व कैसे-कैसे निवेश (नगर व घर की प्लानिंग) बताई गई है? उनमें (घरों व नगर में) प्रवेश (द्वार) व जलभ्रम (नालियाँ) कहाँ-कहाँ शुभ बताई गई है।

विश्लेषण-किस प्रकार से नगर, ग्राम, घर आदि का नियोजन करना चाहिए। इन घर, ग्राम व नगर में प्रवेश द्वार का स्थान कहाँ बनवाना शुभ होता है, किस स्थान पर तथा कैसे नालियों का निर्माण करना चाहिए?

१.८.१६ मटेरियल साईन्स

पहला स्थान (घर) कितने प्रकार का होता है? पहला द्रव्य कौन सा होता है? इनका हेतु क्या है? किस अनुक्रम से द्रव्य का उपयोग करना चाहिए।

विश्लेषण-यहाँ प्रश्न करते हैं कि घर कितने प्रकार के होते हैं? कौन सा द्रव्य सर्वश्रेष्ठ हैं अर्थात सबसे पहले किस द्रव्य का प्रयोग करना चाहिए तथा वह द्रव्य उपलब्ध न होने पर किस अन्य द्रव्य का प्रयोग कर सकते हैं? द्रव्य तथा घर बनाने का विधि क्रम क्या है?

भजन्ते योगमन्योन्यं कानि द्रव्याणि कैः सह।
कानि योगं न गच्छन्ति कैर्वा कः क्व वसेत् पुमान्।

किस पदार्थ का किस पदार्थ के साथ आपस में योग होता है? तथा कौन-कौन पदार्थ के साथ योग नहीं होता है ? किस मनुष्य को कहाँ बसना चाहिए?

विश्लेषण-भवन निर्माण में जिन-जिन सामग्री का प्रयोग करते हैं, उनमें किस सामग्री के साथ किस सामग्री का प्रयोग करना चाहिए तथा किस सामग्री का प्रयोग नहीं करना चाहिए?

इष्टकाकर्म किं चेष्टं कीर्तिता कतिधा च भूः। परिकर्मक्रमस्तासां वह्न्यम्बुपवनैश्च कः।।३४।।

ईंट बनाने की विधि क्या है? भूमि (मिट्टी) कितने प्रकार की बताई गई है? मिट्टी का शोधन व परीक्षण किस-प्रकार आग, पानी तथा हवा के द्वारा किया जाता है?[१]

विश्लेषण-गृह-निर्माण के लिए ईंट एक महत्वपूर्ण पदार्थ हैं, इसे बनाने की विधि के संबंध में उनका प्रश्न है कि ईंट के लिए प्रयुक्त मिट्टी आदि कितने प्रकार की होती है? तथा उस मिट्टी को ईंट बनाने हेतु किस प्रकार से परिष्कृत (संस्कारित, रिफाइन्ड) किया जाता है?

संगति- ईंट व मिट्टी आदि के बारे में जिज्ञासा के पश्चात् अब वृक्ष की लकड़ियों के उपयोग के संबंध में अपने प्रश्नों को इस प्रकार प्रारम्भ करते हैं-

---

१.८.१७ वनस्पति विज्ञान

कौन-कौन से वृक्ष की लकड़ी चार वर्ण के लोगों के भवन-निर्माण के लिए शुभ है? इन्द्र-ध्वज को बनाने के लिए, राजाओं के महल, देवमन्दिर व देव-प्रतिमाओं के निर्माण के लिए कौन-कौन से वृक्ष की लकड़ी उत्तम है? कौन-कौन से वृक्ष की लकड़ी प्रयोग में लेना चाहिए?[१]

१.८.१८ शकुन शास्त्र

उन वृक्ष को काटते समय होने वाले स्राव (रिसना), उसका शब्द, वृक्ष के गिरने की दिशा, उस वृक्ष के अन्दर रहने वाले जीव (प्राणी) आदि शकुनों से किस प्रकार स्थपति व स्वामी के लिए कौन से शुभ या अशुभ परिणाम बताए गए हैं?[३४]

शुभ वृक्ष का निर्धारण होने के पश्चात जब वन (जंगल) में वृक्ष की लकड़ी लेने जाते हैं, शुभ वृक्ष को पहचान कर काटते हैं, उस पर वृक्ष में से जैसा पदार्थ निकलता है उसके आधार पर यह निर्णय करते हैं कि इस वृक्ष की लकड़ी स्थपति (वास्तुशास्त्री) तथा स्वामी (वह व्यक्ति जिसके लिए वृक्ष की लकड़ी का उपयोग करेंगे) के लिए उस वृक्ष की लकड़ी शुभ होगी या अशुभ फल देगी? इस प्रकार अन्य शकुन जैसे वृक्ष किस प्रकार का शब्द करता है, किस दिशा में गिरता है, वृक्ष के अन्दर कौन से जीव रहते हैं, के आधार पर यह निर्धारित किया जाता है कि वृक्ष शुभ है या अशुभ?

वृक्ष को काटते समय उस वृक्ष की ऊँचाई आदि का भी ज्ञान आवश्यक है, वृक्ष की छाया के माध्यम से वृक्ष की ऊँचाई किस प्रकार ज्ञात करना चाहिए, इस संबंध में जय प्रश्न करते हैं तथा काटने के पश्चात वृक्ष को सुखाने के लिए किस प्रकार व कहाँ रखना चाहिए, इस संबंध में उनका अगला प्रश्न है-

प्रमाणं तक्षणच्छेदैः शोधितानां कथं भवेत्।
आहृत्य स्थापनं पूर्वं दारूणां स्थानके क्व च।।३७।।

वृक्ष को काटने से उसका प्रमाण कैसे जानना? जंगल से लाने के पश्चात् सबसे पहले लकड़ी की स्थापना कहाँ व कैसे करना?

सामान्यतोऽखिलानां काः काश्च जातेर्विशेषतः।
प्रशस्तैर्लक्ष्मभिर्युक्ता भूमयः परिकीर्तिताः।।३८।।

सामान्य रूप से सभी (जाति व वर्ण) के लिए किस प्रकार के लक्षण से युक्त भूमि उत्तम या शुभ बताई गई है?

अब उनका प्रश्न है कि भूमि के विभिन्न प्रकार का वर्णन कीजिए, बताएँ? नगर किस भूमि पर बसाना चाहिए, भूमि के किस प्रकार के गुण हों तो वहाँ क्या बनवाना चाहिए, किस वर्ण या जाति के लोगों को बसाना उचित होता है?

संगति-जिस भूमि पर निर्माण कार्य करना हो, उस भूमि के अन्दर (मिट्टी में) कोई नकारात्मक ऊर्जा देने वाला पदार्थ जैसे हड्डी, कोयला, राख, भूसी आदि होना अशुभ होता है, इस प्रकार के नकारात्मक ऊर्जा देने वाले पदार्थ को शल्य कहते हैं। निर्माण करने से पहले उन्हें कैसे ज्ञात करना तथा किस प्रकार भूमि को शुद्ध करना, इस संबंध में जय प्रश्न करते हैं-

शल्योद्धारविधिः कीदृक् कीदृशं भूमिकर्म च।
दिग्ग्रहः सूत्रणं चाधिवासनं च कथं भवेत्।।३९।।

भूमि में स्थित शल्य का उद्धार किस प्रकार किया जाता है? भूमिकर्म कैसे किया जाता है? दिशा-ज्ञान, सूत्रण व अधिवासन किस प्रकार करना चाहिए ?

प्रमाणं मूलपादस्य शिलान्यासे च को विधिः।
विभज्यते कथं वेश्म शालालिन्दविभाजनैः।।४०।।

मूल पाद (मुख्य स्तम्भ, खम्बा या स्तम्भ के मूल) का प्रमाण (मान, dimension) क्या होना चाहिए? शिलान्यास की क्या विधि है? शाला व अलिन्द के विभाजन से भवन का विभाग किस प्रकार किया जाता है?

विश्लेषण-अब निर्माण विधि की गहराई में जाते हुए जय प्रश्न करते हैं कि जो स्तम्भ बनाना है, उस स्तम्भ के सबसे निचले भाग का मान कितना होता है। इस स्तम्भ के नीचे शिला (बड़ा पत्थर) रखा जाता है, जिससे स्तम्भ का भार भूमि पर ठीक प्रकार से स्थानान्तरित हो सके। इस शिला को स्थापित करने की क्या विधि है?

मानानि कानि भित्तीनां पीठानामुच्छ्रयाश्च के।
कथं तानि विकल्प्यानि वर्णानां मेखलादिभिः।।

दीवारों का मान (मोटाई आदि) क्या होता है? पीठ की ऊँचाई कितनी होना चाहिए? वर्ण के अनुसार (पीठ की ऊँचाई में) क्या परिवर्तन होता है?

समस्तकानां स्तम्भानां द्वारस्तम्भासनैः सह।
नागवीथ्युपधानानां समं कण्ठविनिर्गमैः।।४२।।

सभी स्तम्भ, द्वार-स्तम्भ का आसन (पीठ) सहित क्या मान होता है? उपधान (ऊपर रखना या ठहराना), नागवीथी तथा कण्ठ-विनिर्गम का प्रमाण क्या होता है?

जयन्तीसङ्ग्रहतुलाकार्याणां वास्तुनोऽपि च।
कीदृशं फलकानां च प्रमाणां परिकीर्तितम्।।४३।।

वास्तु में जयन्ती (cross pieces), सङ्ग्रह, तुला (beam) तथा पटियों का क्या प्रमाण बताया गया है?

विश्लेषण-अभी तक स्तम्भ के अंगों का वर्णन किया, अब स्तम्भ के ऊपर के अंगों के विषय में उनमें माप (लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई) के बारे में प्रश्न करते हुए जय पूछते हैं कि स्तम्भ के ऊपर जो जयन्तियाँ, संग्रह तथा तुला रखी जाती है उनका मान क्या होता है?

स्वमानात् सर्ववर्णानां तलोच्छ्रायास्तु कीदृशाः।
का गवाक्षकपोतालिवेदिकाजालकक्रियाः।।४४।।

सभी वर्ण के लिए उनके मान के अनुसार घर की मंजिल की ऊँचाई कितनी होना चाहिए? गवाक्ष, कपोतालि, वेदिका व जालक को किस प्रकार बनवाना चाहिए?

स्थूणा निसृष्टिकोत्सूका मृगा(ल्योः ल्यु)पतुलास्तथा।
सान्तःप्राणिशिरोवंशाः किंप्रमाणाः प्रकीर्तिताः

स्थूणा, निसृष्टिका, उत्सूका, मृगाली व उपतुला एवं प्राणि सहित शिरोवंश के प्रमाण क्या बताए गए हैं?

स्तम्भ तथा बीम के संबंध में प्रश्न करने के उपरान्त अब छत डालने की विधि तथा विभिन्न प्रकार की छत के संबंध में प्रश्न करते हुए जय पूछते हैं कि-

छाद्योदयाः कियन्तः स्युर्वृत्तच्छाद्यक्रमश्च कः।
त्र्यश्राणां खण्डवृत्तानां लुपानां च क्रियाः कथम्।।

छादन (आच्छादित) करने के कितने प्रकार हैं? वृत्त (गोल) आच्छादन करने का क्या क्रम है? त्रिकोनी, खण्डवृत्त तथा लुपा की क्रियाएं किस प्रकार होती हैं?

सीमालिन्दशिरस्तासां कीदृशी चावलम्बना।
कतिप्रकाराः प्रासादशिरसां च विकल्पनाः।।४७।।

सीमा, अलिन्द, शिखर व अवलम्बन किस प्रकार का होता है? प्रासाद का शिखर कितने प्रकार का होता है?

यच्चान्यदेवमादि स्यात् प्रासादभवनादिषु।
द्रव्यकाष्ठकलासङ्गि प्रमाणं तस्य कीदृशम्।।४८।।

अन्य मन्दिर, भवन के लिए पदार्थ, लकड़ी व कला सम्बन्धी प्रमाण कैसे हैं?

शालालिन्दप्रमाणानि चतुःशालेषु धामसु।
ज्यायोमध्ययवीयस्सु मूषाभिः काष्ठकल्पना।।४९।।

चतुश्शाल भवनों में शाला व अलिन्द का मान क्या है? मूषा में लकड़ी का प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए?

एकद्वित्रिचतुःशालान्येषां संयोगतोऽपि च।
कथं कति च वेश्मानि कल्प्यन्ते प्रविभागशः।।५०।।

एकशाला, दोशाला, तीनशाला व चार शाला वाले भवनों के संयोग से कितने प्रकार के घरों के भेद होते हैं?

किसी भूखण्ड की एक ही दिशा में बने हुए घर को एक शाला, दो दिशाओं में बने हुए घर को द्विशाला, तीन दिशाओं में बने हुए घर को त्रिशाला तथा चारों दिशाओं में बने हुए घर को चतुश्शाला भवन कहते हैं।

इन घरों में किस दिशा में बरामदा (अलिन्द) आदि हैं, उसके अनुसार भेद होते हैं।

१.८.१९ ऊर्जा विज्ञान

कथं च षोडशचतुःषष्ट्येकाशीतयः शतम्।
संविभागाः पदानां स्युः कथमत्रामरस्थितिः।।५१।।

सोलह, चौंसठ, इक्यासी तथा एक सौ पद का वास्तुविन्यास कैसे करते हैं? इन पदों पर देवताओं की स्थिति कैसी होती है?

किसी भी भूखण्ड पर निर्माण करने से पहले उपयोग के अनुसार भूखण्ड को विभिन्न भागों में विभाजित करते हैं, प्रत्येक भाग पद कहलाता है। यह प्रक्रिया वास्तु पद विन्यास कहलाती है। प्रत्येक भाग (पद) का स्वामी एक देवता होता है, उसे पद देवता कहते हैं। इस प्रकार जय का यह प्रश्न है कि किसी भूखण्ड को १६, ६४, ८१ तथा १०० भागों में कैसे विभाजित करते हैं? इनके प्रत्येक भाग पर कौन-कौन से देवता का स्वामित्व होता है?

१.८.२० शरीर रचना विज्ञान

आद्यो नवपदो वास्तुरन्त्यः साहस्त्रिकः कथम्।
अङ्गप्रत्यङ्गभागेषु केषु केषु क्व तस्थुषः।।५२।।
कथमेते सुराः सर्वे वास्तोरस्य व्यवस्थिताः।

पहला नौ पद का वास्तु (पद विन्यास) तथा अन्तिम एक हजार पद का वास्तु पद विन्यास किस प्रकार कहा गया है? वास्तुपुरुष के किन-किन अंग व प्रत्यंग के भाग पर कौन से देवता स्थित होते हैं?

विश्लेषण-विभिन्न प्रकार का वास्तुपद विन्यास होता है, उनमें पहला नौ पद का तथा अन्तिम एक हजार पद का वास्तु पद विन्यास होता है।

वास्तुनिर्माण में भूखण्ड पर एक वास्तुपुरुष की कल्पना की गई है। जिसका सिर ईशान कोण तथा पैर नैर्ऋत्य कोण में हैं। वह औंधे मुख भूमि पर लेटा है। इस संबंध में जय का प्रश्न यह है कि उस वास्तुपुरुष के शरीर के किस अंग पर कौन सा देवता स्थित है कृपया कर यह बताइए?

यहाँ हम देखते हैं कि पूरे भूखण्ड पर एक वास्तुपुरुष की कल्पना की गई है। उस वास्तुपुरुष के शरीर महत्वपूर्ण स्थान पर नकारात्मक ऊर्जा देने वाले या अन्य प्रकार के अशुभ पदार्थ नहीं होना चाहिए, यदि ये पदार्थ हों तो उसका क्या दुष्परिणाम होता है इस संबंध में प्रश्न यह है कि-

एतद्वंशशिरश्चक्षुःकुक्षिहन्मूर्धमर्मसु।।५३।।
जायते पीडा द्रव्येषु सन्निविष्टेषु कस्य का।

वास्तुपुरुष के वंश, सिर, आँख, कुक्षि, हृदय, मूर्धा व मर्म स्थान पर कौन से पदार्थ होने पर कैसी पीड़ा होती है?

वास्त्वारम्भप्रवेशेषु यात्रायां स्थापनेषु च।।५४।।
दूतस्वप्ननिमित्ताद्यैः कथं ज्ञेयं शुभाशुभम्।

वास्तु के प्रारम्भ, गृह-प्रवेश तथा यात्रा में एवं स्थापना में, दूत, स्वप्न, निमित्त आदि के द्वारा किस प्रकार शुभ या अशुभ का ज्ञान होता है?

वास्तुशास्त्र का एक महत्वपूर्ण अंग है शकुनशास्त्र। निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण अवसर (जैसे गृह-आरम्भ, गृह-प्रवेश आदि) पर उत्पन्न होने वाले शकुन के माध्यम से शुभ व अशुभ परिणाम को पहले ही जान लिया जाता है, इस संबंध में जय प्रश्न करते हैं कि कौन-कौन से शकुन शुभ होते हैं तथा कौन-कौन से शकुन अशुभ होते हैं।

संगति-भवन को भूषित करते समय, उसकी आन्तरिक सज्जा करते समय कौन कौन से चित्र, मूर्ति, नक्काशी, दीवार पर पेन्टिंग आदि बनवाना चाहिए तथा कौन-कौन से नहीं बनवाना चाहिए, इस संबंध में जय का यह प्रश्न है-

१.८.२१ कला

राजा आदि के महलों या भवनों में लकड़ी की क्रिया (कारीगरी) में, चित्र में व लेप क्रिया (coating) में किन-किन का प्रयोग करना उचित है तथा किनका प्रयोग करना अनुचित है ?

हस्त के लक्षण क्या है? मान (माप) की संज्ञा कितनी होती है?

वास्तु में नापने लिए जिस इकाई का प्रयोग करते हैं उसे हस्त कहते हैं। अब जय यह प्रश्न करते हैं कि नापने की विभिन्न इकाइयों के बारे में हमें बताइएँ।

हवन में अग्नि के लक्षण क्या हैं? निर्युक्त के लक्षण क्या हैं? वर्ण के अनुक्रम से बलिकर्म किस प्रकार होना चाहिए?

विश्लेषण-हवन करते समय जो अग्नि प्रज्वलित की जाती है, उसमें आहुति देते समय अग्नि किस प्रकार की है, उसमें से कैसी लपटें उठ रही है इस संबंध में जय का यह प्रश्न है।

बलि अर्थात् देवता को आहुति वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) के अनुसार किस प्रकार देना चाहिए?

विधेयं विधिना केन भवने च प्रवेशनम्।

भवन में किस विधि से प्रवेश करना चाहिए?

पतिते स्फुटिते जीर्णे प्लुष्टे वज्राशनिक्षते।।५८।।
निमग्नभग्ननिर्भिन्नप्रशीर्णेषु च वास्तुषु।
मधुवल्मीकसंभूतौ प्रविरूढै च दारुणि।।५९।।
जायते किं फलं कुत्र प्रायश्चित्तेन को विधिः।

इस प्रकार के भवन जो गिर गए हों, जो टूटे-फूटे हों, जो पुराने, जले हुए हों, जिस पर बिजली गिरी हो, जो निमग्न, भग्न, निर्भिन्न तथा प्रशीर्ण भवन हों ऐसे भवन में रहने का क्या फल बताया गया है? जिस लकड़ी में मधु (मधुमक्खी का छत्ता लगा) हो तथा जो लकड़ी दीमक से खोखली हो, उस लकड़ी का प्रयोग करने से क्या दुष्परिणाम होता है? तथा इसके प्रायश्चित का क्या विधान है?

यहाँ विभिन्न दोष, उनके दुष्परिणाम तथा दोष दूर करने के उपाय के संबंध में जय का प्रश्न हैं।

इस प्रकार से हमने देखा कि स्थापत्यवेद का क्षेत्र कितना व्यापक है तथा एक कुशल स्थपति को इन सभी क्षेत्रों का ज्ञान होना चाहिए।

इस शोध प्रबन्ध में समरांगण सूत्रधार व मयमत ग्रन्थ का चयन इसलिए किया गया है कि समरांगणसूत्रधार राजा भोज द्वारा रचित एक प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। यह उत्तर भारत का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसी प्रकार मयमत दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध व प्रचलित ग्रन्थ है। इन दोनों को साथ-साथ देखने पर उत्तर व दक्षिण भारतीय शैली का तुलनात्मक अध्ययन का कार्य भी सम्पन्न होता है।

अध्याय २

स्थापत्य की विभिन्न शैली

अध्याय २

स्थापत्य की विभिन्न शैली

अध्याय २

स्थापत्य की विभिन्न शैली

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
२.१	शैली परिचय	३
२.२	मंदिर (देवता) के अनुसार शैली	४
२.३	स्थान (प्रदेश) के अनुसार शैली	५
२.५	शैली व गुण	५
२.४	दिशानुसार शैली	५
२.६	वैराज्य प्रासाद से उत्पन्न प्रासाद (नागर जाति)	६
२.७	केसरीत्यादि २५ प्रासाद	६
२.८	आकार के अनुसार प्रासाद की शैली	७
२.९	चौकोर चौबीस प्रासादों के प्रकार	७
२.१०	१० गोल प्रासाद	७
२.११	दस चौकोर और आयताकार प्रासाद	८
२.१२	दस वृत्तायत प्रासाद	८
२.१३	दस अष्टकोणीय प्रासाद	८
२.१४	वैराज प्रासाद से उत्पन्न प्रासाद	९

२.१ शैली परिचय

वास्तुशास्त्र के अनुरुप जब हम किसी मंदिर आदि का निर्माण करते हैं तो यह ध्यान रखते हैं कि किस देवता का मंदिर बनवाना है तथा उस प्रदेश को भी ध्यान में रखते हैं कि किस स्थाप पर मंदिर का निर्माण करना है। इसे हम शैली के नाम से जानते हैं।

वास्तुशास्त्र के मंदिर निर्माण से संबंधित सभी ग्रन्थों में शैलियों का उल्लेख किया गया है। वास्तुशास्त्र की सामान्य जानकारी रखने वाला व्यक्ति भी कह सकता है कि भारतवर्ष में तीन शैलियों का वर्णन या निर्माण प्रमुख रुप से देखने को मिलता है- नागर, द्राविड़ व वेसर। इसे आकार तथा प्रदेश विशेष के अनुसार भी देख सकते हैं। उत्तर भारत में सामान्य रुप से नागर शैली के मंदिर मिलते हैं। दक्षिण भारत में द्राविड़ तथा पूर्व भारत में वेसर शैली के मंदिर प्रायः देखने में आते हैं।

आकार की दृष्टि से विभाजित करने पर हम कह सकते हैं कि वर्गाकार या आयताकार मंदिर नागर शैली के बने हैं। अष्टकोण आकार में बने मंदिर द्राविड़ तथा गोल मंदिर वेसर शैली में बने हैं।

विषय बाहर से देखने पर जितना सरल दिखता है वास्तव में वैसा नहीं है। मंदिर निर्माण से संबंधित वास्तुशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ जो कि लगभग १६वीं शताब्दी के आसपास के हैं, प्रासाद मंडन, यह ग्रन्थ राजस्थान के प्रसिद्ध शिल्पी सूत्रधार मंडन ने लिखा है, उसमें आठ प्रमुख शैलियों का उल्लेख करते हुए लिख दिया कि कुल १४ शैलियों को लोक-परम्परा से जानना चाहिए अर्थात् शिल्पी की परम्परा, गुरु-शिष्य परम्परा से जानना चाहिए।

प्रासादाकारपूजाभिर्देवदैत्यादिभिः क्रमात्।
चतुर्दशसमुत्पन्नाः प्रासादानां सुजातयः (च जातयः)।।६।५।

देव तथा दैत्य की पूजा के लिए मंदिर के आकार के अनुसार क्रम से चौदह प्रकार की मंदिर की जातियाँ होती हैं।

नागरा द्राविडाश्चैव भूमिजा लति(वि)नास्तथा।
सावन्धारा (साव(र्व)धारा) विमानादि नागराः पुष्पकाङ्किताः (पुष्पकान्तिता)।।७।।५।

मिश्रकारितलकैः श्रृङ्गैरष्टौ जातिषु चोत्तमाः।
(प्रासादमिश्रकाश्चैवमष्टौ जातिषु चोत्तमाः।) सर्वदेवेषु कर्त्तव्याः शिवस्यापि विशेषतः।।८।।५।

चौदह जाति के प्रासादों में (१) नागर, (२) द्राविड़, (३) भूमिज, (४) लतिन, (५) सावंधार (सांधार), (६) विमान नागर, (७) विमान पुष्पक, और (८) श्रृङ्ग और तिलक वाला मिश्र, ये आठ जाति के प्रासाद (मंदिर) उत्तम हैं। इसलिए सब देवों के लिए यही बनाने चाहिए, उनमें भी विशेषकर महादेव जी के लिए बनाना श्रेयस्कर है।

प्रासादानां च सर्वेषां जायते देशभेदतः। चतुर्दश प्रवर्तन्ते ज्ञेया लोकानुसारतः।।९।।

सब मंदिरों के भेद देश के अनुसार होते हैं। इनके मुख्य चौदह भेद हैं, वे लोक के अनुसार जानना चाहिए।

२.२ मंदिर (देवता) के अनुसार शैली

क्रमांक	शैली	हेतु
१	नागर आदि	देवताओं के लिए
२	द्राविड़ आदि	दानव के लिए
३	लतिन आदि	गन्धर्व के लिए
४	विमान आदि	यक्ष के लिए
५	मिश्रक आदि	विद्याधर के लिए
६	वराटक आदि	वसुओं के लिए
७	सांधार आदि	नागों के लिए
८	भूमि आदि,	राजाओं के लिए
९	विमाननागरछन्द आदि	सूर्य लोक के लिए
१०	छन्दविमानपुष्पक आदि	चन्द्रलोक के लिए
११	वलभी आदि	पार्वती के लिए
१२	सिंहावलोकन आदि	हरसिद्धि आदि के लिए
१३	फांसना आदि	पिशाच आदि के लिए
१४	नपुंसक	

ये सब विराज्य आदि से उत्पन्न हैं।

इसके पश्चात् स्थान या प्रदेश के अनुसार भी शैली का प्रचलन रहता है।

२.३ स्थान (प्रदेश) के अनुसार शैली

स्थान या प्रदेश	शैली
आसाम व बंगाल	सांधार आदि, लतिन आदि,
गंगासागर	विमान आदि
मिथिला, कोंकण,	आठों प्रकार
उज्जियनी, मालवा, बिहार, प्रयाग	लतिनादि, नागरादि, सांधारादि, भूमिजादि
हरिद्वार, मथुरा, समुद्र किनारे	लतिनादि, नागरादि, सांधारादि, भूमिजादि
सौराष्ट्र, काश्मीर, सिंधु	चतुःछन्द

२.४ दिशानुसार शैली

दिशा	शैली
पूर्व	नागरादि
दक्षिण	द्राविड़ादि
पश्चिम	व्यंतरादि
उत्तर	वैराज्यादि

प्रत्येक शैली की अपनी विशेषता या गुण होते हैं।

२.५ शैली व गुण

शैली	वर्ण	गुण	देवता	वर्ण
नागरादि	श्वेत	सात्विक	ब्रह्मा	ब्राह्मण
द्राविड़ादि	रक्त	राजस	विष्णु	क्षत्रिय
वेसरादि	नीला	तामस	शंकर	वैश्य

कालान्तर में इन्हीं से प्रासाद की शैलियों का विस्तार हुआ। मूलरुप से वैराज्य प्रासाद से अन्य प्रासाद व शैलियों का विस्तार हुआ।

२.६ वैराज्य प्रासाद से उत्पन्न प्रासाद (नागर जाति)

नन्दनप्रासाद
सिंह
श्रीनन्दन
मलय
विमान
विशाल
त्रैलोक्य भूषण प्रासाद
माहेन्द्रप्रासाद
सितश्रृङ्गप्रासाद
भुवनमंडन प्रासादः

त्रैलोक्यविजयः
क्षितिवल्लभः
महीधर
कैलास
नवमङ्गल
गंधमादन
सर्वाङ्ग सुन्दर,
विजयानन्द
सर्वाङ्गतिलकः
महाभोग
मेरु

२.७ केसरीत्यादि पञ्चविंशति प्रासाद नामानि

१ केसरी
२ सर्वतोभद्र
३ नन्दन
४ नन्दशालिक
५नन्दीश
६ मन्द
७ श्रीवत्स
८ अमृतोद्भव

९ हिमवान
१० हेमकूट
११ कैलाश
१२ पृथिवीजय
१३ इन्द्रनील
१४ महानील
१५ भूधर
१६ रत्नकूटक

१७ वैडूर्य
१८ पद्मराग
१९ वज्रक
२० मुकुटोज्ज्वल
२१ ऐरावत
२२ राजहंस
२३ गरुड़
२४ वृषभध्वज
२५ मेरु

२.८ आकार के अनुसार प्रासाद की शैली

प्रासाद	आकार
वैराज	चौकोर
कैलाश	गोल
पुष्पक	चौकोर तथा आयताकार
मणिकाभिध	गोल तथा आयत
त्रिविष्टप	आठ कोने वाला

२.९ चौकोर चौबीस प्रासादों के प्रकारः-

चौकोर चौबीस प्रासादों के प्रकार

रुचक	शाला	भूजय	हस्तिजातीय
चित्रकूट	गजयूथप	विजय	कुबेर
सिंहपञ्जर	नन्द्यावर्त	नन्दी	वसुधाधर
भद्र	अवर्तसाह	श्रीतरु	सर्व-भद्र
श्रीकूट	स्वस्तिक	प्रमदा-प्रिय	विमान
उष्णीष	क्षिति-भूषण	व्यामिश्र	मुक्तकोण

२.१० १० गोल प्रासादः-

१० गोल प्रासाद

वलय	चतुर्मुख
दुन्दुभि	माण्डूक्य
प्रान्त	कूर्म
पद्म	तालीगृह
कान्त	उलीपक

२.११ दस चौकोर और आयताकार प्रासाद :-

दस चौकोर और आयताकार प्रासाद

भव
विशाल
साम्मुख्य
प्रभव
शिबिरागृह
मुखशाल
द्विशाल
गृहराज
अमल
विभु

२.१२ दस वृत्तायत प्रासाद

दस वृत्तायत प्रासाद

१. आमोद
२. रैतिक
३. तुङ्ग
४. चारू
५. भूति
६. निषेवक
७. सदानिषेध
८. सिंह
९ सुप्रभ
१० लोचनोत्सव

२.१३ आठकोण प्रासादों की दस

आठकोण प्रासादों की दस

१. वज्रक
२. नन्दन
३. शंकु
४. मेखला
५. वामन
६. लय
७. महापद्म
८. हंस
९. व्योम
१०चन्द्रोदय

इस प्रकार ६४ संख्या हुई।

प्रासाद-जातियां

२.१४ वैराज प्रासाद से उत्पन्न प्रासाद

वैराज प्रासाद से उत्पन्न प्रासाद

स्वस्तिक	भूजय	श्रीकूट	विमान
श्रीतरु	विजय	उष्णीष	सर्वतोभद्र
क्षिति-भूषण	भद्र	नंद्यावर्त	विमुक्त-कोण

इस तरह एक-एक से क्रमशः दूसरा एक-एक पैदा होता है-

एक-एक से क्रमशः दूसरे एक-एक पैदा होते हैं-

स्वस्तिक से रुचक	श्रीकूट से चित्रकूट
श्रीतरु से सिंह-पञ्जर	उष्णीष से प्रमदाप्रिय
श्यामभूषण से शाला	नंद्यावर्त से व्यामिश्र
भूजय से गज-यूथप	विमान से हस्ति-जातिक
विजय से अवतंस	सर्वतोभद्र से कुबेर
भद्र से नंदी	मुक्तकोण से धराधर

तदनन्तर अन्य शिखरोत्तम प्रासादों को जानना चाहिए- उन में से आठ शिखरोत्तम प्रासाद हैं-

१. रुचक, २. वर्धमानक, ३. अवतस, ४. भद्र, ५. सर्वतोभद्र, ६. मुक्तकोणक, ७. मेरु, ८. मन्दर- ये आठ शिखरोत्तम प्रासाद जानने चाहिए।

देवों के शुभ आलय चौकोर बताए गए हैं। वे वंशज कहे गए हैं और ये सब ब्रह्म-जाति के निवेश-योग्य हैं।

वैराज कुल से उत्पन्न परमोत्तम प्रासाद माने गए हैं और इनसे और भी इनके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र से उत्पन्न और भी पैदा होते हैं।

मेर्वादि-षोडश-प्रासाद-लक्षण

मेर्वादि-षोडश-प्रासाद-लक्षण ३-५।।५५

मेरु	नन्दन	हंस	गज
कैलाश	स्वस्तिक	रुचक	मृगराज
सर्वतोभद्रक	मुक्त-कोण	वर्धमान	पद्म
विमानच्छन्द	श्रीवत्स	गरुड	वलभी

अथ रुचकादि-चतुष्षष्टि-प्रासाद

रुचकादि २५ ललित प्रासाद

१. रुचक	९. वर्धमान	१७. भव
२. भद्रक	१०. अद्रिकूट	१८. विभव
३. हंस	११. श्रीवत्स	१९. पद्म
४. हंसोद्भव	१२. त्रिकूट	२०. मालाधर
५. प्रतिहंस	१३. मुक्त-कोण	२१. वज्रक
६. नंद	१४. गज	२२. स्वस्तिक
७. नंद्यावर्त	१५. गरुड़	२३. शंकु
८. धराधर	१६. सिंह	२४. मलय
		२५. मकरध्वज

प्रासाद	आकार
रुचक आदि १६ प्रासाद	चतुरश्र
भव और विभव	चतुरश्रायत (चौकोर तथा आयताकार)
पद्म और मालाधर	गोल
मलय और मकर	वृत्तायत अर्थात गोल और आयताकार
वज्रक, स्वस्तिक, शंकु	आठकोण

पच्चीस सान्धार प्रासाद

१. केसरी	६. मंदिर	११. कैलाश	१६. रत्नकूटक	२१. ऐरावत
२. सर्वतोभद्र	७. श्रीवृक्ष	१२. पृथ्वीजय	१७. वैडूर्य	२२. राजहंस
३. नंदन	८. अमृतोद्भव	१३. इन्द्रनील	१८. पद्मराग	२३. गरुड़
४. नंदिशालक	९. हिमवान्	१४. महानील	१९. वज्रक	२४. वृष
५. नंदीश	१०. हेमकूट	१५. मूधर	२०. मुकुटोत्कट	२५. मेरु

इस प्रकार से हमने देखा कि वास्तु की विभिन्न शैलियाँ वैराज्य से उत्पन्न हुई। देवता के मंदिर, प्रवेश आदि के आधार पर विभिन्न शैली विकसित हुई।

विश्लेषणः-आज के समय में आधुनिक इतिहासकारों, वास्तुविदों (अर्किटेक्ट) द्धारा जब इस विषय का अध्ययन कराया जाता है तो प्रायोगिक रूप से देखने में आता है कि यह विषय (शैली) स्थान विशेष या काल विशेष के आधार पर कराया जाता है। जैसे उड़िया शैली, गुजरात शैली, राजस्थान शैली, जयपुरी शैली, मालवा शैली, गुप्तकालीन, मुगल कालीन, हडप्पा कालीन। अनेक पाश्चात्य विद्धान जैसे फर्ग्यूसन, पर्शी ब्राऊन आदि ने भी इसी आधार पर भारतीय वास्तु कला को देखा व लिखा। अभी अर्किटेक्चर कॉलेज आदि में विषय इसी आधार पर अध्ययन कराया जाता है।

ग्रन्थ में वर्णित शैलियों का ज्ञान रखते हुए, संबंधित मंदिर के शिल्प का अध्ययन कर उससे संबंधित विषय को प्रकाशित करने के उपरान्त संबंधित महाविद्यालयों में पढ़ाए जाने की अत्यन्त आवश्यकता है।

खण्ड ३

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ तथा उनकी विषय-वस्तु

(A review of literature)

खण्ड ३

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ तथा उनकी विषय-वस्तु

(A review of literature)

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
३.१	१८ महापुराण	४
३.२	अग्निपुराण	५
३.३	मत्स्यपुराण	५
३.४	अपराजितपृच्छा	६
३.५.१	कामिकागम (पूर्व भाग)	११
३.५.२	कामिकागम (उत्तर भाग)	१३
३.६	काश्यप शिल्प	१६
३.७	वास्तुमण्डन	२०
३.८	मानसार	२१
३.९	मयमत	२४
३.१०	प्रासाद मण्डन	२६
३.११	राजवल्लभ	२६
३.१२	शिल्परत्नाकर	२७
३.१३	समरांगण-सूत्रधार	२७
३.१४	विश्वकर्म वास्तुशास्त्र	३१
३.१५	विश्वकर्मप्रकाश	३४

परिचय

वास्तुविद्या जिसे हम स्थापत्यवेद भी कहते हैं का उल्लेख वेद-पुराण में भी मिलता है। वास्तुविद्या में वास्तुपुरुष की कल्पना की गई है तथा वास्तुपुरुष के शरीर पर विभिन्न देवताओं का निवास माना गया है। हम यह भी जानते हैं कि देवता शब्द संस्कृत की दिव् धातु से बना है, जिसका अर्थ प्रकाश या ऊर्जा होता है। देवता शब्द ऊर्जा का द्योतक या प्रतीक है। वास्तुपुरुष में अग्नि, सूर्य, सविता, इन्द्र, वरुण, पूषा, सोम आदि देवता का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में इन सभी देवताओं की स्तुति की गई है। वेद आदि में वर्णित सत्य को पुराण में कथानकों के माध्यम से बताया गया है। मुख्य से रुप से अठारह महापुराण बताए गए हैं। पुराणों में विभिन्न विषय जैसे सृष्टि-निर्माण व प्रलय, वास्तु, ज्योतिष, गणित, भाषा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, तन्त्र, मन्त्र, आदि का वर्णन किया है। इन अठारह महापुराणों में से अग्नि, मत्स्य, भविष्य, नारद आदि पुराण में वास्तु के विषय रुप से उल्लेख मिलता है। यहाँ हम वास्तुशास्त्र के विभिन्न ग्रन्थों में वर्णन विषय वस्तु को देखने का प्रयास करेंगे।

३.१ १८ महापुराण

१ अग्नि
२ भागवत
३ भविष्य
४ ब्रह्म
५ ब्रह्माण्ड
६ गरुड़
७ कूर्म
८ लिंग
९ मार्कण्डेय
१० मत्स्य
११ नारद
१२ पद्म
१३ शिव
१४ स्कन्द
१५ बह्मवैवर्त
१६ वामन
१७ वाराह
१८ विष्णु

३.२ अग्निपुराण

अग्निपुराण में वास्तुसंबंधी विवरण इस प्रकार हैः-

अध्याय ४० वास्तु मंडल नामक में वास्तुमण्डलदेवतास्थापना पूजा, बलिदानादिविधि का वर्णन है।

अध्याय ४८ चतुर्विंशतिमूर्तिस्तोत्रकथनम् में भगवान विष्णु की २४ मूर्ति का वर्णन है।

अध्याय ५० चण्ड्यादिदेवताप्रतिमालक्षणानि में चण्डी आदि विभिन्न देवियों की प्रतिमा बनाने हेतु लक्षणों का उल्लेख किया गया है।

अध्याय ५३ लिङ्गादिलक्षणम् में लिंग के विभिन्न भाग (ब्रह्मा, विष्णु व शिव) के लक्षणों का वर्णन है।

अध्याय ५४ लिङ्ग के मानादि का लक्षण-वर्णन में लिंग के लिए उपयुक्त पदार्थ तथा लिंग के मान का वर्णन है।

अध्याय ९० में अभिषेकादि विधि का वर्णन है।

अध्याय ९४ शिलाविन्यासविधि का वर्णन है।

अध्याय ९६ प्रतिष्ठा में अधिवासन विधि या मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा के विधान बताए गए हैं।

३.३ मत्स्यपुराण

अध्याय २५२	वास्तु की उत्पत्ति की कथा
अध्याय २५३	वास्तु-चक्र वर्णन
अध्याय-२५४	गृहमाननिर्णय
अध्याय २५५	वेध विवरण
अध्याय २५६	गृह निर्णय
अध्याय २५७	वास्तुकार्य में ग्राह्य काष्ठ
अध्याय २६८	वास्तु- शान्ति की विधि
अध्याय २६९	प्रासादों के भेद और उनके निर्माण की विधि
अध्याय २७०	प्रासाद-संलग्न मण्डपों के नाम, स्वरूप, भेद और उनके निर्माण की विधि।

३.४ अपराजितपृच्छा

१ गन्धमादन

२ सूत्रलक्षण

३ ब्रह्माण्डोत्पत्ति

४ पातालद्वीपार्णवसूत्रण

५ सात ऊर्ध्वलोक

६ आठ शक्ति उद्भव

७ सृष्टि संसार अवतरण

८ सात पाताल राज्य उद्भव

९ भूराज्यनिवेश

१० संसार भूत ग्राम उत्पत्ति पंच तत्व निर्णय

११ पंचतत्व पंचगुण निर्णय

१२ गर्भविज्ञान उद्भव

१३ कर्मज्ञान उद्भव

१४ शिव शक्ति ब्रह्म ज्ञान

१५ गीता सद्भाव अपरेऽपराजितबोध

१६ सत्वरजतम

१७ ग्रहादिध्रुव मण्डल

१८ ग्रहगतिमानमुहूर्तादिप्रमाण

१९ तिथिमासऋतुकालसंवत्सर

२० कल्पान्त

२१ अक्षयलिंगसृष्ट्युद्भव

२२ पंचलिंग उद्भवकाश्यप सृष्ट्युद्भव

२३ प्रथम हरिमत्स्यावतार

२४ कूर्मावतारेमन्दरार्णवमंथन

२५ वाराह अवतार

२६ नृसिंहवामन अवतार

२७ रामावतार

२८ हरेष्टमःकृष्णावतार

२९ विष्णु जन्म रहस्य दशमोवतार

३० विष्णुवाक्योद्भवारण्येश्रीसोमेश्वर निर्णय

३१ विष्णुवाक्योद्भवसोमनाथोक्त द्वादश शिवरात्री निर्णय

३२ विश्वकर्म अवतार

३३ पृथु-पृथ्वी संवाद भूलोक विश्वकर्मा गमन

३४ जय-विजय-सिद्धार्थ पृच्छा

३५ एकविंशति स्वर्ग

३६ महापर्वतप्रमाण

३७ विश्वकर्मोवलोकितपृथ्वीनवखण्डानि

३८ भारतक्षेत्रग्रामसंख्यानृपराज्यप्रमाण

३९ वनयात्रा

४० वनयात्राशिलापरीक्षण

४१ हस्तकंबीप्रमाण

४२ गणितशब्दनिघण्टु

४३ ज्योतिषपंचागवासना

४४ अवकहोडाचक्रज्योतिष

४५ अवकहोडाचक्रज्योतिषफल

४६ ज्योतिषलक्षण

४७ गणितक्षेत्रनिर्णय

४८ भूपरीक्षाग्रहपूजा

४९ सूत्रधारपरीक्षा

५० सूत्रधारलक्षण

५१ भूपरीक्षाग्रहकीलकरोपण

५२ कूर्मप्रमाणपदप्रतिष्ठा

५३ देवासुरसंग्राम वास्तूद्भव

५४ वास्तूत्पत्ति

५५ वास्तूत्पत्तिधिकारदेवतान्यास

५६ वास्तुदेवतानिघण्टु

५७ वास्तुक्षेत्रात्मकम

५८ वास्तुपददेवताभिधाननिर्णय

५९ वास्तुमर्मोपमर्मनिर्णय

६० दिक्पालादिवास्तुदेवपूजाबलिकर्मयुक्ति

६१ आचार्यसूत्रधारपूजानिर्णय

६२ वास्तुपरिभ्रमणादिगुणदोषनिर्णय

६३ गृहारम्भप्रतिष्ठादिनमासनिर्णय

६४ आयाधिकार

६५ नक्षत्रराशिचन्द्रमैत्र्यनुक्रम

६६ व्ययांशताराग्रहजीवमृत्युसर्वबल

६७ शास्त्रछन्दनिर्णय

६८ गृहप्रासादसम्भूतच्छन्दभेद

६९ गृहउत्पत्तिहर्म्यादिराजप्रासादनिर्णय

७० भूधरादिब्रह्मनगर

७१ हेमकूटाख्यनगरप्रमाण

७२ महाराजापुरनिवेश

७३ पुरलक्षण

७४ वापीकूपतड़ागनिर्णय

७५ शस्यावतार

७६ महाराजनिवेश

७७ सभाष्टकवेदीनिर्णय

७८ महाराजाधिकाराजो

७९ गजशालाप्रमाणहस्तिलक्षण

८० अश्वलक्षणशाला

८१ राजालयसिंहासनछत्रप्रमाण

८२ राजभुवन

८३ एकत्रिपंच प्रतोली

८४ गृहग्रामनगरशोभा

८५ गृहग्रामनगरशोभावर्णन

८६ महाराजाधिगृहशुद्धशेखरसंघाटमिश्रकच्छन्दनिर्णयब्रह्मनगरभूधराख्यगृहो

८७ महाराजगृहमाडलक्षण

८८ धारागिर्युद्यानलक्षण (धारा गिर उद्यानलक्षण)

८९ जल यन्त्र लक्षण

९० वैद्यशालालक्षण

९१ चतुरुत्तरशतैकशालगृहलक्षण

९२ हर्म्यादिगुणदोष

९३ युग्महंसविमलगृहद्वात्रिंशद्‌भेदलक्षण

९४ द्विशालगृहलक्षण

९५ द्विशालगृहलक्षणक्रम

९६ त्रिशाललक्षण

९७ त्रिशालगृहलक्षणक्रम

९८ चतुश्शालगृहलक्षण

९९ गृहसंयोजननिर्णय

१०० शालागृहनिर्णय

१०१ द्वारलक्षणमेकाधिकशततमं

१०२ महाराजप्रासादायतननिवेश

१०३ त्रैलोक्यदीक्षा

१०४ नागरप्रासादलक्षण

१०५ चतुर्दशप्रासादोत्पत्तिमहोत्सव

१०६ प्रासादचतुर्दशजातिलक्षण

१०७ पुरप्रासादगृहप्रमाण

१०८ प्रासादसंस्थान उन्मान लक्षण

१०९ प्रासादजीर्ण वास्तुनिर्णय

११० प्रासादनवजीर्णवास्तु

१११ जीर्णप्रासादलक्षण

११२ प्रासाददेशानुक्रम

११३ प्रासादन्यूनाधिकलक्षण

११४ मिश्रकप्रासादसप्तपुण्याह महात्म्य

११५ जगत्यंगसमुदाय

११६ चतुःषष्ठिनामजगतीनामभेद

११७ गणपतिशिवाष्टाष्टजगतीलक्षण

११८ ब्रह्मविष्णुत्रिपुरुषजगती

११९ सूर्यस्यपार्थिव्यष्टजगतीलक्षण

१२० चतुःषष्टिजगतीचतुःषष्ठिपीठ

१२१ आयतनदेवानुक्रमनिर्णय

१२२ बलाणकलक्षण

१२३ प्रासादपीठोदयमान

१२४ नागरप्रासादपीठलक्षण

१२५ प्रासादज़ातिच्छन्दपीठलक्षण

१२६ समस्तप्रासादोदयमान

१२७ नागरप्रासादविभक्तिस्तरप्रमाणलक्षण

१२८ प्रासादसमस्तमण्डोवर

१२९ प्रासादगर्भगृहोदुम्बरार्धचन्द्रलक्षणद्वारप्रतिष्ठा

१३० समस्तजातीयप्रासादद्वारप्रमाण

१३१ प्रासादविभक्तिद्वारनिर्णय

१३२ द्वारशाखाविभक्तिनिर्णय

१३३ प्रासादद्वारप्रतिहारानुक्रम

१३४ देवतादिग्भागमुखद्वारदोष

१३५ देवतापदसंस्थान

१३६ त्रिपुरुषप्रतिष्ठासूर्यमण्डलादिव्योमलक्षण

१३७ द्वारदृष्टिनिर्णय

१३८ प्रासादस्योर्ध्वमाननिर्णय

३.५.१ कामिकागम (पूर्व भाग)

१ ॥ तन्त्रावतारपटलः ॥

२ ॥ अथ मन्त्रावतारपटलः ॥

३ ॥ स्नानविधिप्रारम्भः ॥

४ ॥ अर्चनविधिपटलप्रारम्भः ॥

५ ॥ अर्चनाङ्गविधिः ॥

६ ॥ नैवेद्यविधिः ॥

७ ॥ कुण्डलक्षणविधिः ॥

८ ॥ अकिार्यविधिः ॥

९ ॥ कालविधिः ॥

१० ॥ निमित्तपरीक्षाविधिः ॥

११ ॥ भूपरीक्षाविधिः ॥

१२ ॥ प्रवेशबलिविधिः ॥

१३ ॥ भूपरिग्रहविधिः ॥

१४ ॥ भूकर्षणविधिः ॥

१५ ॥ शङ्कुस्थापनविधिः ॥

१६ ॥ मानोपकरणविधिः ॥

१७ ॥ पदविन्यासविधिः ॥

१८ ॥ सूत्रनिर्माणविधिः ॥

१९ ॥ वास्तुदेवबलिविधिः ॥

२० ॥ ग्रामादिलक्षणविधिः ॥
२१ ॥ विस्तारायामलक्षणविधिः ॥
२२ ॥ आयादिलक्षणविधिः ॥
२३ ॥ नक्षत्रचक्रविधिः ॥
२४ ॥ दण्डिकादिविधिः ॥
२५ ॥ वीथिद्वारादिमानम् ॥
२६ ॥ ग्रामादिदेवतास्थानविधिः ॥
२७ ॥ द्विजसंख्याविधिः ॥
२८ ॥ ग्रामादिविन्यासविधिः ॥
३० ॥ ग्रामाद्यङ्गस्थाननिर्णयविधिः ॥
३१ ॥ गर्भन्यासविधिः ॥
३२ ॥ बालस्थापनविधिः ॥
३३ ॥ ग्रामगृहविन्यासविधिः ॥
३४ ॥ वास्तुशान्तिविधिः ॥
३५ ॥ शालालक्षणविधिः ॥
३६ ॥ विशेषशालालक्षणविधिः ॥
३७ ॥ द्वित्रिशालालक्षणविधिः ॥
३८ ॥ चतुः शालालक्षणविधिः ॥
३९ ॥ वर्धमानशालाक्षणविधिः ॥
४० ॥ नन्द्यावर्तविधिः ॥
४१ ॥ स्वस्तिकविधिः ॥
४२ ॥ चतुः शालाविधिः ॥
४३ ॥ पञ्चशालादिविधिः ॥
४४ ॥ हस्तिशालाविधिः ॥
४५ ॥ मालिकालक्षणविधिः ॥
४६ ॥ लाङ्गलमालिकाविधिः ॥
४७ ॥ मौलिकामालिकाविधिः ॥
४८ ॥ पद्ममालिकाविधिः ॥
४९ ॥ नागरादिविभेदविधिः ॥
५० ॥ भूमिलम्बविधिपटलः ॥
५१ ॥ आद्येष्टकाविधिः ॥
५२ ॥ उपपीठविधिः ॥
५३ ॥ पादमानविधिपटलः ॥

५४ ॥ प्रस्तरविधिपटलः ॥

५५ ॥ प्रासादभूषणविधिः ॥

५६ ॥ कण्ठलक्षणविधिपटलः ॥

५७ ॥ शिखरलक्षणविधिः ॥

५८ ॥ स्थूपिकालक्षणविधिः ॥

५९ ॥ नालादिस्थापनविधिपटलः ॥

६० ॥ एकभूम्यादिविधिः ॥

६१ । मूर्धेष्टकास्थापनविधिपटलः ॥

६२ ॥ लिङ्गलक्षणविधिः ॥

६३ ॥ अघुरार्पणलक्षणविधिः ॥

६४ ॥ लिङ्गप्रतिष्ठाविधिपटलः ॥

६५ ॥ प्रतिमालक्षणविधिपटलः ॥

६६ ॥ त्रिशूलस्थापनविधिपटलः ॥

६७ ॥ देवतास्थापनविधिपटलः ॥

६८ ॥ प्रतिमाप्रतिष्ठाविधिः ॥

६९ विमानस्थापनविधिपटलः ॥

७० ॥ मण्डपस्थापनविधिपटलः ॥

७१ ॥ प्राकारलक्षणविधिः ॥

७२ ॥ परिवारस्थापनविधिः ॥

७३ ॥ परिवारार्चनविधिः ॥

७४ ॥ वृषभस्थापनविधिपटलः ॥

७५ ॥ गोपुरस्थापनविधिः ॥

३.५.२ कामिकागम (उत्तर भाग)

१ प्रथमः पटलः पश्चिमद्वारार्चनविधिः

२ द्वितीय पटले दक्षिणद्वारार्चन विधिः

३ तृतीय पटले सकलार्चनाविधिः

४ चतुर्थे पटले स्नपनविधिः

स्नपनविधि पटलः

५ पञ्चमे पटले नित्योत्सवविधिः

षष्ठे पटले महोत्सवविधिः

७ सप्तमे पटले निराजनविधिः

८ अष्टमे पटले वृत्तिकादीपावलिविधिः

९ नवमे पटले मार्गशीर्षे घूतस्नान डोलारोहण पुष्ये

१० दशमे पटले माघमासे घृतकम्बलपूजाविधिः
११ एकादशे पटले माघे शिवरात्रिपूजाविधिः
१२ द्वादशे पटले फाल्गुनमासगन्धपूजाविधिः
१३ त्रयोदशे पटले चैत्रमास दमन पूजा विधिः
१४ चतुर्दशे पटले चैत्रमास वसन्तोत्सवविधिः
१५ पञ्चदशे पटले वैशाखमासशीतकुम्भविधिः
१६ षोडशे पटले ज्येष्ठमासफलपूजाविधिः
१७ सप्तदशे पटले आषाढ मास पूर्वफल्गुनी
१८ अष्टादशे पटले श्रावणमासे पवित्रारोहण विधिः
१९ एकोनविंशत्तमे पटले नवनैवेद्यविधिः
२० विंशतितमे पटले समयविशेषदीक्षा विधिः
२१ एकविंशत्तमे पटले स्थालीपाकविधिः
२२ द्वाविंशत्तमे पटले स्वप्नाध्याय विधिः
२३ त्रयोविंशत्तमे पटले निर्वाण दीक्षा विधिः
२४ चतुर्विंशत्तमे पटले आचार्याभिषेक विधिः
२५ पञ्चविंशत्तमे पटले गोत्र निर्णय विधिः
२६ षड्विंशत्तमे पटले शताभिषेकविधिः
२७ सप्तविंशत्तमे पटले अन्त्येष्टिविधिः
२८ अष्टाविंशत्तमे पटले पितृ यज्ञ विधिः
२९ एकोनत्रिंशत्तमे पटले शैव श्राद्ध विधिः
३० त्रिंशत्तमे पटले प्रायश्चित्त विधिः
३१। एकत्रिंशत्तमे पटले अद्भुत शान्ति विधिः
३२। द्वात्रिंशत्तमे पटले अनुकर्मविधिः
३३। त्रयस्त्रिंशत्तमे पटले काम्ययोगविधानविधिः
३४। चतुस्त्रिंशत्तमे पटले संप्रोक्षण विधिः।
३५। पञ्चत्रिंशत्तमे पटले पीठप्रतिष्ठां विधिः
३६। षड्त्रिंशत्तमे पटले बाणलिङ्ग प्रतिष्ठा विधिः
३७। सप्तत्रिंशत्तमे पटले काम्यलिंग प्रतिष्ठा विधिः
३८। अष्टत्रिंशत्तमे पटले आर्षलिंग प्रासाद विधिः
३९। एकोनचत्वारिंशत्तमे पटले पौरुष लिङ्ग प्रासाद विधिः
४०। चत्वारिंशत्तमे पटले लिङ्गवशात् प्रासादविधिः
४१। एकचत्वारिंशत्तमे पटले सार्व देशिक लिंग प्रासाद विधिः
४२। द्विचत्वारिंशत्तमे पटले अङ्गलिङ्ग प्रतिष्ठा विधिः

४३। त्रिचत्वारिंशत्तमे पटले सदाशिवस्थापन विधिः

४४। चतुश्चत्वारिंशत्तमे पटले देवी स्थापन विधिः

४५। पञ्चचत्वारिंशत्तमे पटले विघ्नेश प्रतिष्ठाविधिः

४६। षट्चत्वारिंशत्तमे पटले नृत्तमूर्ति स्थापन विधिः

४७। सप्तचत्वारिंशत्तमे पटले सोमास्कन्द स्थापन विधिः

४८। अष्टचत्वारिंशत्तमे पटले चन्द्रशेखर स्थापन विधिः

४९। एकोनपञ्चाशत्तमे पटले पुरारि स्थापन विधिः

५०। पञ्चाशत्तमे पटले लिंगोद्भव विधिः

५१। एकपञ्चाशत्तमे पटले दक्षिणामूर्ति स्थापन विधिः

५२। द्विपञ्चाशत्तमे पटले भिक्षाटन प्रतिष्ठाविधिः

५३। त्रिपञ्चाशत्तमे पटले बलिभर्तुः प्रतिष्ठा विधिः

५४। चतुष्पञ्चाशत्तमे पटले शरभेश्वर प्रतिष्ठाविधिः

५५। पञ्चपञ्चाशत्तमे पटले चण्डेशाद्यनुग्रह विधिः

५६। षट्पञ्चाशत्तमे पटले भक्तानुग्रहदेवस्थापन विधिः

५७। सप्तपञ्चाशत्तमे पटले कालारिकामान्तक प्रतिष्ठाविधिः

५८। अष्टपञ्चाशत्तमे पटले कल्याणमूर्ते प्रतिष्ठा विधिः

५९। एकोनषष्ठितमे पटले कल्याण कर्म विधिः

६०। षष्ठितमे पटले विष्णूमार्ध प्रतिष्ठा विधिः

६१। एकषष्ठितमे पटले त्रिमूर्ति स्थापन विधिः

६२। द्विषष्ठितमे पटले वृषभारूढ प्रतिष्ठा विधिः

६३। त्रिषष्ठितमे पटले गङ्गाधर प्रतिष्ठा विधिः

६४। चतुष्षष्ठितमे पटले गुह स्थापन विधिः

६५। पञ्चषष्ठितमे पटले चण्डेश स्थापन विधिः

६६। षट्षष्ठितमे पटले शिवभक्त प्रतिष्ठा विधिः

६७। सप्तष्ठितमे पटले विद्यापीठ प्रतिष्ठा विधिः

६८। अष्टषष्ठितमे पटले दशायुध प्रतिष्ठा विधिः

६९। एकोनसप्ततितमे पटले त्रिशूल स्थापन विधिः

७०। सप्ततितमे पटले सिंहासन प्रतिष्ठा विधिः

७१। एकसप्ततितमे पटले रथादि स्थापन विधिः

७२। द्विसप्ततितमे पटले करणलक्षण विधिः

७३। त्रिसप्ततितमे पटले सौख्य कर्म विधिः

७४। चतुस्सप्ततितमे पटले वैशिष्य विधान विधिः

७५। पञ्चसप्ततितमे पटले व्याधिनाश विधान विधिः

७६। षट्सप्ततितमे पटले राज रक्षा विधिः

७७। सप्तसप्ततितमे पटले दुर्गा पूजा विधिः

७८। अष्टसप्ततितमे पटले वाजि नीराजन विधिः

७९। एकोनाशीतितमे पटले राज नीराजन विधिः

८०। अशीतितमे पटले पुष्याभिषेक विधिः

८१। एकाशीतितमे पटले ग्रह यज्ञविधिः

८२। द्वयशीतितमे पटले प्रतिसर विधिः

८३। त्र्यशीतितमे पटले तुलारोह षोडश दानि विधिः

८४। चतुश्शीतितमे पटले हिरण्य गर्भ दानविधिः

८५। पञ्चशीतितमे पटले तिलपर्वतदान विधिः

८६। षड्शीतितमे पटले सुवर्ण भूमिदान विधिः

८७। सप्ताशीतितमे पटले कल्पपादपदान विधिः

८८। अष्टाशीतितमे पटले गणेश दान विधिः

८९। एकोननवतितमे पटले हेम धेनुदान विधिः

९०। नवतितमे पटले लक्ष्मीदान विधिः

९१। एकनवतितमे पटले तिलधेनु दान विधिः

९२। द्विनवतितमे पटले सहस्रगोदान विधिः

९३। त्रिनवतितमे हिरण्याश्व दान विधिः

९४। चतुर्नवतितमे पटले कन्यादान विधिः

९५। पञ्चनवतितमे पटले हिरण्योक्ष प्रदान विधिः

९६। षण्णवतितमे पटले गजदान विधिः

९७। सप्तनवतितमे पटले लोकपालाष्टकदान विधिः

९८। अष्टनवतितमे पटले स्दानोत्तम विधिः

३.६ काश्यप शिल्प

१ कर्षणविधि

२ प्रासाद विधि

३ वास्तु होम

४ प्रथेमेष्टका

५ उपपीठ

६ अधिष्ठान

७ नालप्रतिष्ठा

८ स्तम्भ

९ बोधिका

१० वेदिकालक्षण

११ जालकलक्षण

१२ तोरण

१३ वृत्तस्फाटिका

१४ स्तम्भतोरणमान

१५ कुम्भस्थललक्षण

१६ वृत्तस्फाटिका

१७ द्वारविन्यास

१८ कम्पद्वार

१९ प्रस्तरलक्षण

२० गलभूषण

२१ शिखर के लक्षण

२२ नासिका

२३ प्रासादलक्षण

२४ मानसूत्र

२५ आयादिलक्षण

२६ गर्भविन्यास

२७ एकतलविधान

२८ दोतलविधान

२९ तीनतलविधान

३० चार तल विधान

३१ कूटकोष्ठ व पंजर

३२ पाँच तल विधान

३३ छहतलविधान

३४ सात तलविधान

३५ आठ तलविधान

३६ नव तलविधान

३७ दस तलविधान

३८ ग्यारहतलविधान

३९ बारह तलविधान

४० तेरह तलविधान

४१ सोलह तलविधान

४२ मूर्धेष्टिका

४३ प्राकार

४४ मण्डप

४५ गोपुर

४६ परिवार

४७ विनायक

४८ षण्मुख

४९ लिंगविधान

५० प्रतिमाविधान

५१ मध्यम दस ताल विधान

५२ अधम दस ताल विधान

५३ उत्तम नवतालविधान

५४ मध्यम नवतालविधान

५५ अधम नवतालविधान

५६ आठ ताल विधान

५७ साततालविधान

५८ पिण्डिका लक्षण

५९ पीठिका लक्षण

६० सकल स्थापन विधि

६१ सुखासन मूर्ति

६२ सोमस्कन्देश्वर

६३ चन्द्रशेखर

६४ वृषवाहन

६५ नृत्तमूर्ति

६६ गंगाधरमूर्ति

६७ त्रिपुरान्तकमूर्ति

६८ कल्याणमूर्ति

६९ अर्धनारीश्वर

७० गजहामूर्ति

७१ पाशुपतिमूर्ति

७२ कंकालमूर्ति

७३ हरिहरमूर्ति

७४ भिक्षाटनमूर्ति

७५ चण्डेशानुग्रहमूर्ति

७६ दक्षिणामूर्ति

७७ कालहामूर्ति

७८ लिंगोद्भवमूर्ति

७९ वृक्षसंग्रहण

८० शूल लक्षण

८१ शूल की स्थापना

८२ रज्जुबन्धलक्षण

८३ मिट्टी के स्थिरीकरण

८४ कल्कसंस्कार

८५	वर्णसंस्कार

३.७ वास्तुमण्डन

अध्याय	शीर्षक
१	मिश्रकलक्षण
२	आयादिलक्षण
३	पुरदुर्गयन्त्रजलाशयादिलक्षण
४	गृहादिनिवेशन
५	गृहविन्यास
६	एकशालादिगृहलक्षण
७	दूषणभूषणानि
८	गृहप्रकारगोपुरप्रासादसभाष्टकमण्डपवेदिकासिंहासनगवाक्षछाद्यछत्रार्चापीठदीपस्तम्भशय्याशिबिकागृहप्रवेश

३.८ मानसार

अध्याय सूची

१ संग्रह

२ शिल्पि के लक्षण तथा मान के उपकरण

३ वास्तु

४ भूमिसंग्रहविधान

५ भूमि की परीक्षा

६ शंकु की स्थापना द्वारा दिशा ज्ञान

७ पदविन्यास के लक्षण

८ बलिकर्मविधान (हवन करने की विधि)

९ ग्रामलक्षण

१० नगर

११ भूमिलम्बविधान

१२ गर्भविन्यासविधान

१३ उपपीठविधान (भवन का निचला भाग)

१४ अधिष्ठानविधान (भवन का आधार)

१५ स्तम्भलक्षण

१६ प्रस्तरविधान

१७ सन्धिकर्मविधान

१८ विमानलक्षण

१९ एक मंजिला भवन

२० दो मंजिला भवन

२१ तीन मंजिला भवन

२२ चार मंजिला भवन

२३ पाँच मंजिला भवन

२४ छह मंजिला भवन

२५ सात मंजिला भवन

२६ आठ मंजिला भवन

२७ नौ मंजिला भवन

२८ दस मंजिला भवन

२९ ग्यारह मंजिला भवन

३० बारह मंजिला भवन

३१ प्राकार (परकोटे का) विधान

३२ परिवार (देवताओं के परिवार) विधान

३३ गोपुर विधान

३४ मण्डपविधान

३५ शालाविधान

३६ गृहमानस्थानविधान

३७ गृहप्रवेशविधान

३८ द्वारस्थानविधान

३९ द्वारमानविधान

४० राजहर्म्य (राजमहल) विधान

४१ राजाङ्गलक्षण

४२ राजलक्षण

४३ रथ लक्षण

४४ शयनविधान

४५ सिंहासनलक्षण

४६ तोरणविधान

४७ मध्यरंगविधान

४८ कल्पवृक्षविधान

४९ मौलिलक्षण

५० भूषणलक्षण

५१ त्रिमूर्तिलक्षण

५२ लिंगविधान

५३ पीठलक्षण

५४ शक्तिलक्षण

५५ जैन (प्रतिमा) लक्षण

५६ बौद्ध (प्रतिमा)लक्षण

५७ मुनिलक्षण

५८ यक्षविद्याधरलक्षण

५९ भक्तलक्षण

६० हंसलक्षण

६१ गरुडलक्षण

६२ वृषभलक्षण

६३ सिंहलक्षण

६४ प्रतिमालक्षण

६५ उत्तमदशतालविधान

६६ मध्यमदशतालविधान

६७ प्रलम्बलक्षण

६८ मधूष्छिष्टविधान

६९ अंगदूषणविधान

७० नयनोन्मीलनलक्षण

३.९ मयमत

क्रमांक	नाम
अध्याय १	संग्रहाध्याय (ग्रन्थ की विषय वस्तु)
अध्याय २	वास्तु के प्रकार
अध्याय ३	भूमि की परीक्षा
अध्याय ४	भूपरिग्रह (भूमि का अधिग्रहण)
अध्याय ५	मानोपकरण (नापने की इकाई तथा स्थपति लक्षण)
अध्याय ६	दिक्परिच्छेद (दिशा ज्ञात करने की विधि)
अध्याय ७	पद विन्यास (नगर, प्लाट आदि पर देवता का स्थान)
अध्याय ८	वास्तु-देवता के लिए हवन
अध्याय ९	ग्राम रचना
अध्याय १०	नगर नियोजन
अध्याय ११	(भवन की लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचा
अध्याय १२	गर्भ विन्यास (नींव की स्थापना)
अध्याय १३	उपपीठ (भवन का सबसे निचला भाग)
अध्याय १४	अधिष्ठान (भवन के आधार का वर्णन)
अध्याय १५	खम्बा, स्तम्भ के आकार व पदार्थ)
अध्याय १६	प्रस्तर (स्तम्भ के ऊपर का भाग)
अध्याय १७	लकड़ी को जोड़ने की विधि)
अध्याय १८	शिखर आदि निर्माण, कार्य की पूर्णता)
अध्याय १९	एक मंजिल भवन
अध्याय २०	दो भूमि विधान
अध्याय २१	तीन मंज़िला भवन
अध्याय २२	चार आदि बहु मंज़िला भवन

अध्याय २३	(परकोटा व देवताओं का परिवार)
अध्याय २४	गोपुरविधानम् (नगर व परकोटे के दरवाजे)
अध्याय २५	मण्डप, सभा विधान
अध्याय २६	शाला विधान (एक से चार शाला वाले घर)
अध्याय २७	चतुर्गृहविधानम् (वर्ण के अनुसार घर)
अध्याय २८	गृह-प्रवेश
अध्याय २९	राजमहल विधान
अध्याय ३०	द्वार-विधान
अध्याय ३१	वाहन
अध्याय ३२	शय्या एवं आसन
अध्याय ३३	लिंगलक्षण
अध्याय ३४	पीठ लक्षण
अध्याय ३५	अनुकर्मविधान (जीर्णोद्धार विधि)
अध्याय ३६	प्रतिमालक्षण

३.१० प्रासाद मण्डन

अध्याय क्रमांक	विषय
१	मिश्रक लक्षण
२	जगती दृष्टि आयतन अधिकार
३	पीठ मण्डोवर गर्भगृह व उदुम्बर
४	पीठिका मान
५	श्री वैराज्य आदि प्रासाद
६	केसर इत्यादि पच्चीस प्रासाद
७	मंडपविधान
८	सामान्य लक्षण

३.११ राजवल्लभ

अध्याय १	मिश्रक लक्षण
अध्याय २	वास्तु लक्षण
अध्याय ३	आयादि लक्षण
अध्याय ४	नगर, प्राकार, यन्त्र, वापी, कूप तडाग व कुण्ड लक्षण
अध्याय ५	राजगृहनिवेशादिलक्षण
अध्याय ६	एकशालद्विशालगृहलक्षणम्
अध्याय ७	दो शाला, तीन शाला व चार शाला वाले घर
अध्याय ८	शयन सिंहासन छत्र गवाक्ष सभाष्टक
अध्याय ९	राजगृहादिलक्षणम्
अध्याय १०	गणितक्षेत्राद्भुतलक्षणम्
अध्याय ११	दिनशुद्धिगृहनिवेशगृहप्रवेशविवाहमुहूर्तलक्षणम्
अध्याय १२	गोचरदिनरात्रिस्वरोदयचक्रमातृकाशकुनलक्षण
अध्याय १३	ज्योतिष लक्षण
अध्याय १४	शकुनलक्षणम्

३.१२ शिल्परत्नाकर

अध्याय	विषय
१	आयादि अंग विचार
२	प्रासादोत्पत्ति प्रकरण
३	द्वारशाखा लक्षणाधिकार
४	मूर्तिविधान
५	शिखरनिर्दोषयोर्लक्षणाधिकार
६	केशरादिप्रासादलक्षणाधिकार
७	तिलकसागरादिप्रासाद लक्षणाधिकार
८	ऋषभादिद्विसप्ततिप्रासादलक्षणाधिकार
९	वैराज्यादि प्रासाद लक्षणाधिकार
१०	मेर्वादिविंशति प्रासाद लक्षणाधिकार
११	देवमूर्तिस्वरुप लक्षणाधिकार
१२	जिनमूर्तिस्वरुप लक्षणाधिकार
१३	प्रतिष्ठाविधिलक्षणाधिकार
१४	ज्योतिर्मुहूर्तलक्षणाधिकार

३.१३ समरांगण-सूत्रधार

अध्याय	शीर्षक
१	महासमागमन
२	विश्वकर्म-पुत्र संवाद
३	प्रश्न
४	महदादि सर्ग
५	भुवनकोश
६	सहदेवाधिकार

अध्याय	शीर्षक
७	वर्णाश्रमप्रविभाग
८	भूमिपरीक्षा
९	हस्त लक्षण
१०	पुर निवेश
११	वास्तु त्रय विभाग
१२	नाड्यादिशिरादिविकल्प
१३	मर्मवेध
१४	पुरुषांगदेवतानिघण्ट्वादिनिर्णय
१५	राजनिवेश
१६	वनप्रवेश
१७	इन्द्रध्वजनिरुपण
१८	नगरादिसंज्ञा
१९	चतुःशालविधान
२०	निम्नोच्चादिफलानि
२१	७२ त्रिशाललक्षण
२२	द्विशाललक्षण
२३	एकशाललक्षण फलादि
२४	द्वारपीठभित्तिमानादि
२५	समस्तगृहाणां संख्याकथन
२६	आयादि निर्णय
२७	सभाष्टक
२८	गृहद्रव्यप्रमाणानि
२९	शयनासन लक्षण
३०	राजगृहविधान
३१	यन्त्रविधान

अध्याय	शीर्षक
३२	गजशाला
३३	अश्वशाला
३४	प्रयोज्याप्रयोज्य
३५	शिलान्यास विधि
३६	बलिदानविधि
३७	कीलकसूत्रपात
३८	वास्तुसंस्थानमातृका
३९	द्वारगुणदोष
४०	पीठमान
४१	चयविधि
४२	शान्तिकर्मविधि
४३	द्वारभंगफल
४४	स्थपतिलक्षण
४५	अष्टांगलक्षण
४६	तोरणभंगशान्तिक
४७	वेदीलक्षण
४८	गृहदोषनिरुपण
४९	रुचकादिप्रासादलक्षण
५०	प्रासादशुभाशुभलक्षण
५१	आयतननिवेश
५२	प्रासादजातिनाम
५३	जघन्यवास्तुद्वार
५४	प्रासादद्वारमानादि
५५	मेर्वादिषोडशप्रासादिलक्षण
५६	रुचकादिचतुषष्ठिप्रासादकः

अध्याय	शीर्षक
५७	मेर्वादिविंशिका
५८	प्रासादस्तवन
५९	विमानादिचतुःषष्ठिप्रासादलक्षण
६०	श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादलक्षण
६१	पीठपञ्चकलक्षण
६२	द्राविडप्रासादलक्षण
६३	मेर्वादिविंशिकानागरप्रासादलक्षण
६४	दिग्भद्रादिप्रासादलक्षण
६५	भूमिजप्रासादलक्षण
६६	मण्डपलक्षण
६७	सप्तविंशतिमण्डपलक्षण
६८	जगति-अंग-समुदायाधिकार
६९	जगतिलक्षण
७०	लिंगपीठप्रतिमालक्षण
७१	चित्रोद्देश
७२	भूमिबन्धन
७३	लेपकर्मादि
७४	अण्डकप्रमाण
७५	मानोत्पत्ति
७६	प्रतिमालक्षण
७७	देवादिरुपप्रहरणसंयोगलक्षण
७८	दोषगुणनिरूपण
७९	ऋज्वागतादिस्थानलक्षण
८०	वैष्णवादिस्थानलक्षण
८१	पञ्चपुरुषस्त्रीलक्षण

अध्याय	शीर्षक
८२	रसदृष्टिलक्षण
८३	पताकादिचतुषष्ठिहस्तलक्षण

३.१४ विश्वकर्म वास्तुशास्त्र

अध्याय	शीर्षक
१	शिवस्तुति वर्णन
२	शिवस्तुतिकथनपरमेश्वरकृतवरप्रासादकथन
३	दिङ्निर्णयकथन
४	द्रव्यसंग्रहणकथन
५	भूपरीक्षाकथन
६	भूमिग्रहण
७	ग्रामलक्षण
८	खेटादिलक्षण
९	पद्मादिनगरलक्षणनिरुपण
१०	दुर्गलक्षण
११	देवप्रासादभूमान
१२	नृपप्रासादभूमानलक्षण
१३	नृपप्रासाददुर्गपरिखालक्षण
१४	भवनलक्षणनिरुपण
१५	पूर्वभवनलक्षणनिरुपण
१६	न्यायशालालक्षण
१७	पौरदेश्यसभादिकथन
१८	भाण्डागारलक्षण
१९	अन्तःपुरलक्षणविविधगवाक्षलक्षण
२०	आयुधशालालक्षणपुस्तकशालालक्षण

अध्याय	शीर्षक
२१	अन्तर्भवनलक्षणनिरुपण
२२	भोजनशालालक्षण
२३	शय्यागृहलक्षण
२४	वसन्तगृहलक्षण
२५	सकलविधद्वारलक्षण
२६	तोरणलक्षण
२७	अधिष्ठानलक्षण
२८-३२	एकादिनवभौमगोपुरविधिकथन
३३	वापीलक्षण
३४	तटाकलक्षण
३५-३६	नृपदेवालयविधानपूर्वमण्टपविधानकथन
३७	मृगशालालक्षणनिरुपण
३८-३९	वाजीशालाहस्तिशालालक्षण
४०	विद्याशालालक्षण
४१	संकीर्णभवनलक्षण
४२	पताकालक्षण
४३	पारिभद्रलक्षण
४४	महाशालालक्षणविशेषशालालक्षण
४५	विशेषशालालक्षणकथन
४६	कल्याणशालालक्षण
४७	पंचभौमविधानक्रमनिरुपण
४८	गोपुरविधानक्रमनिरुपण
४९	रंगशालालक्षण
५०	मन्त्र्यादिभवनलक्षण
५१	ग्रामगृहनिर्माणक्रमकथन

अध्याय क्रमांक	शीर्षक
५२	विशेषतोविप्रादिचातुर्वर्ण्यलक्षण
५३	कवाटार्गलादिलक्षण
५४	सर्वविधसोपानलक्षण
५५	एकशालालक्षण
५६	द्विशालालक्षण
५७	बहुशालालक्षण
५८	नानाविधपीठिकावेदिकालक्षण
५९	पोतिकालक्षण
६०	चत्वरलक्षण
६१	संधिबन्धकथन
६२	सर्वविधावरणलक्षण
६३	लुपालक्षण
६४	सकलविधस्तम्भलक्षण
६५	धान्यगृहलक्षण
६६	गोशालालक्षण
६७	ग्रामपुरद्वारलक्षण
६८-६९	मार्गलक्षणकथनमार्गशालालक्षण कथन
७०	मार्गविश्रान्तिस्थलकल्पनलक्षण
७१	विशेषभौमलक्षण
७२	देवप्रासादलक्षण
७३	गर्भगृहलक्षण
७४	शतस्तम्भमण्डपलक्षण
७५	विमानलक्षण
७६	प्राकारलक्षण
७७	उपपीठलक्षण

अध्याय क्रमांक	शीर्षक
७८	सकलविधदेवपीठलक्षण
७९	सकलबेरलक्षण
८०	शिवबेराणामभेदक्रमकथन
८१	विष्णुबेराणामभेदक्रमकथन
८२	लक्ष्मीगौर्यादिबेरलक्षण
८३	भक्तबेरस्थापनक्रमकथन
८४	कल्पवृक्षादिवाहनलक्षणक्रमकथन
८५	उत्सवकालनिर्णयकथन
८६	प्रतिमापूजनभजनादिफलकथन
८७	मनुष्यजन्मफलकथन

३.१५ विश्वकर्मप्रकाश

अध्याय क्रमांक	शीर्षक
१	भूमि लक्षण
२	गृहादि विचार
३	गृहारम्भ मुहूर्त
४	गृह व शयन विचार
५	वास्तुपदविन्यास
६	प्रासाद विधान
७	द्वार निर्माण
८	जलाशय
९	वृक्ष छेदन विधि
१०	गृहप्रवेश
११	दुर्गलक्षण
१२	शल्योद्धार
१३	गृहवेध विचार

अध्याय ४

समरांगण-सूत्रधार का अभियान्त्रिकी पक्ष

अध्याय ४

समरांगण-सूत्रधार का अभियान्त्रिकी पक्ष

अध्याय ४ समरांगण-सूत्रधार का अभियान्त्रिकी पक्ष

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
४.१	समरांगण-सूत्रधार विषय वस्तु	४
४.२	वास्तु शास्त्र का उद्देश्य- लोक हित	१७
४.२.१	मंगलाचरण	१७
४.२.२	ग्रन्थ का उद्देश्य	१८
४.२.३	पितामह ब्रह्मा से पृथ्वी का निवेदन	१९
४.२.४	ब्रह्माजी द्वारा पृथ्वी को अभय दान	२४
४.३	वास्तुपुरुष उत्पत्ति	२५
४.४	वास्तु पद विन्यास	२८
४.४.१	पदविन्यास	२८
४.४.२	पद देवता	३१
४.४.३	समरांगण सूत्रधार के आधार पर निघण्टु	३८
४.४.४	वास्तु देवता तथा बलिकर्म	४०
४.५	वर्ण व्यवस्था	४३
४.५.१	विषय प्रवेश	४३
४.५.२	वर्णाश्रम का निर्धारण	४३
४.५.३	रंग	४५
४.५.४	स्वाद	४६
४.५.५	आकार	४७
४.६	नगर नियोजन	४९
४.६.१	नगर के प्रकार व मान	४९
४.६.२	पदविन्यास व मार्ग	४९
४.६.३	प्राकार	५१
४.६.४	द्वार	५१
४.६.५	प्रतोली	५१
४.६.६	पक्षद्वार	५१
४.६.७	नालियाँ	५१
४.६.८	अशुभ आकार परिणाम	५२
४.६.९	नगर शान्ति	५२
४.६.१०	नगर-नियोजन	५२
४.६.११	नगर के अन्दर स्थित मन्दिर	५३

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
४.७	राजनिवेश	५५
	४.७.१ नगर में राजमहल का स्थान	५५
	४.७.२ द्वार	५५
४.८	आयादि निर्णय	५९
	४.८.१ परिभाषा	५९
	४.८.२ उपयोग	५९
	४.८.३ इकाई	५९
	४.८.४ हस्त व अंगुल के उपयोग का महत्व	५९
४.९	गृहद्रव्यप्रमाणानि	६१
	४.९.१ मध्यम द्वार का मान	६१
	४.९.२ चौखट	६२
	४.९.३ घर की ऊँचाई	६२
	४.९.४ स्तम्भ का मान	६३
	४.९.५ उत्कालक आदि अंग	६३
	४.९.६ स्तम्भ तलपट्ट	६४
	४.९.७ हीरग्रहण आदि अंग व स्तम्भ भूषण	६५
	४.९.८ तुला आदि अवयव	६५
	४.९.९ तल विन्यास	६५
	४.९.१० पीठमान	६६
	४.९.११ चुनाई के गुण	६६

४.१ समरांगण-सूत्रधार विषय वस्तु

राजा भोज द्वारा विरचित समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ में कुल ८३ अध्याय हैं।

इसमें पहला अध्याय **महासमागमन** है। महासमागमन शब्द का अर्थ होता है कि किसी एक स्थान पर विशिष्ट लोगों (या देव आदि) का एकत्रित होकर सभा करना। इस अध्याय में ब्रह्माजी, विश्वकर्माजी, महाराजा पृथु तथा पृथ्वी आदि एकत्रित होते हैं।

इस अध्याय में सर्वप्रथम रचनाकार स्वयं को गौण मानते हुए तथा ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलाचरण करता है। इसमें भगवान् शंकर की स्तुति की गई है।

उद्देश्यः- इसके उपरान्त लोगों को सुख की प्राप्ति के लिए शुभ व अशुभ लक्षण बताने के महत्व पर प्रकाश डाला है। यह बताया है कि देश, पुर, निवास व भवन के शुभ लक्षणों से युक्त होने पर उसमें निवास करने वाले व्यक्ति सुख प्राप्त करते हैं। इन लक्षणों को बताने के लिए शास्त्र की आवश्यकता होती है, इसलिए वास्तुशास्त्र की रचना की जा रही है।

उसके पश्चात वर्णन किया गया है कि पृथ्वी ब्रह्माजी के सम्मुख उपस्थित होती है तथा उनसे प्रार्थना करती है कि राजा पृथु के कारण मैं दुखी हूँ तथा आपकी शरण में आई हूँ। इसी समय महाराजा पृथु भी उपस्थित हो जाते हैं तथा ब्रह्माजी से निवदेन करते हैं कि हे प्रभु! आपने ही मुझे पृथ्वी का राजा बनाया है, यह पृथ्वी जो कि पहाड़ों, ऊँचे-नीचे स्थानों से भरी हुई है उसको समतल करके अब मैं ग्राम, नगर, राजधानी, निवास आदि का निर्माण, वर्ण के अनुसार करना चाहता हूँ तो यह सहयोग नहीं कर रही है एवं आपके सम्मुख उपस्थित हो गई है।

पृथ्वी तथा राजा पृथु दोनों की बात सुनने के उपरान्त ब्रह्माजी पृथ्वी से कहते हैं कि तुम निश्‍चिंत होकर राजा का सहयोग करों। राजा पृथु से भी कहा कि तुम नियमानुसार पृथ्वी का पालन करो। विश्वकर्मा से कहा कि आप राजा पृथु की सहायता करें।

अध्याय २- इस अध्याय का नाम है- **विश्वकर्म-पुत्र संवाद**। इस अध्याय में वर्णन मिलता है कि विश्वकर्मा के स्मरण करने पर उनके चार मानस पुत्र-जय, विजय, सिद्धार्थ व अपराजित, विश्वकर्माजी के सामने उपस्थित होते हैं। विश्वकर्माजी उनसे कहते हैं कि ब्रह्माजी के द्वारा आदेशित होने पर हमें पृथ्वी पर निर्माण कार्य करना है। इस कार्य में आप सब मेरी सहायता करें। मैं स्वयं, राजा पृथु के लिए राजधानी का निर्माण करूँगा तथा आप सब चारों दिशाओं में वर्ण व उपयोग के अनुसार विभिन्न नगर, ग्राम, खेट आदि का निर्माण करें।

तृतीय अध्याय का शीर्षक है **प्रश्न**। इस अध्याय में बताया गया है कि विश्वकर्माजी का (के) पुत्र जय अपने पिता का सर्वप्रथम धन्यवाद देते हुए कहते हैं कि यह हमारा सौभाग्य है कि इस कार्य हेतु आपने हमें उपयुक्त समझा। उसके उपरान्त वे अपने प्रश्नों का आरम्भ करते हैं कि इस सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई ? इसके उपरान्त विभिन्न ग्रह-नक्षत्र आदि कैसे उद्‌भूत हुए ? इस सारे ज्योतिश्च चक्र का संचालन किस प्रकार होता है? इस पृथ्वी का आकार आदि कैसा है, इस पर कितने पर्वत व द्वीप आदि हैं? कितने वर्ण हैं? भूमि का चयन, परीक्षण आदि कैसे करना, शल्य कैसे ज्ञात करना आदि। नगर, दुर्ग आदि के प्रकार, निर्माण की विधि, क्रम आदि क्या है? उसमें विभिन्न मार्ग, भवन, कक्ष आदि का निर्माण किस प्रकार व कहाँ करना चाहिए ? राजा व देवताओं आदि के भवन किस प्रकार बनाए जाते हैं? विभिन्न कक्षों की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई व स्थान आदि के बारे में बताएँ? भवन के विभिन्न अंगों का मान भी बताने की कृपा करें। उपयुक्त व अनुपयुक्त वृक्ष, काष्ठ आदि को भी बताएँ। इस प्रकार सभी शुभ व अशुभ का वर्णन करें जिससे की हम शुभ का चयन एवं अशुभ को छोड़कर निर्माण कर सकें।

चौथा अध्याय **महदादि सर्ग** है। यह महद आदि सर्ग है। सर्ग का तात्पर्य अध्याय से होता है। चूँकि जय का प्रथम प्रश्न सृष्टि की उत्पत्ति के संदर्भ में था, अतः इस अध्याय में विश्वकर्माजी अपने उत्तरों का आरम्भ सृष्टि की उत्पत्ति से ही करते हैं।

विश्वकर्माजी सबसे पहले कहते हैं कि विषय के संबंध में तुम्हारे प्रश्न सुनकर यह स्पष्ट हो गया है कि यह **वास्तुशास्त्र का क्षेत्र** तुम्हें पूरी तरह से स्पष्ट है। वास्तु से संबंधित कौन-कौन से विषय होते हैं, एक वास्तुशास्त्री को कितने विषयों का ज्ञान होना चाहिए यह तुम्हें ज्ञात है।

उसके उपरान्त विश्वकर्माजी क्रमशः प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ करते हैं। सर्वप्रथम जब सब कुछ एक ही था तब विष्णुजी की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ, उसमें से ही ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी ने जब जगत की सृष्टि का चिन्तन किया तो **महान** की रचना की। उससे अहंकार तथा अहंकार से मन, इन्द्रियाँ, तन्मात्राएँ उत्पन्न हुई। तन्मात्रा से आकाश आदि भूत की उत्पत्ति हुई।

उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने भौतिक सर्ग की रचना की । मन से सुर, असुर, यक्ष, राक्षस आदि की रचना की। नेत्र से सूर्य व चन्द्रमा को उत्पन्न किया। तदुपरान्त मेघ, वायु, धरती आदि बने। ग्राम व नगर में रहने वाले जीव उत्पन्न हुए। वनस्पति आदि उत्पन्न हुई।

पाँचवाँ अध्याय **भुवनकोश** है। इस अध्याय में पृथ्वी का व्यास, परिधि, क्षेत्र आदि का मान बताया है। इसमें बताया है कि पृथ्वी पर कितने समुद्र, पर्वत, द्वीप, देश (राष्ट्र) हैं।

जम्बूद्वीप, शाकद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाल्मलीद्वीप, गोमेधद्वीप तथा पुष्करद्वीप हैं।

जम्बूद्वीप पर हिमाद्रि, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत व श्रृंगी पर्वत हैं। इसी जम्बूद्वीप पर अनेक वर्ष (राष्ट्र) हैं, इनमें से एक वर्ष भारतवर्ष है। यह भारतवर्ष हिमालय पर्वत के दक्षिण से समुद्र तक फैला है तथा धनुषाकार है। इसी प्रकार अन्य द्वीप पर स्थित पर्वतों का वर्णन है।

इसी अध्याय में यह भी बताया है कि किन-किन वर्षों में कैसे-कैसे लोग रहते हैं, उनकी आयु कितनी होती है, उनका भोजन क्या है, उनके शरीर की कान्ति किस प्रकार की है। इस प्रकार से इस अध्याय में पृथ्वी पर स्थित द्वीप, पर्वत, वर्ष तथा इनके मान का वर्णन है। इन वर्षों में रहने वाले व्यक्ति, उनकी आयु, भोजन व कान्ति का वर्णन भी है।

इसी अध्याय में आगे ग्रह, नक्षत्र आदि का वर्णन है। इनमें किस प्रकार की वायु का संचरण है उसे बताया है। दिन, मास, ऋतु व वर्ष के प्रमाण को बताया है।

छठवाँ अध्याय **सहदेवाधिकार** है। इस अध्याय में हमें भवन के जन्म की कथा का वर्णन मिलता है। इसमें भवन की आवश्यकता क्यों हुई इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। इसमें बताया है कि पहले देवता व मनुष्य साथ-साथ रहते थे। मनुष्य स्थिर यौवन

वाले थे, जरा (बुढ़ापे के कारण दुर्बलता)-रोग से रहित उनका जीवन होता था। केवल बसन्त ऋतु ही थी, पूर्ण चन्द्र था, कल्पवृक्ष था। मनुष्यों की जो भी इच्छा होती थी, वह कल्पवृक्ष के प्रभाव से तुरन्त ही पूरी हो जाती थी। वे स्वर्ग भी जाते थे। उनको किसी प्रकार का कोई भी भय आदि नहीं था। उनकी चेतना सतोगुण प्रधान थी। धीरे-धीरे काल के प्रभाव से उनकी चेतना सतोगुणी स्तर से नीचे उतर कर रजोगुण प्रधान होने लगी तब उनकी प्रवृत्तियाँ राजसी (रजोगुण से प्रभावित) होने लगी। इसके फलस्वरुप कल्पवृक्ष लुप्त हो गया। अब उनकी इच्छाएँ पूरी नहीं होती, अनेक ऋतुएँ हो गई। तब शीत, वर्षा आदि से बचने के लिए उन्हें भवन की आवश्यकता महसूस हुई तथा वे भवन बनाकर रहने लगे। इस प्रकार से मनुष्य की चेतना के स्तर में गिरावट के फलस्वरुप उसे भवन की आवश्यकता महसूस हुई।

सातवाँ अध्याय **वर्णाश्रमप्रविभाग** है। इस अध्याय में कथानक के माध्यम से आश्रम व व्यवस्था का वर्णन किया गया है। यह बताया गया है कि मनुष्यों के कष्ट के निवारण के लिए ब्रह्माजी, पृथ्वीवासियों के पास राजा पृथु को लाए। मृत्युलोकवासियों से कहा कि ये तुम्हारे राजा हैं तथा तुम्हारे कष्टों को दूर करेंगे। उसके उपरान्त राजा पृथु ने लोगों की वृत्तियों के अनुसार उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र चार वर्णों में विभाजित किया। जो अध्ययन-अध्यापन, यज्ञादि कर्म व दानादि लेते व देते थे, उन्हें **ब्राह्मण** बनाया। जो शारीरिक रुप से बलिष्ठ थे, शरणागत की रक्षा करने में सक्षम थे, क्षमाशील थे वे **क्षत्रिय** बनाए गए। जिनमें धनार्जन के प्रति सहज अनुराग थे, उदारहृदय थे उन्हें **वैश्य** तथा कृषि व पशुधन पोषण आदि में लगे थे उन्हें **शूद्र** बनाया। इन चारों वर्णों के कार्य का भी निर्धारण किया गया।

आठवाँ अध्याय **भूमिपरीक्षा** है। इसमें सबसे पहले तीन प्रकार के देश बताएँ हैं-जांगल (रेगिस्तान आदि), अनूप (जल से परिपूर्ण) व साधारण। इनमें भूमि के सोलह भेदों का, उनकी विशेषताओं के साथ वर्णन किया गया है। यह सोलह भेद इस प्रकार हैं-बालिशस्वामिनी (बालक द्वारा शासित), भोग्या (धनवान प्रजा से युक्त), गोचररक्षिणी सीता (नदी या पहाड़ द्वारा सीमा का विभाजन हो), अपाश्रयवती (जहाँ रहने के स्थान आसानी से न हो), कान्ता (मनोरम), खनिमती (सोने आदि खनिज से युक्त), आत्मधारिणी (कर आदि का अधिक बन्धन न हो), वणिक् प्रसाधिता (व्यापारिक), द्रव्यसम्पन्ना (वनस्पति आदि से युक्त), अमित्रधातिनी (साधु-सन्त व मित्र आदि से युक्त), आश्रेणीपुरुषा

(सभ्य जनों से युक्त), शक्य-सामन्ता (सामन्त आदि राज्य के उत्थान में लगे हों), देवमातृका (देव का कृपा रहती हो), धान्यशालिनी (अधिक पैदावार होती हो), हस्तिवनोपेता (हाथियों के लिए उपयुक्त भूमि) व सुरक्षा (शत्रु से सुरक्षित)। इसके पश्चात् नगर आदि के लिए उपयुक्त भूमि का वर्णन है। उसके पश्चात दुर्ग के लिए उपयुक्त भूमि के लक्षण को बताया है। उसके पश्चात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के लिए रंग, गन्ध, स्वाद के अनुरुप भूमि के लक्षण बताएँ हैं। उसके उपरान्त ध्वनि व स्पर्श के अनुसार भूमि चयन विधि का वर्णन है। उसके पश्चात् अशुभ या त्याज्य भूमि का वर्णन किया गया है। भूमि चयन के उपरान्त, मिट्टी के परीक्षण की विधि का वर्णन है। इसमें घनत्व परीक्षण व आर्द्रता परीक्षण विधि का वर्णन किया गया है।

नवाँ अध्याय **हस्त लक्षण** है। इस अध्याय में माप की इकाई, संख्या तथा काल की गणना की इकाई का वर्णन है। माप की सबसे छोटी इकाई अणु बताई है, उससे आठ गुणा धूल का कण, उससे आठ गुणा बालाग्र, उससे आठ गुणा लिक्षा, उससे आठ गुणा यूका, उससे आठ गुणा यव, उससे आठ गुणा अंगुल का मान होता है। चौबीस अंगुल का एक हस्त बताया गया है। उसके पश्चात् हस्त के भेद हैं। हस्त निर्माण की विधि, उसके लिए उपयुक्त काष्ठ तथा हस्त धारण करने की विधि बताई गई है।

इस अध्याय में गिनती १ से परार्ध (२० अंक तक) का वर्णन किया है।

काल की गणना हेतु निमेष (पलक झपकने का समय) से वर्ष तक का समय की संज्ञा (कला, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास आदि) का भी वर्णन है।

अध्याय १० **पुर निवेश** नामक अध्याय में सबसे पहले नगर के मान का वर्णन है, उसके पश्चात मार्ग के मान को बताया है। नगर के बाहर नगर की सुरक्षा के लिए परिखा निर्माण की विधि का वर्णन किया गया है। परकोटे पर स्थित दीवार का मान, निर्माण व अलंकरण की विधि को बताया गया है। नगर के प्रवेश द्वार के मान तथा प्रतोली आदि को विस्तार से बताया गया है। उसके पश्चात छिन्नकर्ण आदि १० आकार बताए गए हैं जो नगर के लिए अनुपयुक्त हैं। दिक्मूढ़ वास्तु का भी निषेध किया गया है। उसके पश्चात बताया गया है कि नगर के किस भाग में किन लोगों को बसाना चाहिए तथा किस भाग में कौन से देवता का मन्दिर बनवाना चाहिए।

वास्तु त्रय विभाग नामक अध्याय ११ में किसी भी क्षेत्र (नगर, मन्दिर, गृह आदि) के निर्माण के पूर्व क्षेत्र को विभिन्न भागों में विभाजित करने की विधि का वर्णन है। इसे पद विन्यास कहते हैं। इस ग्रन्थ में ६४, ८१ तथा १०० पद वास्तु का वर्णन किया गया है। इसमें कुल ४५ देवता होते हैं।

अध्याय १२ **नाड्यादिशिरादिविकल्प** -इस अध्याय में वृत्त, त्रिकोण आदि विभिन्न क्षेत्र के लिए पदविन्यास का वर्णन किया गया है। नाड़ी, शिरा आदि का वर्णन किया गया है। यह बताया है कि वास्तुपुरुष के शरीर पर विभिन्न शिरा आदि होती हैं। इसमें सिरा, वंश, अनुवंश, सन्धि, अनुसन्धियाँ, मर्म तथा महावंश होते हैं, इन स्थानों पर वेध या निर्माण नहीं करना चाहिए।

अध्याय १३ **मर्मवेध** - इस अध्याय में यह बताया है कि भवन, राजप्रासाद, आदि में जो पदविन्यास किया, उसमें मुख, हृदय, नाभि, सिर, दोनों स्तन यह छह मर्म स्थल वास्तुपुरुष के शरीर पर होते हैं, इन्हें षणमहान्ति कहा गया है। इन मर्म स्थल पर विभिन्न निर्माण जैसे दीवार, स्तम्भ, नागपाश, द्वार, तुला आदि बनवाने से होने वाले दुष्परिणाम का वर्णन किया गया है।

अध्याय १४ **पुरुषांगदेवतानिघण्ट्वादिनिर्णय**- इस अध्याय में वास्तुपुरुष के शरीर के किस भाग पर कौन सा देवता स्थित है यह बताया है। ब्रह्मा आदि ४५ देवताओं का निघण्टु भी इसी अध्याय में दिया गया है, जिससे हमें देवताओं के गुण-धर्म के बारे में ज्ञान होता है। इस अध्याय में विभिन्न वर्ण का शरीर में स्थान बताया है।

अध्याय १५ **राजनिवेश**-इस अध्याय में राजा के महल तथा उसके सहयोगियों के गृह के बारे में बताया गया है। परिखा, प्राकार, गोपुर, विभिन्न कक्षों का स्थान, मंदिर, छत्र-चामर, आयुध, अश्वशाला, गजशाला आदि के स्थान को बताया है।

अध्याय १६ **वनप्रवेश** नामक अध्याय में वन से लकड़ी लाने की विधि का वर्णन है, इसमें मुहूर्त, स्वशुद्धिकरण, उपयुक्त वृक्ष का चयन, काटने से पहले पूजन उसके पश्चात् निरीक्षण, वृक्ष काटने की विधि, वृक्ष के गिरने से शुभाशुभ का विचार, वृक्ष के मण्डल के अनुसार वृक्ष पर कौन से जीव का वास रहा, उसका विचार तथा लकड़ी को लाने की विधि का वर्णन है।

अध्याय १७ **इन्द्रध्वजनिरूपण** - इस अध्याय में यह बताया गया है कि राजा को प्रतिवर्ष इन्द्रध्वज बनवाकर, उसे अभिमन्त्रित कर, नगर में घुमवाना (प्रदक्षिणा) करवाना चाहिए।

अध्याय १८ **नगरादिसंज्ञा**-इस अध्याय में विभिन्न प्रकार के नगर, गृह के पर्याय, भवन के विभिन्न अंगों की संज्ञाएँ बताई हैं।

अध्याय १९ **चतुःशालविधान**-इस अध्याय में एक भद्र से लेकर आठ भद्र तक विभिन्न प्रकार के चार शाला वाले घरों का वर्णन है।

अध्याय २० **निम्नोच्चादिफलानि**-इस अध्याय में गृह का कौन सा भाग नीचा होता है तो उसका क्या परिणाम होता है यह बताया है, साथ ही साथ द्विशाल (दो दिशाओं में निर्मित घर) तथा त्रिशाल (तीन दिशाओं में निर्मित गृह) का वर्णन किया गया है।

अध्याय २१ ७२ **त्रिशाललक्षण**-इस अध्याय में त्रिशाल (तीन दिशाओं में बना हुआ गृह) के ७२ भेद बताएँ हैं। ये भेद अलिन्द (बरामदा) आदि के संयोजन से बनते हैं।

अध्याय २२ **द्विशाललक्षण**-इस अध्याय में दोशाला वाले गृहों के ५२ भेद बताए हैं।

अध्याय २३ **एकशाललक्षण फलादि**-इस अध्याय में ध्रुव आदि १६ प्रकार के गृह तथा उनके भी भेद बताए हैं।

अध्याय २४ **द्वारपीठभित्तिमानादि**-इस अध्याय में द्वार, पीठ, दीवार तथा भवन के अंग आदि के मान को बताया है।

अध्याय २५ **समस्तगृहाणां संख्याकथन**- इस अध्याय में एकशाल, द्विशाल, त्रिशाल तथा चतुश्शाल के संयोग से बनने वाले दशशाला तक के भवनों का वर्णन किया गया है। दशशालावाले गृहों की संख्या तेरह लाख, अट्ठानवे हजार सोलह होती है। इसमें नवशाल आदि गृह मिलाने पर वे करोड़ों प्रकार के होते हैं।

अध्याय २६ **आयादि निर्णय**-इस अध्याय में गणित के सूत्र दिए गए हैं, जिन्हें आयादि सूत्र कहते हैं। इनके द्वारा भूखण्ड, भवन, कक्ष आदि के लिए लम्बाई व चौड़ाई का शुभ मान ज्ञात किया जाता है। इस अध्याय में पताका आदि छह छन्दों का वर्णन भी मिलता है, इससे भवन की आकृति निर्धारित करने में सहायता मिलती है।

अध्याय २७ **सभाष्टक**-इस अध्याय में आठ प्रकार की सभा का वर्णन किया गया है।

अध्याय २८ **गृहद्रव्यप्रमाणाणि**-इस अध्याय में द्वार, चौखट, भवन की ऊँचाई, स्तम्भ के विभिन्न अवयव, स्तम्भ के प्रकार, तुला, छत आदि के मान का वर्णन किया गया है।

अध्याय २९ **शयनासन लक्षण**-इस अध्याय में शय्या का मान, उसके दोष (निष्कुट आदि छिद्र), आसन, कंघी, पादुका आदि के मान का वर्णन किया है।

अध्याय ३० **राजगृहविधान**-इस अध्याय में विभिन्न प्रकार के प्रासाद को बनाने की विधि का वर्णन किया है। इसके साथ ही सात प्रकार की (द्वार के स्तम्भ के साथ निवेश्य) लुमाएँ भी बताई गई हैं।

अध्याय ३१ **यन्त्रविधान**-इस अध्याय में वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी इन बीजों को लेकर यन्त्र बनाने का वर्णन किया है। अलक्षता (प्रकट रूप से नहीं दिखना), निर्वहण (चढ़ना), लघुत्व (सूक्ष्मता), शब्दहीनता, शब्द से, साध्य से, अधिकता से, अशैथिल्य व अगाढ़ (भारीपन रहित) आदि २० यन्त्र के गुण बताए हैं। इसमें शय्या के लिए विभिन्न यन्त्र, घड़ी, पुतली, गजयन्त्र, विभिन्न प्रकार के बाजे, वायु में चलने वाला विमान, सुरक्षा यन्त्र, धारागृह हेतु यन्त्र, वज्रलेप, झूला आदि का वर्णन किया है।

अध्याय ३२ **गजशाला**-इस अध्याय में हाथियों के स्थान को बनाए जाने का विधान बताया है।

अध्याय ३३ **अश्वशाला**-इस अध्याय में घोड़े के लिए स्थान का वर्णन किया है।

अध्याय ३४ **प्रयोज्याप्रयोज्य**- इस अध्याय में राजा आदि सभी व्यक्तियों के घरों की आन्तरिक सज्जा में किन-किन चित्र आदि का प्रयोग करना चाहिए तथा कौन-कौन से चित्र आदि का निषेध किया गया है, यह बताया है।

अध्याय ३५ **शिलान्यास विधि**-इस अध्याय में नींव में रखने वाली शिला का वर्णन किया है। इसमें शुभ मुहूर्त का वर्णन, शिला के शुभाशुभ चिह्न, वर्जनीय शिला का वर्णन किया है।उसके पश्चात् शिला का अभिषेक, पूजन आदि करके स्थापना की विधि बताई है।

अध्याय ३६ **बलिदानविधि**-वास्तुपुरुष के शरीर पर स्थित ४५ देवताओं के लिए बलि (पूजन) के विधान का वर्णन किया है।

अध्याय ३७ **कीलकसूत्रपात**-इस अध्याय में खूँटियों का वर्णन किया है। इस हेतु उपयुक्त वृक्ष बताएँ हैं। कील स्थापन हेतु पूजा, वेदी, कुम्भस्थापन, कीलसंस्कार, मुहूर्त, बलि, निमित्त, कील प्रहार विधि तथा शकुन का विचार किया है।

अध्याय ३८ **वास्तुसंस्थानमातृका**-इस अध्याय में ४० आकारों का वर्णन किया है तथा यह बताया है कि किस व्यक्ति के लिए किस आकार का प्रयोग करना चाहिए।

अध्याय ३९ **द्वारगुणदोष**-इस अध्याय में द्वार के स्थान बताया है। यह मध्य रेखा से बाई ओर होना चाहिए। उत्संग आदि चार प्रवेश व परिणाम बताएँ हैं (भूखण्ड में प्रवेश कर, भवन में सामने, दाएँ, बाएँ या पीछे से प्रवेश)। ब्राह्मण आदि व्यक्तियों के घरों के मान का निर्धारण किया है। द्वार के सामने वेध (रुकावट) अशुभ होता है, किस प्रकार के वेध का क्या परिणाम होता है वास्तुपदविन्यास की बाहरी वीथी पर स्थित शिखी आदि देवता के पद में द्वार बनवाने का क्या परिणाम होता है, यह बताया है।

अध्याय ४० **पीठमान**-इस अध्याय में ब्राह्मण आदि के गृहों तथा मंदिर के लिए पीठ के मान का वर्णन किया है।

अध्याय ४१ **चयविधि**-इस अध्याय में चुनाई के २० गुण तथा २० दोष बताएँ हैं। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में चुनाई की विधि का भी वर्णन किया है।

अध्याय ४२ **शान्तिकर्मविधि**-इस अध्याय में गृह में होने वाले विभिन्न दोष (जैसे कर्णिका पर कोई जीव, मयूर, तोता, कुक्कुट, मैना, चिड़िया, उल्लू आदि चढ़ जाए, लकड़ी में कोई दोष) तथा उनके दुष्परिणाम का वर्णन किया है। इस अध्याय में यह भी बताया है कि भवन में कोई दोष हो तो कुशल स्थपति को बुलवाकर किस पद में दोष यह ज्ञात करवाए तथा उस पद के देवता की शान्ति के लिए आहुति देकर प्रायश्चित करें।

अध्याय ४३ **द्वारभंगफल**-इस अध्याय में नगर, ग्राम, पुर, पत्तन आदि के संबंध में बताया गया है कि कौन सा भाग किस विषय से संबंधित होता है (जैसे पूर्वी भाग का संबंध स्वास्थ्य व धन-धान्य से होता है।) यदि कोई भाग दूषित होता है तो उससे संबंधित विषय की हानि होती है। निर्माण के विभिन्न अवयव जैसे द्वार, तोरण, वेदिका आदि में दोष से उत्पन्न दुष्परिणाम को बताया है।

अध्याय ४४ **स्थपतिलक्षण**-स्थापत्य वेद में निपुण व्यक्ति स्थपति कहलाता है। इस अध्याय में यह बताया है कि स्थपति को शास्त्र का ज्ञान होना चाहिए। वह कर्म में कुशल, प्रज्ञावान व शीलवान होना चाहिए।

अध्याय ४५ **अष्टांगलक्षण**-इस अध्याय में स्थापत्य के आठ अंग बताए हैः- वास्तुपुरुष की रचना, पुर-निवेश, प्रासाद-निर्माण, इन्द्रध्वज को उठाना, राजादि के महल, गृह-वास्तु, यजमान के लिए शाला तथा आठवाँ दुर्ग-निर्माण।

अध्याय ४६ **तोरणभंगशान्तिक**-इस अध्याय में बताया गया है कि नगर या घर के प्रवेश द्वार पर स्थित तोरण में दोष उत्पन्न होना अत्यन्त अशुभ होता है। इसी प्रकार गृह में कपोत का प्रवेश होना भी अशुभ माना गया है। इस प्रकार के दोष के उत्पन्न होने पर शान्तिकर्म करना आवश्यक है।

अध्याय ४७ **वेदीलक्षण**-इस अध्याय में चार प्रकार की वेदी का वर्णन किया गया है।

अध्याय ४८ **गृहदोषनिरूपण**-इस ग्रन्थ में विभिन्न अध्यायों में जिन वास्तुदोषों का वर्णन किया है, उन्हें एकत्रित कर एक साथ इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय ४९ **रुचकादिप्रासादलक्षण**-इस अध्याय में वैराज (चौकोर, २४ प्रकार), कैलास (वृत्त, १० प्रकार), पुष्पक (चतुरश्रायत, १० प्रकार), मणिक (वृत्तायत, १० प्रकार) तथा त्रिविष्टप (अष्टकोणिय, १० प्रकार) के प्रासाद का वर्णन है।

अध्याय ५० **प्रासादशुभाशुभलक्षण**-इस अध्याय में प्रासाद के लिए शुभ व अशुभ लक्षणों का वर्णन किया है।

अध्याय ५१ **आयतननिवेश**-इस अध्याय में राजा के अनुजीवी, सहायक आदि के भवनों का नियोजन किस प्रकार करना यह बताया है।

अध्याय ५२ **प्रासादजातिनाम**-इस अध्याय में वैराज प्रासाद के लक्षणों के वर्णन किया है।

अध्याय ५३ **जघन्यवास्तुद्वार**-इस अध्याय में द्वार के विभिन्न भाग के मान का वर्णन किया है।

अध्याय ५४ **प्रासादद्वारमानादि**-इस अध्याय में प्रासाद के द्वार, चौखट आदि अवयव के मान को बताया है। इसमें वितान निर्माण के लिए २५ लुमाओं व छत का वर्णन किया है।

अध्याय ५५ **मेर्वादिषोडशप्रासादिलक्षण**-इस अध्याय में मेरु आदि १६ प्रासाद का वर्णन है। इसमें जगति, परिवार, द्वारमान, स्तम्भ आदि के मान का वर्णन किया है।

अध्याय ५६ **रुचकादिचतुषष्टिप्रासादक**-इस अध्याय में रुचक आदि ६४ प्रासाद का वर्णन है, इसमें पच्चीस ललित प्रासाद, नौ मिश्रक, पच्चीस सान्धार तथा पाँच निगूढ़ प्रासाद हैं।

अध्याय ५७ **मेर्वादिविंशिका**-इस अध्याय में श्रीधर आदि ५० प्रासाद तथा मेरु आदि २० प्रासाद का वर्णन है।

अध्याय ५८ **प्रासादस्तवन**-इस अध्याय में शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, चण्डिका, विनायक व लक्ष्मी के लिए कौन से प्रासाद शुभ हैं, यह बताया है।

अध्याय ५९ **विमानादिचतुःषष्ठि प्रासादलक्षण**-इस अध्याय में देवी-देवताओं की आठ कोटि (श्रेणी) में प्रत्येक के लिए आठ-आठ प्रासाद (कुल ६४) प्रासादों के लक्षण का वर्णन किया है।

अध्याय ६० **श्रीकूटादिषट्त्रिंशत्प्रासादलक्षण**-इस अध्याय में नागर प्रासाद के अन्तर्गत श्रीकूट आदि ३६ प्रासाद के लक्षणों का वर्णन किया है।

अध्याय ६१ **पीठपञ्चकलक्षण**-इस अध्याय में द्राविड़ प्रासाद के लिए पाँच प्रकार की पीठ के लक्षण वर्णन किया है।

अध्याय ६२ **द्राविडप्रासादलक्षण**-इस अध्याय में एक से बारह मंजिल वाले द्राविड प्रासाद का वर्णन किया है।

अध्याय ६३ **मेर्वादिविंशिकानागरप्रासादलक्षण**-इस अध्याय में नागर जाति के मेरु आदि २० प्रासादों के लक्षण बताए हैं।

अध्याय ६४ **दिग्भद्रादिप्रासादलक्षण**-इस अध्याय में दिग्भद्र आदि बारह वावाट (वैराट) संज्ञक प्रासादों के लक्षण का वर्णन किया है।

अध्याय ६५ **भूमिजप्रासादलक्षण**-इस अध्याय में भूमिज जाति के चौकोर व वृत्त प्रासाद आदि का वर्णन है। इसी अध्याय में २५ रेखाओं के नाम भी बताएँ हैं।

अध्याय ६६ **मण्डपलक्षण**-इस अध्याय में भद्र आदि आठ प्रकार के मण्डपों के लक्षण का वर्णन है।

अध्याय ६७ **सप्तविंशतिमण्डपलक्षण**-इस अध्याय में २७ प्रकार के मण्डपों के लक्षण का वर्णन है तथा इसमें स्तम्भ संख्या ६४ से १२ तक होती है।

अध्याय ६८ **जगति-अंग-समुदायाधिकार**-इस अध्याय में प्रासाद के लिए जगती (पीठ) के मान व अंग का वर्णन किया है।

अध्याय ६९ **जगतिलक्षण**-इस अध्याय में कुल पैंतालीस जगतियों का वर्णन किया है। यह देवताओं के लिए पीठ है।

अध्याय ७० **लिंगपीठप्रतिमालक्षण**-इस अध्याय लिंग लक्षणोद्धार, लिंग की दिशा, धातु आदि के बारे में बताया है। लिंग के लिए पीठ तथा द्वार आदि के मान का वर्णन किया है।

अध्याय ७१ **चित्रोद्देश**-इस अध्याय में चित्र बनाने का उद्देश्य तथा कार्य में सहायक सामग्री का उल्लेख किया है।

अध्याय ७२ **भूमिबन्धन**-इस अध्याय में चित्रकला करने के लिए उपयुक्त लेखनी, दीवार या पट्ट को तैयार करने की विधि, सामग्री आदि का वर्णन किया है।

अध्याय ७३ **लेपकर्मादि**-इस अध्याय में लेप आदि कर्म के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली कूँची के निर्माण की विधि का वर्णन है।

अध्याय ७४ **अण्डकप्रमाण**-इस अध्याय में चित्र का आधार तैयार करने लिए अण्डक बनाने की विधि का वर्णन है।

अध्याय ७५ **मानोत्पत्ति**-इस अध्याय में देवता, असुर, राक्षस, दिव्यमानुष, किन्नर आदि के चित्र बनाने हेतु दिशा निर्देश दिए हैं।

अध्याय ७६ **प्रतिमालक्षण**-इसमें प्रतिमा आदि बनाने के पदार्थ तथा प्रतिमा के विभिन्न अंगों के मान का वर्णन किया है।

अध्याय ७७ **देवादिरूपप्रहरणसंयोगलक्षण**-इस अध्याय में ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, बलभद्र, विष्णु आदि देवताओं तथा दैत्य, पिशाच, गन्धर्व आदि की मूर्तियों व चित्रों के लिए आवश्यक लक्षण तथा अस्त्रायुधों का वर्णन किया है।

अध्याय ७८ **दोषगुणनिरूपण**-इस अध्याय में प्रतिमा के दोष तथा उसके दुष्परिणामों का वर्णन किया है।

अध्याय ७९ **ऋज्वागतादिस्थानलक्षण**-इस अध्याय में प्रतिमा व चित्र निर्माण के लिए आवश्यक शरीरमुद्रा, हस्तमुद्रा व पाद मुद्रा का वर्णन किया है।

अध्याय ८० **वैष्णवादिस्थानलक्षण**-इस अध्याय में पुरुष व स्त्री की प्रतिमा का निर्माण करते समय डाले जाने वाले सूत्र (प्रलम्ब-सूत्र) का वर्णन किया है।

अध्याय ८१ **पञ्चपुरुषस्त्रीलक्षण**-इस अध्याय में हंस आदि पाँच पुरुषों तथा दण्डिनी आदि स्त्रियों के लक्षण का वर्णन किया है।

अध्याय ८२ **रसदृष्टिलक्षण**-इस अध्याय में श्रृंगार आदि ११ रस तथा उनके साथ निरुपित होने वाली दृष्टियों का विवरण दिया है।

अध्याय ८३ **पताकादिचतुषष्टिहस्तलक्षण**-इस अध्याय में नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त ६४ हस्त मुद्राओं का वर्णन किया है।

४.२ वास्तु शास्त्र का उद्देश्य- लोक हित

४.२.१ मंगलाचरण

यहाँ इस प्रथम श्लोक में शिवजी की स्तुति की गई है- जिन्होंने पूरे कारण के बिना भी इस सारे जगत का सृजन किया, इसे उत्पन्न किया, जिनकी जटा बाल-चन्द्रमा से अंकित है, सुशोभित है, वे तीनों भुवन के सूत्रधार (भगवान शंकर) (हमारी) रक्षा करें।।[१]

किसी भी ग्रन्थ को प्रारम्भ करते समय अपने यहाँ मंगलाचरण को अत्यन्त आवश्यक माना गया है। सबसे पहले ईश्वर की, इष्ट देव की वंदना व स्तुति की जाती है। इस स्तुति का उद्देश्य जहाँ एक ओर परम शक्ति का आशीर्वाद प्राप्त करना है तो वहीं दूसरी ओर चित्त को एकाग्र करना भी है। इसके साथ ही ग्रन्थकार सामान्य रुप से इस भावना के साथ कार्य करता है कि वह तो केवल एक उपकरण है, सारा कार्य ईश्वर कृपा से ही हो रहा है। पूरा कार्य निर्विघ्न (बिना किसी रुकावट के) समाप्त हो, इसके लिए भी मंगलाचरण को अत्यन्त आवश्यक माना गया है।

जैसा की हम सभी जानते हैं कि इस जगत में किसी भी कार्य के करने के लिए कारण अर्थात पदार्थ या वस्तु, उपकरण आदि की आवश्यकता होती है, लेकिन ईश्वर (या यहाँ भगवान शंकर) को रचना करने के लिए किसी भी पदार्थ आदि की आवश्यकता नहीं है, वे सर्वसमर्थ हैं, केवल संकल्प से ही सारा निर्माण या रचना कर सकते हैं, अतः श्लोक में कहा गया है कि जिन्होंने बिना किसी कारण (पदार्थ) आदि के इस जगत का निर्माण किया, सृजन किया, रचना की, ऐसे भगवान शंकर हमारी रक्षा करें।

कारण का एक अर्थ हेतु, उद्देश्य या प्रयोजन (उपयोग, आवश्यकता) भी होता है। हम यहाँ यह अर्थ भी ले सकते हैं कि जिन्होंने बिना किसी कारण या प्रयोजन के लिए इस जगत का निर्माण किया अर्थात् जिन्होंने लीला के लिए इस जगत की रचना की, ऐसे शंकर हमारी (तुम लोगों की) रक्षा करें।

---

[१] देवः स पातु भुवनत्रयसूत्रधारस्त्वां बालचन्द्रकलिकाङ्कितजूटकोटिः।
एतत् समग्रमपि कारणमन्तरेण कात्स्न्यार्दसूत्रितमसूत्र्यत येन विश्वम्।।१।। स.सू.

४.२.२ ग्रन्थ का उद्देश्य (शुभ व अशुभ उपादान की आवश्यकता)

इस जगत में सभी मनुष्य सुखी होना चाहते हैं। सभी मनुष्य चाहते हैं कि उन्हें सुख, धन, समृद्धि तथा सन्तान प्राप्त हो। अब अगले श्लोक में इनकी (सुख, धन, समृद्धि व सन्तान) प्राप्ति का उपाय बताते हैं-

सभी मनुष्यों (नरों) को सुख, धन, ऋद्धि (विकास, वृद्धि), सन्तान प्रिय हैं। इसे प्राप्त करने के लिए, (इसकी सिद्धि के लिए) शुभ लक्षण आवश्यक है।[२] जो शुभ लक्षण नहीं हैं, वे विनाश करते हैं। अतः उन सभी उपादेयों (उपयोगी, उपयोगों) की आवश्यकता है, जो शुभ लक्षण हैं।।[३] देश, पुर, निवास, सभा, भवन (घर) व आसन आदि ऐसे ही उपादेय हैं, वे सभी श्रेयस्कर माने गए हैं।[४]वास्तुशास्त्र के बिना इनके लक्षण का निश्चय नहीं किया जा सकता, अतः लोक के भले के लिए वास्तुशास्त्र का वर्णन करते हैं।।[५]

विश्लेषणः-श्लोक २ से ५ में शास्त्र (की महिमा का प्रतिपादन किया गया है,) का महत्व बताया गया है। अपने यहाँ एक परम्परा प्राप्त होती है कि किसी भी शास्त्र को प्रारम्भ करते समय सबसे पहले मंगलाचरण किया जाता है। उसके बाद शास्त्र जिस विषय से संबंधित है, उस विषय की महिमा का प्रतिपादन किया जाता है, शास्त्र के विषय को एकदम स्पष्ट किया जाता है, उसका महत्व बताया जाता है। इस शास्त्र का विषय वास्तुशास्त्र है, अतः यहाँ इन श्लोकों में शास्त्र का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि लोगों की हित की कामना से, लोगों के भले के लिए शास्त्र की रचना करते हैं। वास्तुशास्त्र के इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है कि मनुष्य किस प्रकार के देश, पुर, घर आदि में निवास करें, जिससे उसे सुख, धन, समृद्धि व सन्तान की प्राप्ति हो। देश, पुर आदि के शुभ लक्षण शास्त्र में बताए गए हैं। इन शुभ लक्षणों

---

[२] सुखं धनानि ऋद्धिश्च सन्ततिः सर्वदा नृणाम्।
प्रियाण्येषां तु संसिद्ध्यै सर्वं स्याच्छुभलक्षणम्।।२।।

[३] यच्च निन्दितलक्ष्मा(च ? त्र)तदेतेषां विघातकृत्।
अतः सर्वमुपादेयं (यद्) भवेच्छुभलक्षणम्।।३।।

[४] देशः पुरं निवासश्च सभा वेश्मासनानि च।
यद्यदीदृशमन्यच्च तत्तच्छ्रेयस्करं मतम्।।४।।

[५] वास्तुशास्त्रादृते तस्य न स्याल्लक्षणनिश्चयः।
तस्माल्लोकस्य कृपया शास्त्रमेतदुदीर्यते।।५।। अध्याय १

से युक्त स्थान पर निवास करने से शुभ की प्राप्ति होती है। जो स्थान आदि अशुभ लक्षण से युक्त हैं, उन स्थान (देश, पुर, घर आदि) में निवास करने से विनाश होता है, अतः देश, नगर, घर आदि के शुभ लक्षण को शास्त्र के द्वारा जानकार शुभ लक्षणों से युक्त स्थान पर ही निवास करना चाहिए।

देश- कोई विशिष्ट भूमि का भाग जिसका प्राकृतिक या कृत्रिम आधार पर विभाजन हुआ हो तथा जहाँ कुछ विशिष्ट जातियाँ, कुछ विशिष्ट भाषा-भाषी तथा कुछ विशिष्ट परम्पराओं और संस्कृति वाले लोग रहते हों।

४.२.३ पितामह ब्रह्मा से पृथ्वी का निवेदन

प्राचीन समय की बात है। जगत को उत्पन्न करने वाले, कमल के आसन (पद्मासन) पर विराजमान (बैठे हुए) ब्रह्माजी के पास, महाराज पृथु के डर से डरी हुई, चकित आँखों वाली पृथ्वी पहुँची।[६]

विश्लेषणः-यहाँ शास्त्र का प्रारम्भ एक कहानी के माध्यम से करते हैं- यह उस समय की बात है, जब इस पृथ्वी पर कोई निर्माण आदि कार्य नहीं हुआ था। पूरी पृथ्वी पर कोई भी नगर, भवन आदि का निर्माण नहीं हुआ था, पृथ्वी ऊबड़-खाबड़ थी। उस समय राजा पृथु, पृथ्वी को समतल करके उस पर निर्माण कार्य करना चाहते थे, परन्तु राजा पृथु के भय से भयभीत होकर पृथ्वी गाय का रूप धारण कर ब्रह्मा जी के पास पहुँचती है।

भूतों को धारण करने वाली पृथ्वी ने, सारे देवों के ईश्वर पितामह (ब्रह्मा) को, झुककर प्रणाम कर गद्गद (सुबकी आदि से मिली हुई) वाणी से निवेदन किया।।[७]

भूत शब्द की व्याख्या- सारी सृष्टि की उत्पत्ति पंच महाभूत से हुई है या यूँ कहें कि पंच महाभूत से सृष्टि की रचना हुई है। ये पंच महाभूत आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी हैं। इन सभी महाभूतों को पृथ्वी धारण करती है। पृथ्वी में ये सभी अन्तर्निहित हैं (मिले हुए हैं।) जिस प्रकार आधुनिक विज्ञान में ऐसा माना जाता है कि सभी पदार्थ एलीमेन्ट या तत्वों से बने हैं, उसी प्रकार पंच तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल व पृथ्वी) से सारा निर्माण होता है।

---

[६] अथैकदा जगज्जन्महेतुमम्बुरुहासनम्।
पृथ्वी पृथुभयक्रा(भ्रा)न्ता चकिताक्षी समाययौ।।६।।

[७] प्रणम्य प्रणतिप्रह्वनिखिलत्रिदशेश्वरम्।
सगद्गदमुवाचेति भूतधात्री पितामहम्।।७।।

ईश्वर ने जब सृष्टि की रचना की तो पहले आकाश को उत्पन्न किया, इसका एक गुण होता है- शब्द। आकाश से वायु उत्पन्न हुई, इसमें एक गुण और अभिव्यक्त हुआ- स्पर्श (व शब्द, कुल दो गुण)। उससे अग्नि उत्पन्न हुई, इसमें एक गुण और अभिव्यक्त हुआ- रूप (तथा शब्द व स्पर्श, कुल तीन गुण)। इससे जल उत्पन्न हुआ, इसमें एक गुण और व्यक्त हुआ- रस (तथा स्पर्श, शब्द, रूप, कुल चार गुण)। तथा इससे पृथ्वी उत्पन्न हूई उसमें एक और गुण व्यक्त हुआ- गन्ध। इनमें पृथ्वी पाँचों गुणों को धारण करती है। यह सृष्टि का, निर्माण का, अभिव्यक्ति का क्रम हुआ। इन्हीं पाँच गुणों से पाँच तन्मात्राएँ, उसके पश्चात् पाँच इन्द्रियाँ- कान, त्वचा, आँख, जीभ व नाक उत्पन्न हुई।

देव- देवता शब्द दिव् धातु से बना है, जिसका अर्थ प्रकाश है। देवता शब्द ऊर्जा को व्यक्त करता है। जितने भी देवता हैं, वे सब अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा को अभिव्यक्त करते हैं।

मूल ऊर्जा एक ही है, उससे ही अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा अभिव्यक्त हुई है। उदाहरण के लिए आधुनिक समय में हम कहते हैं कि विद्युत या बिजली एक प्रकार की ऊर्जा है, इलेक्ट्रिकल एनर्जी है। यह ऊर्जा बल्व के माध्यम से व्यक्त होती है। तार में विद्युत प्रवाहित होती है, जब हम तार का सम्पर्क बल्ब से जोड़ देते हैं, तो बल्ब के माध्यम से विद्युत व्यक्त हो जाती है। वही विद्युत ऊर्जा, प्रकाश ऊर्जा (लाईट एनर्जी) में व्यक्त हुई। विद्युत से जब हम पंखे को जोड़ते हैं तो विद्युत ऊर्जा, यान्त्रिक ऊर्जा (मेकेनिकल एनर्जी) के रूप में व्यक्त होती है। उसी प्रकार हीटर को जोड़ने पर वह ऊष्मा के रूप में (हीट इनर्जी) के रूप में व्यक्त होती है। एक ही ऊर्जा (विद्युत) अलग-अलग रूप में व्यक्त हो रही है। इसी प्रकार एक मूल ऊर्जा (देव) अलग-अलग देवता के रूप में व्यक्त होती हैं। देवताओं के अलग-अलग नाम, आकृति, प्रतिमा विज्ञान आदि के माध्यम से हम पता लगाते हैं कि कौन से देवता किस प्रकार की ऊर्जा को व्यक्त करते हैं।

इस प्रकार इस श्लोक में बताया है कि पृथ्वी सभी देवताओं के ईश्वर ब्रह्मा जी के पास पहुँची। पृथ्वी ने लगभग रोते हुए अपनी पीड़ा अभिव्यक्त की-

हे भगवन, मैं महापराक्रमी व तेजस्वी इस पृथु (एक राजा) की सताई हुई हूँ तथा आपकी शरण में आई हूँ, कृपया आप मेरी रक्षा करें।।८।।[८]

---

[८] भगवन्नहमेतेन पृथुना पृथुतेजसा।
उप(द्ग ? द्रु)ता त्वां शरणं प्राप्ता त्रायस्व मां ततः।।८।।

पृथ्वी ने इस प्रकार रो (रोकर अपनी बात कह) ही रही थी कि उसी समय वहाँ महाराज पृथु भी पहुँच गए। उन्होंने मुक्त हृदय से ब्रह्म (ब्रह्मा जी) को प्रणाम किया।।[९]

इस प्रकार पृथ्वी तथा महाराजा पृथु दोनों की ब्रह्माजी के समक्ष उपस्थित हुए। जब राजा ने ब्रह्माजी के समक्ष अपना निवेदन प्रस्तुत किया तो उनकी वाणी इस प्रकार थी कि वह ब्रह्माजी के वाहन हंसों को, मेघ की गर्जना के समान लग रही थी (प्रतीत हो रही थी)।

अब राजा पृथु अपनी पीड़ा अभिव्यक्त कर रहे हैं। वे बताते हैं कि हे पितामह आपने मुझे इस जगत का स्वामी बनाया है, इस पृथ्वी आदि भूतों को मेरे संरक्षण में सौंपा है। आपके द्वारा ही आदेश देने पर मैं पृथ्वी का दोहन करना चाहता हूँ। यह पृथ्वी पुर, नगर, ग्राम आदि बसाने के लिए समतल नहीं है, इसकी भूमि अनेक पहाड़ों व पहाड़ों के समूहों से भरी हुई है, मैं इस पर निर्माण कार्य कैसे करुँ? जब मैं पहाड़ आदि को समतल करने के लिए तथा पृथ्वी के गर्भ में स्थित औषधि आदि प्राप्त करने के लिए कोई कार्य करने के लिए तैयार होता हूँ वैसे ही यह पृथ्वी भाग जाती है। इस प्रकार यह दुहाने के लिए तैयार नहीं होती है। इसी क्रम में यह भागते हुए आपके पास आ गई। अब आप ही बताए कि आपके द्वारा दिए गए कार्य को मैं किस प्रकार पूरा करुँ।

इस प्रकार जब राजा पृथु ने अपनी पीड़ा ब्रह्माजी के सामने व्यक्त कर दी, तब ब्रह्मा जी ने राजा पृथु तथा पृथ्वी दोनों को ही समझाना प्रारंभ किया-

उसके बाद ब्रह्मा जी, पृथ्वी को निर्भय करने के उपरान्त, राजा पृथु से बोले (इस प्रकार निर्देश दिए)। हे राजा, यह पृथ्वी विधिवत पालन करने पर ही अन्न, धान्य आदि धान्य के द्वारा (सम्पन्न होकर) तुम्हारी भोग्या बनेगी।।१७-१८।।[१०]

विश्लेषणः-ब्रह्मा जी ने सबसे पहले पृथ्वी को निर्भय किया, उसका भय दूर किया। उसके उपरान्त राजा पृथु को निर्देश देना प्रारम्भ किया। ब्रह्मा जी ने कहा कि हे राजन्, तुम इस पृथ्वी का विधिवत् पालन करो अर्थात् जैसा शास्त्र में बताया गया है, उस विधि के अनुसार जब तुम पृथ्वी का पालन करोगे, तब यह धान्य आदि उत्पन्न करेगी, तब तुम इसका भोग कर पाओगे।

---

[९] वदन्त्यामिति मेदिन्यामाविरासीदथो पृथुः।
संरम्भमुक्तहृदयो ब्रह्माणं प्रणनाम च।।९।।

[१०] उवाच बोधयन्नेनं कृत्वा भूमिं च निर्भयाम्। इयं मही महीपाल !
विधिवत् पालिता सती।।१७।।
सस्यैरुत्पाद्य निष्पन्नैस्तव भोग्या भविष्यति।

आज जो पर्यावरण की बात हो रही है, इकोलॉजी की बात हम करते हैं, उसका पूरा-पूरा संकेत करते हुए ब्रह्मा जी राजा पृथु से कहते हैं कि देखो राजा पृथु! इस पृथ्वी का पहले तुम पालन करना। इस पर धान्य (बीज) आदि बोना, उनकी भली प्रकार से सिंचाई आदि की व्यवस्था करना, झाड़, पेड़ लगाना, पर्यावरण का पूरा ध्यान रखना। तब यह भूमि फलवती होकर धान्य, फल आदि अनेक पदार्थ उत्पन्न करेगी, तुम पदार्थों का सेवन करना, उनका भोग करना, एक बात। विधिवत् पालन करने का अर्थ यह भी है कि आवश्यकता हो तभी इसका उपभोग करना, अर्थात लकड़ी की जितनी आवश्यकता हो उसके अनुसार उपयुक्त वृक्ष आदि काटना, साथ ही नए वृक्ष का रोपण भी करना (लगाना)। पानी की जितनी आवश्यकता हो उसके अनुसार कुआँ, तालाब, बाँध आदि बनाकर पानी इकट्ठा करना या भूमि में से निकालना, यह नहीं कहा कि विलासिता के लिए हरे-भरे जंगल (वन) को काटना, भूमि के अन्दर हजारों फीट की गहराई से जल निकालना और उसे व्यर्थ बहाना। इस प्रकार से ब्रह्मा जी ने राजा पृथु को पृथ्वी का पालन करने के साथ-साथ दोहन करने का निर्देश दिया।

आज के समय में हम प्रकृति (पृथ्वी) आदि का दोहन तो खूब करते हैं (बड़ी निर्दयता से करते हैं) परन्तु उसका (पृथ्वी का) पालन नहीं करते हैं, इसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे हैं। भूमि में जल का स्तर बहुत नीचे चला गया है। वृक्ष आदि काटने से पृथ्वी का तापमान तेजी से बढ़ रहा है। प्राकृतिक संसाधनों की कमी एवं अन्य दुष्परिणाम स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी है। अस्तु

संगति-यह बताने के उपरान्त कि राजा पृथु तुम पृथ्वी का पालन करो तब यह तुम्हारी भोग्या बनेगी, महाराज पृथु को कहते हैं कि तुम्हारा नगर आदि बसाहट का जो कार्य है, वह विश्वकर्मा जी द्वारा किया जाएगा।

विश्वकर्मा जी का परिचय देते हुए ब्रह्मा जी कहते हैं कि विश्वकर्मा जी, देवताओं के आचार्य हैं। वे सभी सफलताओं को देने वाले हैं। वे नगर आदि का इस प्रकार का निर्माण कार्य करते हैं कि उसमें निवास करने वाले सभी सफलताओं को प्राप्त करते हैं। उत्तम कुल से उनका सम्बन्ध है। वे सम्पूर्ण विश्व के विद्वान हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि वैदिक वांग्मय में जो नाम है, वही गुण है, इससे हम यह अर्थ ले सकते हैं कि विश्वकर्मा अर्थात विश्व के सभी कार्य को उचित प्रकार से करने में सक्षम विश्वकर्मा जी हैं, विश्व के सभी (निर्माण) कार्य के कर्त्ता।

हे राजा, विश्वकर्माजी ने ही देवताओं के राजा इन्द्र की अमरावती का निर्माण किया था। राजा के लिए अन्य सुन्दर नगरों की रचना भी इन्होंने ने की है। तुम्हारे द्वारा पहाड़ों व वृक्षों से भरी हुई, इस

पृथ्वी को क्षेत्रीकृत (समतल किया हुआ) देखकर विश्वकर्माजी अवश्य ही पुर, ग्राम व नगर की रचना करेंगे, अतः हे वत्स ! (हे पुत्र, राजा पृथु) तुम लोक के भले की इच्छा लेकर यहाँ से जाओ।।२१-२२।।[२२]

विश्लेषण-ब्रह्मा जी राजा पृथु को विश्वकर्मा जी के सामर्थ्य व योग्यता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे राजन् ! इन्हीं विश्वकर्मा जी ने देवताओं के राजा इन्द्र की राजधानी अमरावती का निर्माण कार्य किया है, ये अत्यन्त कुशल हैं। राजधानी के अतिरिक्त अन्य सुन्दर-सुन्दर नगरियों की रचना भी इन्हीं के द्वारा की गई है। तुम जब वापस पृथ्वी पर जाकर, ऊँची-नीची भूमि को बसाहट के योग्य तैयार करोगे। जहाँ-जहाँ नगर, ग्राम, राजधानी आदि बनाना है, उन-उन क्षेत्र को समतल कर लोगो, जब विश्वकर्माजी ऐसे समतल क्षेत्र तथा नदी (पानी), पहाड़ आदि से युक्त भूमि को देखेंगे तो नगर, ग्राम आदि की रचना करने के लिए तैयार हो जाएँगे। हे पुत्र ! चूँकि तुम लोगों का भला करना चाहते हो, तुम्हारी इच्छा लोगों का हित करने की है, क्योंकि जब लोग उचित लक्षणों से युक्त घर में निवास करेंगे तो वे सभी धन, पुत्र आदि से सुख प्राप्त करेंगे, यही तुम चाहते हो, अतः तुम निश्ंचित होकर जाओं, विश्वकर्माजी तुम्हारा कार्य सम्पादित करेंगे।

यहाँ एक बात की ओर संकेत करना भी उचित होगा कि यहाँ उद्देश्य क्या है ? यहाँ नगर, ग्राम आदि बसाने का उद्देश्य क्या है ? श्लोक में शब्द आया है लोकानां हितकाम्यया। लोक का हित, लोगों का हित, लोगों का भला। हाँ, यह मुख्य बात है। कार्य करने वाले की दृष्टि कहाँ केन्द्रित है, उसका उद्देश्य स्वयं का हित है या लोगों का हित है। आज के समय में अनेकानेक देशी-विदेशी संस्थाएँ भारत में सेवाकार्य करती हैं और बहुत ही अच्छा सेवाकार्य करती हैं, अपने देश से दूर आकर भारत के ग्राम में, बहुत ही आन्तरिक प्रदेशों में सेवाकार्य में लगी हुई है। परन्तु उद्देश्य क्या है? जैसा कि हम सब जानते हैं कि उद्देश्य सेवा के साथ-साथ कुछ और भी है, अतः बहुत अच्छी सेवा क्रने के उपरान्त भी भारतीयों की नजरों से देखें तो उद्देश्य उचित न होने के कारण उन्हें बहुत अच्छी नजरों से नहीं देखा जाता है तो कहने का तात्पर्य यह है कि कार्य करने के पीछे भावना क्या है? यहाँ राजा पृथु की भावना लोक हित है।

---

[२२] राजन्नसौ महेन्द्रस्य विदधावमरावतीम्।।२०।।
अन्या अप्यमुना रम्याः पुर्यो लोकभृतां कृताः।
त्वया क्षेत्रीकृतां मूर्त्तिं दृष्ट्वा साद्रिद्रुमामसौ।।२१।।
सन्निवेशान् पुरग्रामनगराणां विधास्यति।
तद् गच्छ वत्स ! लोकानामितस्त्वं हितकाम्यया।।२२।।

एक बात का संकेत और करके इस प्रकरण को समाप्त करेंगे कि जब हमारा उद्देश्य शुद्ध होता है तो प्रकृति की सारी शक्तियाँ हमारे कार्य में सहयोग प्रदान करने लगती है। यहाँ भी हम देखें तो ब्रह्मा जी कह रहें हैं कि हे पृथ्वी तुम राजा का सहयोग करो तथा विश्वकर्मा जी को आगामी श्लोक में कहने वाले हैं कि हे देवशिल्पी आप भी राजा का सहयोग दें। इस प्रकार से हम पाते हैं कि उद्देश्य शुद्ध होने पर प्रकृति या यूँ कहें देवों का सहयोग प्राप्त होने लगता है।

४.२.४ ब्रह्माजी द्वारा पृथ्वी को अभय दान

हे पृथ्वी! तू भी भय को छोड़ दे तथा राजा पृथु की प्रिय बन।[१२]

विश्लेषण-ब्रह्मा जी पृथ्वी से कहते हैं कि हे पृथ्वी तू भी डर मत, यह राजा लोक के भले के लिए जितनी आवश्यकता है, उतना ही तेरा दोहन करेगा, तू भी इसका सहयोग कर, इसकी प्रिय बन तथा निश्चिंत रह।

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि आज के समय में जबकि प्रकृति का अत्यधिक दोहन किया जा रहा है, जिसके की दुष्परिणाम दिखाई देने लगे हैं तथा अब संरक्षण की बात की जाने लगी है, हमारे ऋषि-मुनियों ने हजारों हजार साल पहले ही प्राकृतिक संतुलन की बात की थी। तभी ब्रह्माजी ने कहा कि जितनी आवश्यकता होगी, राजा पृथु उतना ही दोहन करेंगे।

इस प्रकार से हमने देखा कि शास्त्र का उद्देश्य लोक का हित तथा प्रकृति का संतुलन है।

---

[१२] भयोज्झिता त्वमप्युर्वि ! पृथोः प्रियकरी भव।

४.३ भवन जन्म कथा (वास्तुपुरुष उत्पत्ति)

इस अध्याय में हमें भवन के जन्म की कथा का वर्णन मिलता है। इसमें भवन की आवश्यकता क्यों हुई इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। इसमें बताया है कि पहले देवता व मनुष्य साथ-साथ रहते थे। मनुष्य स्थिर यौवन वाले थे, जरा (बुढ़ापे के कारण दुर्बलता)-रोग से रहित उनका जीवन होता था। केवल बसन्त ऋतु ही थी, पूर्ण चन्द्र था, कल्पवृक्ष था। मनुष्यों की जो भी इच्छा होती थी, वह कल्पवृक्ष के प्रभाव से तुरन्त ही पूरी हो जाती थी। वे स्वर्ग भी जाते थे। उनको किसी प्रकार का कोई भी भय आदि नहीं था। उनकी चेतना सतोगुण प्रधान थी। धीरे-धीरे काल के प्रभाव से उनकी चेतना सतोगुणी स्तर से नीचे उतर कर रजोगुण प्रधान होने लगी तब उनकी प्रवृत्तियाँ राजसी (रजोगुण से प्रभावित) होने लगी। इसके फलस्वरुप कल्पवृक्ष लुप्त हो गया। अब उनकी इच्छाएँ पूरी नहीं होती, अनेक ऋतुएँ हो गई। तब शीत, वर्षा आदि से बचने के लिए उन्हें भवन की आवश्यकता महसूस हुई तथा वे भवन बनाकर रहने लगे।

विश्वकर्म-प्रकाश ग्रन्थ में वास्तुपुरुष इस प्रकार बताई हैः-

पहले त्रेतायुग में एक महाभूत व्यवस्थित हुआ। उसने, अपने शरीर से सभी भुवन को ढक लिया। (वह सारे भुवन में व्याप्त हो गया, आच्छादित हो गया। अर्थात् वास्तु का क्षेत्र सारा भुवन है।)

युग चार बताए गए हैं- सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग व कलयुग।

इनमें सतयुग के बाद त्रेतायुग में वास्तुपुरुष की उत्पत्ति बताई गई है,अर्थात् उससे पहले सतयुग में वास्तुपुरुष नहीं था। उस युग में लोगों की चेतना सत्व गुण प्रधान थी।

गुण तीन होते हैं-सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। यह गुण व्यक्ति की मानसिक अवस्था को दर्शाते हैं।

सत्वगुण-पवित्रता

रजोगुण-लोभ व सांसारिक चेष्टा का बढ़ना, मन में चंचलता, विषय भोग की लालसा

तमोगुण-लापरवाही, प्रमाद आदि

त्रेतायुग में जब रजोगुणी चेतना प्रधान रूप से प्रकट होने लगी तब वास्तुपुरुष की उत्पत्ति हुई। लोगों की चेतना के स्तर में जब गिरावट हुई, तब वास्तुपुरुष का जन्म हुआ तथा वास्तु के विपरीत या गलत निर्माण होने पर दोषों का लगना शुरू हुआ।

पुरा त्रेतायुगे ह्यासीन्महाभूतं व्यवस्थितम्।
स्वाप्यमानं शरीरेण सकलं भुवनं ततः।।६।।

हमें समरांगण सूत्रधार के भवनजन्म कथा नामक अध्याय में इसी प्रकार, चेतना के स्तर में गिरावट से वास्तु के दोषों का लगना प्रारम्भ हुआ, का वर्णन मिलता है-

समरांगण सूत्रधार, धार के राजा भोज द्वारा, ग्यारहवीं सदी में लिखा गया, वास्तुशास्त्र का, अत्यन्त ही महत्वपूर्ण तथा प्रामाणिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अध्याय छह में सहदेवाधिकार यानी भवन जन्म कथा का वर्णन किया गया है। जिसमें हमें वर्णन मिलता है कि, कैसे पहले देवता व मनुष्य साथ-साथ रहते थे, वे क्षुधा, पिपासा (भूख, प्यास) एवं दुखों से रहित, स्थिर यौवन वाले थे। फिर देवताओं की अवज्ञा से उनकी अर्थात मनुष्यों की वृत्ति में, चेतना में ह्रास (गिरावट), होने लगा। उन्हें क्रमशः भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, वर्षा व शरीर की अन्य आवश्यकता सताने लगी। तब उन्हें भवन की आवश्यकता महसूस हुई तथा वे घर बनाकर रहने लगे।

इससे हमें, यह पता चलता है कि जब तक मनुष्य की चित्त वृत्ति में ह्रास नहीं हुआ, वे देवता के साथ रहते थे, भूख, प्यास व शरीर की अन्य आवश्यकताओं से मुक्त थे। चित्त की वृत्ति के ह्रास, चेतना के स्तर में गिरावट के बाद, उन्हें शारीरिक आवश्यकताऐं सताने लगी एवं शीत, गर्मी, वर्षा आदि से बचने के लिए भवन की आवश्यकता महसूस हुई और वे भवन बना कर रहने लगे।-स.सू.६

एकोऽग्रजन्मा वर्णोऽस्मिन् वेदोऽभूदेक एव च।
ऋतुर्वसन्त एवैकः कुसुमायुधबान्धवः।।७।।
रुपश्रुतसुखैश्वर्यभाजस्ते निकिला अपि।
समत्वान्नाभवत् तेषामुत्तमाधमध्यमा।। ८।
न खेटनगरग्रामपुरक्षेत्रखलादिकम्।
न दंशमशकक्रव्याद्भयं वा **न ग्रहादि च**।।९।

न तो खेट, नगर, ग्राम, पुर, क्षेत्र या खल आदि थे। न दंश से (डसने से), न मच्छर से, न ही मांस खाने वालों से कोई भय था। **न ही ग्रह आदि का कोई भय था।**।१४।।

कल्पद्रुमाप्तभोगानां न तेषां प्रभुरप्यभूत्।
पुरास्मिन् भारते वर्षे तेषां निवसतामिति।।८।
जगाम सुबहः कालः सुरैः सार्धं सुरश्रियाम्।
अज्ञाततत्प्रभावानां सहसंवाससंभवा। ।१६।
अथैषामभवद् दैवादवज्ञा क्षिदशान् प्रति।
अपूज्यमानस्ते पूज्या सर्वेऽप्यखिलवेदिनः ।।१७।
परिक्लेशैकमूलानि द्वन्द्वान्यासन् पृथक्पृथक्।
ततः स्वक्लृप्तमर्यादोच्छेदिष्वेष्वजितात्मसु ।।२९।
अविनीतेष्वभाग्येषु स शालिस्तुषतामगात्।
प्रवृद्धरजसां तेषां सा पुण्यश्लोकता गता ।।३०।

यहाँ पर खेट, नगर, पुर, क्षेत्र, खल आदि की कोई व्यवस्था न थी और यहाँ पर दंशों से, मशकों से अथवा राक्षसों से कोई भय न था। **ग्रहों, नक्षत्रों की कोई परवाह नहीं करता था।**

प्रवृद्धरजसां तेषां सा पुण्यश्लोकता गता।।३०।
राजस प्रकृति के प्रकोप के कारण, उनकी पुण्यश्लोकता भी चली गई।।३०।।

इस प्रकार से हमने देखा कि चेतना के स्तर में गिरावट के बाद ही वास्तु दोषों का लगना प्रारम्भ होता है या लगते हैं अतः अपनी चेतना का स्तर हमेशा ऊँचा होना चाहिए।

चेतना का स्तर ऊँचा उठाने के लिए शास्त्र के अनुसार आचरण करना, ध्यान करना, चित्त व मन को निर्मल करना व रखना चाहिए। साक्षी भाव में स्थित रहना, सब कुछ ईश्वर की कृपा है, ईश्वर का प्रसाद है, ईश्वर का कार्य है यह मानकर कार्य करना चाहिए।

४.४ वास्तु पद विन्यास

समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ के अध्याय ११ से १४ तक वास्तुपदविन्यास, मर्म स्थान आदि का वर्णन किया गया है।

घर या मंदिर का कोई भी निर्माण कार्य प्रारम्भ करते समय उसकी प्लानिंग किस प्रकार करना चाहिए, किस दिशा में, कहाँ क्या बनवाना चाहिए, इसका विचार वास्तुपद विन्यास से करते हैं। किसी भी भूमि के हिस्से या भूखण्ड या प्लाट पर सूर्य, चन्द्रमा, अन्य ग्रह व नक्षत्र के कारण ऊर्जा के विभिन्न क्षेत्र उत्पन्न होते हैं। उसकी कल्पना एक वास्तुपुरुष के रुप में की गई है तथा उस प्लाट पर उत्पन्न हुई विभिन्न ऊर्जा को वास्तुपुरुष के अलग-अलग देवता (पद-देवता) के नाम से कहा गया है।

जब किसी प्लाट को दस आड़ी तथा दस खड़ी रेखा अर्थात् ८१ भागों में बाँटते हैं तो उसे परमशायिक या ८१ पद का वास्तु विन्यास कहते हैं। इसमें जो ८१ खाने बनते हैं उसका प्रत्येक खाना पद कहलाता है। इस प्रकार कुल ८१ पद होते हैं। इन पदों में अलग-अलग देवता का निवास (स्थान) बताया गया है।

४.४.१ पदविन्यास

यहाँ एक वास्तुपुरुष की कल्पना की गई है तथा यह बताया गया है कि उस वास्तुपुरुष के किस अंग (शरीर के हिस्से या भाग) पर कौन सा देवता होता है या किस प्रकार की ऊर्जा होती है।

अब यदि किसी कारण वश उस देवता की ऊर्जा वहाँ याने उस स्थान पर उत्पन्न नहीं हो या वह स्थान या जगह दूषित (खराब) हो वास्तुपुरुष का वह अंग (शरीर का भाग) पीड़ित याने दुखी होगा तो घर के मालिक के उसी अंग में पीड़ा याने दुख होगा, रोग होगा, उस अंग में खराबी आएगी।

घर में वास्तु दोष की उत्पत्ति होने का अर्थ ही यही है कि घर के उस भाग की ऊर्जा बराबर नहीं मिल पा रही, चूँकि घर के उस भाग में ऊर्जा खराब है तो घर के मालिक या उसमें रहने वाले व्यक्तियों के शरीर के उस अंग में रोग होता है। इसे ऐसे भी देख सकते हैं कि माना कि जो खाना हम खाते है उसमें विटामिन ए की कमी हो तो शरीर में विटामिन ए की कमी से जो रोग होते हैं वो उस व्यक्ति के शरीर में होंगे। विटामिन सी की कमी है भोजन में, तो विटामिन सी की कमी से होने वाले रोग होगें।

अब यहाँ हम इस वास्तुपुरुष के द्वारा यह पता लगा सकते हैं कि आपवत्स या अपवत्स भाग यदि वास्तुपुरुष का दोष कारक है कि मुख से सम्बन्धित रोग या बीमारी होने की पूर्ण आशंका होती है या होगा। हृदय या दिल की बीमारी होने पर घर का ब्रह्मा देवता वाला भाग दोषकारक होने पर ऐसा होगा। इसी प्रकार अन्य देवता के दूषित होने पर शरीर के रोग के हिस्से का पता लगाया जा सकता है।

जो आड़ी और खड़ी रेखाएँ हैं, उन्हें सिरा कहते हैं। जो रेखा पूर्व से पश्चिम की ओर गई हैं उसके नाम- शान्ता, यशोवती, कान्ता, विशाला, प्राणवाहिनी, सती, सुमना, नन्दा, सुभद्रा व सुस्थिता हैं। जो रेखा उत्तर से दक्षिण की ओर गई हैं वे हैं-हिरण्या, सुव्रता, लक्ष्मी, विभूति, विमला, प्रिया, जया, काला, विशोका, इन्द्रा। इक्यासी (८१) पद वास्तु में ये शिरा कही गई हैं इस प्रकार से परमशायिक (८१ पद) वास्तु की शिराएँ हैं। इन शिराओं का वर्णन अग्नि पुराण (श्लोक ३ अध्याय १०५) में भी मिलता है। इन शिराओं का क्या उपयोग है? इसके बारे में विस्तार से जानकारी अभी हमारे पास उपलब्ध नहीं है, ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसका उपयोग कॉलोनी या नगर का निर्माण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि इन शिराओं पर रोड बनवाए जाए तथा अन्य निर्माण न किया जाए।

जिस प्रकार हमारे शरीर में शिराएं होती है, ठीक उसी प्रकार ये वास्तु पुरुष के शरीर की शिराएँ होती हैं। इन शिराओं में उसकी ऊर्जा प्रवाहित होती है, बहती है। इनमें किसी भी प्रकार की बाधा या रुकावट होने पर ऊर्जा का प्रवाह (बहना) बिगड़ता है तथा वास्तु दोष उत्पन्न होता है।

हम जानते हैं कि संस्कृत में (या हिन्दी में) जो नाम है वही गुण है, जैसे गणेश-गणों के स्वामी, रमेश-रमा का पति आदि) यहाँ इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि जो जिस सिरा का नाम है वह उस शिरा के गुण को प्रकट कर रहा है, अभिव्यक्त कर रहा है।

इस इक्यासी पद विन्यास को **परमशायिक** पद विन्यास कहते हैं। यह एकाशीति पद विन्यास भी कहलाता है। इसमें कुल पैंतालीस देवता होते हैं।

इनमें बाहर के बत्तीस देवता, एक-एक पद के हैं। कोण के आठ देवता, दो-दो पद के हैं। आर्यमा आदि चार देवता, छह-छह पद के हैं। मध्य में ब्रह्मा नौ पद के हैं।

यह पैंतालीस देवता, पैंतालीस प्रकार की ऊर्जा को व्यक्त करते हैं।ये प्रत्येक देवता, जिस पद में रहते हैं, उस पद की ऊर्जा को प्रदर्शित करते हैं, जैसे ईशान कोण में स्थित एक पद का देवता ईश, उस पद की ऊर्जा को प्रदर्शित करता है।

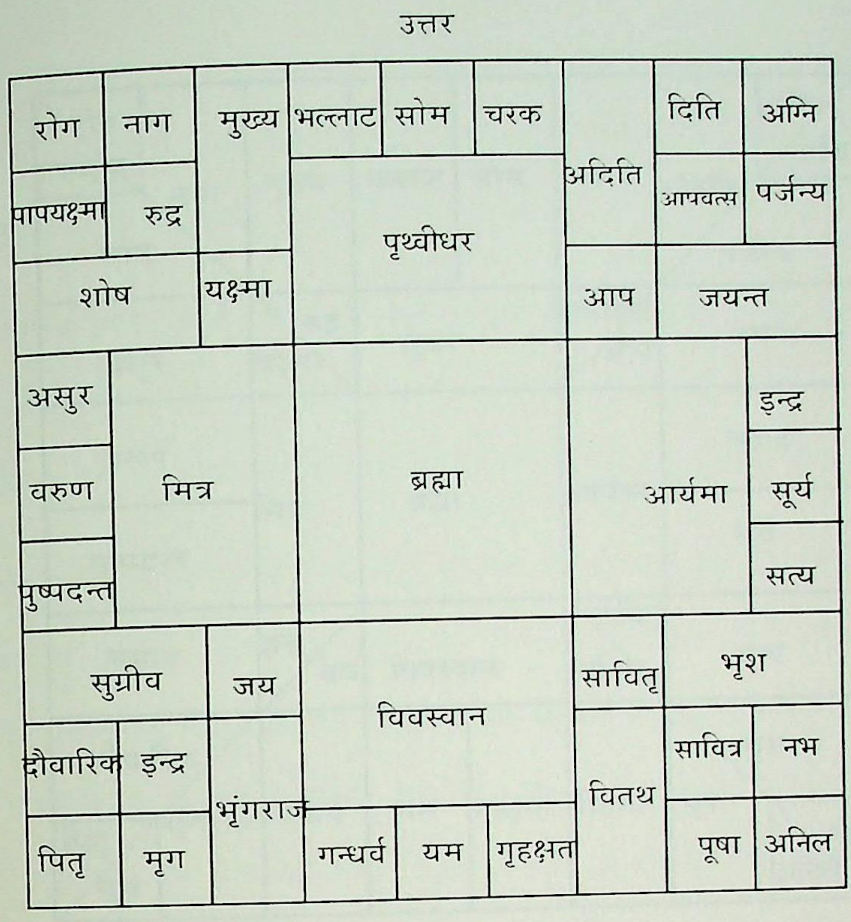
उत्तर
रोग
नाग
मुख्य
भल्लाट
सोम
चरक
अदिति
दिति
अग्नि
आपवत्स
पर्जन्य
पापयक्ष्मा
रुद्र
पृथ्वीधर
शोष
यक्ष्मा
आप
जयन्त
असुर
इन्द्र
वरुण
मित्र
ब्रह्मा
आर्यमा
सूर्य
पुष्पदन्त
सत्य
सुग्रीव
जय
विवस्वान
सावितृ
भृश
दौवारिक
इन्द्र
सावित्र
नभ
भृंगराज
वितथ
पितृ
मृग
गन्धर्व
यम
गृहक्षत
पूषा
अनिल

चित्र-४.१ पदविन्यास

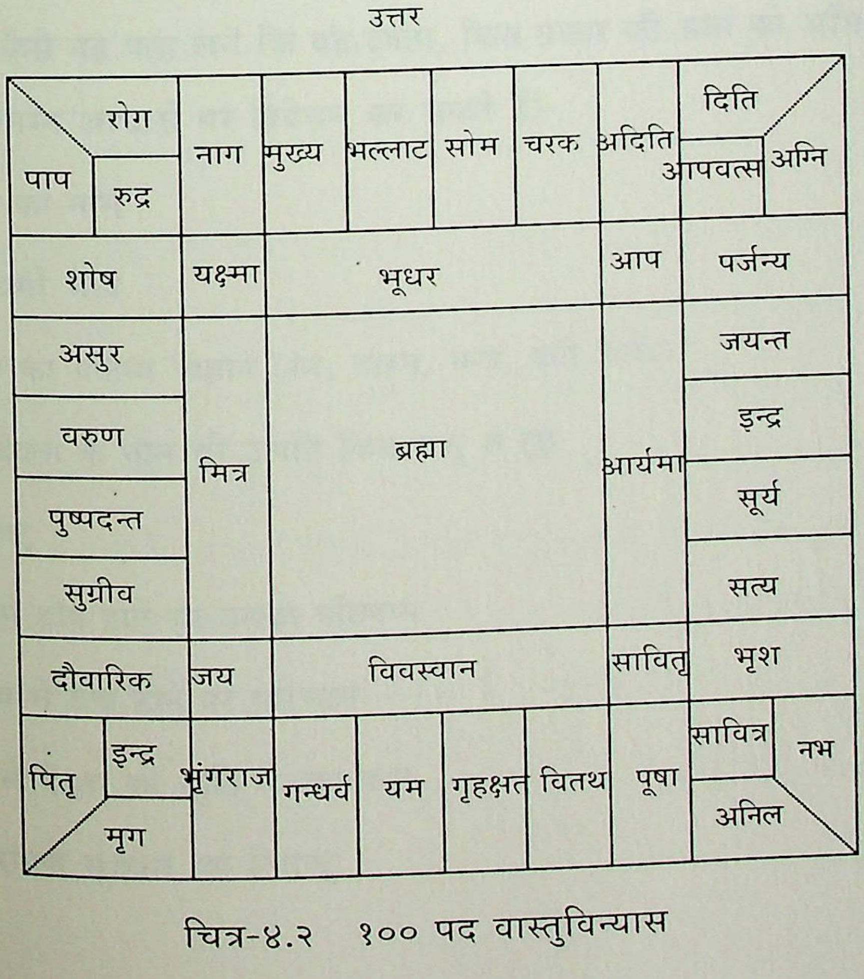
उत्तर
रोग
पाप
रुद्र
नाग
मुख्य
भल्लाट
सोम
चरक
अदिति
दिति
आपवत्स
अग्नि
शोष
यक्ष्मा
भूधर
आप
पर्जन्य
असुर
जयन्त
इन्द्र
वरुण
मित्र
ब्रह्मा
आर्यमा
सूर्य
पुष्पदन्त
सुग्रीव
सत्य
दौवारिक
जय
विवस्वान
सावितृ
भृश
पितृ
इन्द्र
भृंगराज
गन्धर्व
यम
गृहक्षत
वितथ
पूषा
सावित्र
नभ
मृग
अनिल

चित्र-४.२ १०० पद वास्तुविन्यास

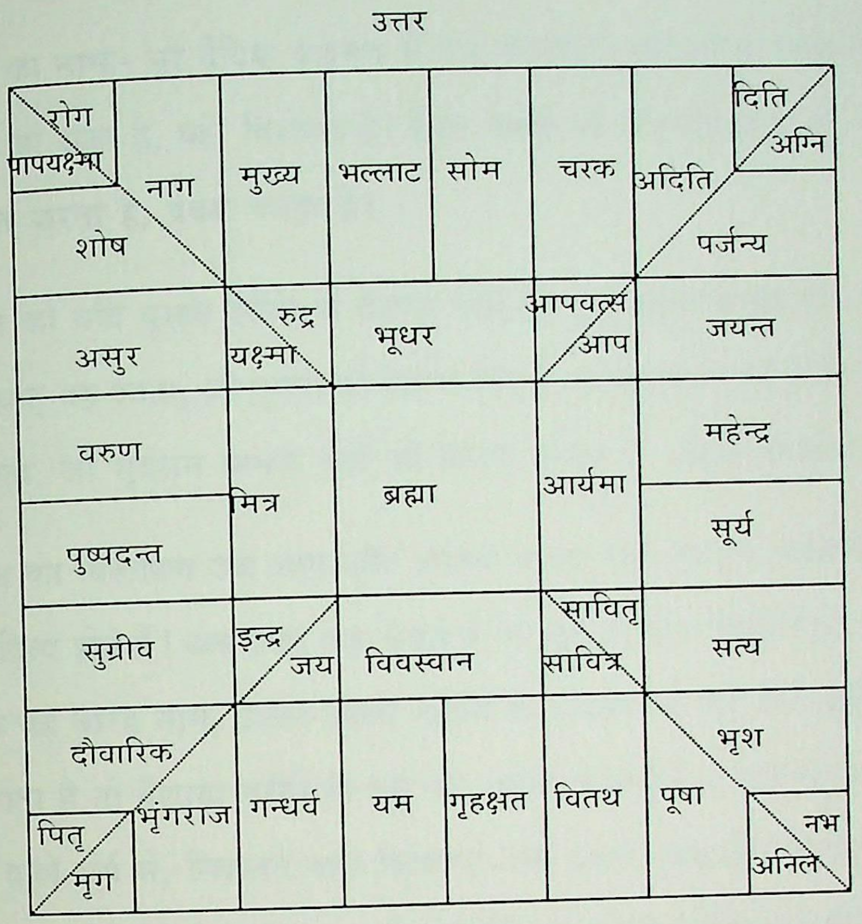
उत्तर
रोग
पापयक्ष्मा
नाग
मुख्य
भल्लाट
सोम
चरक
अदिति
दिति
अग्नि
शोष
पर्जन्य
असुर
रुद्र
यक्ष्मा
भूधर
आपवत्स
आप
जयन्त
वरुण
महेन्द्र
मित्र
ब्रह्मा
आर्यमा
सूर्य
पुष्पदन्त
सावितृ
सुग्रीव
इन्द्र
जय
विवस्वान
सावित्र
सत्य
दौवारिक
भृश
पितृ
मृग
भृंगराज
गन्धर्व
यम
गृहक्षत
वितथ
पूषा
नभ
अनिल

चित्र-४.३ ६४ पद विन्यास

४.४.२ पद देवता

अब हमें कैसे यह पता लगे कि यह देवता, किस प्रकार की ऊर्जा को अभिव्यक्त कर रहा है। इसका हम निम्न आधारों पर विवेचन कर सकते हैंः-

१. देवता का नाम

२. धर्म-धर्मी भाव

३. देवता का प्रतिमा विज्ञान (रंग, वाहन, मन्त्र, देवी आदि)

४. वह देवता के नाम की उत्पत्ति किस धातु से हुई

५. निघण्टु

६. पद में दोष होने पर उसका परिणाम

७. दिशा में दोष होने पर परिणाम

८. वेद में देवता की स्तुति में क्या कहा

९. समरांगण सूत्रधार का निघण्टु

१. देवता का नामः- पूरे वैदिक वाङ्मय में एक महत्वपूर्ण बात हमेंशा ध्यान रखें कि जो नाम है, वही गुण है। जो संज्ञा है, वही विशेषण है। जिस देवता का जो नाम दिया है, वह नाम, देवता के गुण को व्यक्त करता है, प्रकट करता है।

इसी बात को यदि दूसके तरीके से देखना चाहे तो, इस प्रकार देखेंगे कि जब हम कहते हैं कि मुरलीधर अर्थात् वह देवता, जो मुरली को धारण किए है या जब हम कहते हैं कि सुदर्शनचक्रधारी अर्थात् ऐसा देवता, जो सुर्दशन नामक चक्र को धारण करता है, अर्थात् भगवान विष्णु।

इसी बात का विश्लेषण जब आप और अधिक करना चाहे तब हम कहेंगे कि सूर्य के बारह नाम द्वादश आदित्य होते हैं। अब आप कह सकते हैं कि सूर्य तो एक ही हैं, फिर उसके बारह नाम क्यों हैं? सूर्य के यह बारह नाम, अलग-अलग महीनों के आधार पर होते हैं। अर्थात् चैत्र महीने के सूर्य का नाम धाता है तो वैशाख महीने के सूर्य को अर्यमा कहते हैं। ये सूर्य के अलग-अलग नाम, उस-उस महीने वाले सूर्य से, निकलने वाले विकिरण तथा उससे उत्पन्न होने वाले प्रभाव को दर्शाते हैं। ज्येष्ठ महीने का सूर्य मृत्यु तक दे सकता है तो वही सूर्य आषाढ़ महीने में वर्षा करने के कारण, वरुण कहलाता है। इस प्रकार से सूर्य के ये अलग-अलग बारह नाम, उसकी बारह प्रकार की ऊर्जाओं को प्रदर्शित या व्यक्त कर रहे हैं। इसी को आधार बना कर हम यह पता लगा सकते हैं कि वास्तुपद विन्यास के पैंतालीस देवता किस-किस प्रकार की ऊर्जा का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

आइए वास्तु पद विन्यास के एक देवता के नाम का विश्लेषण करें।

वास्तुपदविन्यास में, एक देवता का नाम है **पर्जन्य**। पर्जन्य का अर्थ है बादल। कौन से बादल, ऐसे बादल जिसमें जल है, जो बरसने वाले बादल हैं। इसी को विष्णु-सहस्र-नाम में देखें तो उसमें भगवान विष्णु का एक नाम पर्जन्य आया है। उसमें भगवान शंकराचार्य जी ने टीका में लिखा है, पर्जन्य अर्थात् वरदानों की बरसात करने वाले (भगवान विष्णु)। तो पर्जन्य के इन दो अर्थ बरसने वाले बादल तथा वरदानों की बरसात। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि पर्जन्य पद के स्थान पर हम पानी रखने का स्थान, जल का स्थान, कुआँ, जलाशय आदि बनवा सकते हैं। दूसरा पर्जन्य पद शुभ होने पर, वरदानों की बरसात कर सकता है या करता है।

इसी प्रकार प्रत्येक देवता के नाम के आधार पर, हम उन देवता के गुण पता लगा सकते हैं।

सारणी-४.१ देवता एवं संकेत

देवता	संकेत
चन्द्रमा	ज्ञान
शुक (तोता)	कला व विद्या
काला रंग	शोक व अपकीर्ति
लाल रंग	वशीकरण, आकर्षण, श्री, सौभाग्य, विजय व क्रोध
सफेद रंग	ज्ञान, शान्ति, श्री, सौभाग्य, कीर्ति व मोक्ष
पीला रंग	स्तम्भन
नीला रंग	मारण, उच्चाटन
धूम्र रंग	उच्चाटन
हाथी	लक्ष्मी
झंडा	विजय

सारणी-४.२

देवता	संकेत
छत्र	राज्य
दण्ड	शासन
कमल	पृथ्वी
सुरा	मोह
मुण्डमाला	संहार-शक्ति
पीला रंग	पृथ्वी तत्व प्रधान
सफेद रंग	जल तत्व प्रधान
लाल रंग	अग्नि तत्व प्रधान
धूम्र रंग	वायु तत्व प्रधान
नीला रंग	आकाश तत्व प्रधान

सारणी-४.३ अस्त्र

टंक	आग्नेय ताप
शूल	वायव्य ताप
वज्र	एन्द्र ताप
पाश	वरुण सम्बन्धी रज्जू पाश
खड्ग	चान्द्र हेति
अकुंश	दिव्य हेति
घण्टा	ध्वन्यात्मक शब्द
नागेन्द्र	विषसंचार नाड़ी
परम्परया	संहार
अग्निज्वाला	ज्योतिर्भाव
अभय मुद्रा	शान्ति
कलश	ज्ञानामृत
कमल	आनन्दघना प्रतिष्ठात्मिका शक्ति
माला	शब्द ब्रह्मात्मक स्फोट
पुस्तक	ज्ञान

२. **धर्म-धर्मी भाव**-जब भी किसी देवता का नामकरण किया जाता है तो वह नामकरण उस देवता के धर्म, जिसको वह धारण करता है, के आधार पर किया जाता है। जैसे ईश देवता ईशत्व नामक धर्म को धारण करता है। ईश शब्द का अर्थ है स्वामी, मालिक, पति इत्यादि अर्थात् वह ईश देवता, स्वामित्व के गुणों से युक्त होता है।

३. देवता का प्रतिमा विज्ञानः- पहले के समय में, वैदिक काल में देवताओं की, शक्तियों की, उपासना सीधे शक्ति के सामने की जाती थी। यदि सूर्य की उपासना करना हो तो सूर्य देव के सामने खड़े होकर करते थे। अग्नि की उपासना, अग्नि को प्रज्वलित कर, की जाती थी। वरुण की उपासना, जल के स्थान पर, समुद्र पर, की जाती थी।

कालान्तर में यह उपासना, प्रतीक बनाकर की जाने लगी। प्रतीक, शक्ति या देवता के गुण सांकेतिक रूप से व्यक्त करते थे। धीरे-धीरे यह स्थान, चित्र, मूर्ति, प्रतिमा आदि ने ले लिया।

देवता की यह प्रतिमा उस देवता के गुणों को सांकेतिक रुप से अभिव्यक्त करने लगी।

जैसे सूर्य की रश्मियों के सात रंग, घोड़ों के माध्यम से प्रकट हुए। गति, रथ व चक्र के माध्यम से व्यक्त की। आदि-आदि।

प्रतिमा विज्ञान में, प्रत्येक देवता का एक रंग या वर्ण होता है, उनकी एक आकृति होती है, जिसमें एक या एक से अधिक मुख, आँख, हाथ इत्यादि होते हैं। उनके वस्त्र का रंग, उनके हाथों में धारण किए जाने वाले अस्त्र, शस्त्र व मुद्रा, उनका वाहन, उनकी शक्ति (पत्नि), उनका भोजन, उनके आभूषण, उनके मन्त्र इत्यादि के माध्यम से वह देवता, अपने गुणों को प्रकट करता है या यूँ कहे कि, अपनी प्रापर्टीज को रिप्रजेन्ट (प्रदर्शित) करता है।

इस विधि से जब हम चलते हैं तो हमें कौन सा रंग क्या प्रदर्शित करता है, यह मालूम होना चाहिए। उस देवता के हाथ में धारण किए जाने वाले अस्त्र-शस्त्र किन गुणों को प्रकट करते है, इसका ज्ञान होना, अत्यन्त आवश्यक है।

वास्तुपुरुष के पैंतालीस देवता किन गुणों को प्रकट कर रहे हैं, यह बताने के लिए जो शास्त्र है वह निघण्टु या निरुक्त के नाम से जाना जाता है। यह अत्यन्त ही दुर्भाग्य का विषय है कि इस प्रकार के अधिकांश शास्त्र लुप्त (गुम) हो गए हैं। जो उपलब्ध ग्रन्थ है उनके आधार पर यह निम्न संकेत, इन गुणों को या बातों को रिप्रजेन्ट करती है या इनके प्रतीक हैं।

जब हमें उस देवता की ऊर्जा का पता चल जाएगा, तब उसके पद में हमें क्या बनवाना चाहिए या उस पद में किस प्रकार की ऊर्जा है तो हम उसका किस प्रकार उपयोग करें यह स्पष्ट हो पाएगा।

इतना ही नहीं वरन् उस पद में यदि कोई दोष है तो उस दोष का निवारण किस प्रकार किया जाए यह भी हम जान पाएंगे। इसका सरलतम उपाय यह हो सकता है कि जो पद दूषित हो वहाँ उस देवता के भोज्य पदार्थ (भोजन) का वहाँ, उनके मन्त्रों के साथ हवन किया जाए।

६. उस देवता के पद को किस प्रयोजन में लाया जाता हैः- कौन सा देवता किस प्रकार की ऊर्जा को प्रदर्शित कर रहा है इसका एक अत्यन्त सशक्त आधार इस पद का उपयोग भी हो सकता है। जैसे उदाहरण के लिए यदि भृंगराज के पद में सेनापति को रहना चाहिए ऐसा वर्णन हमें ग्रन्थों में मिले तो हम कह सकते है कि भृंगराज का पद सेनापति के लिए उपयुक्त गुणों को रखता है एवं प्रदर्शित करता है।

अदिति के पद में द्वार बनाने पर महिलाओं को नुकसान होता है। मयमत ग्रन्थ में यह वर्णन मिलता है कि अदिति पद का स्थान बांझ, कुबड़ी, ठिगनी महिलाओं के लिए कहा गया है। इससे हम यह इन्टरप्रिटेट कर सकते है कि इस पद की ऊर्जा सामान्य महिलाओं के अनुकूल नहीं है।

७. किसी देवता के पद में कोई दोष उत्पन्न होने पर उसका जो दुष्परिणाम होता है उसके द्वारा भी हम उस देवता की ऊर्जा का पता लगा सकते हैं।

८. इसके अतिरिक्त समरांगण सूत्रधार, मयमत, मानसार आदि ग्रन्थों में हमें गृहदोष निरुपण का वर्णन मिलता है। जिससे हमें यह पता चलता है कि घर का कौन सा भाग घर के किस व्यक्ति को प्रभावित करता है। जैसे वारणा टूटने पर बड़ा पुत्र बाधित होता है या उसे कष्ट होता है।

९. इसके अतिरिक्त ऋग्वेद आदि ग्रन्थों में देवताओं की जो स्तुति की गई है उसके आधार पर उस देवता के गुणों का पता लगा सकते हैं। यदि किसी देवता से पुत्र की मांग या याचना की गई है, इसका अर्थ यह है कि वह देवता पुत्र देने की ऊर्जा रखता है, उसमें सक्षम है, उस ऊर्जा के बाधित होने पर या उसमें रुकावट होने पर पुत्र सुख में बाधा होती है। अब देवता के मन्त्र, स्तुति तथा हवन आदि करने से वह ऊर्जा की बाधा दूर होती है तथा सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न होती है, जिससे पुत्र सम्बन्धी बाधा दूर होती है।

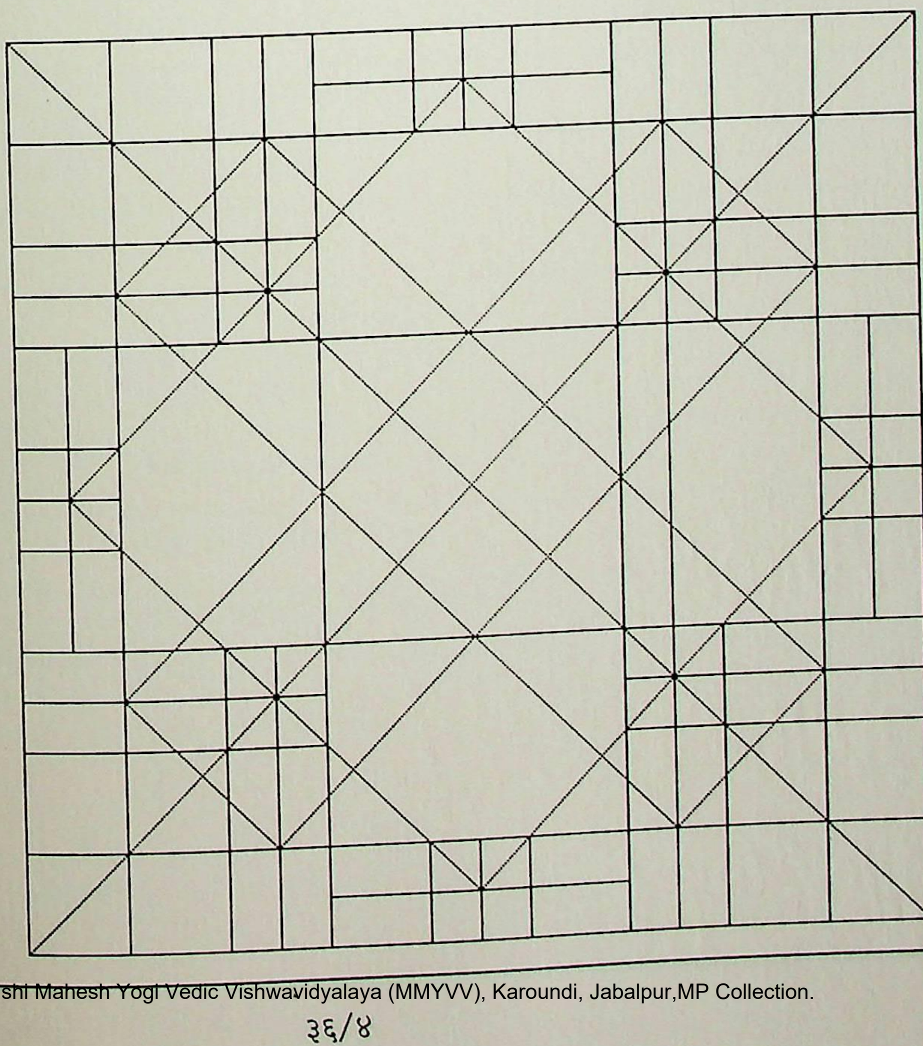

चित्र-४.४ वास्तु मर्म

जब वास्तुपुरुष की उत्पत्ति हुई तो ब्रह्माजी के कहे अनुसार इन्द्र आदि ४५ देवताओं ने उसे पकड़कर उसका नीचे मुख करके उसे जमीन पर गिरा दिया तथा उसके ऊपर बैठ गए। उस समय जो देवता जिस अंग को पकड़े था वह उसी अंग पर बैठ गया तथा उस अंग का स्वामी या मालिक बन गया।

वह देवता वास्तुपुरुष या शरीर के उस भाग की ऊर्जा को प्रदर्शित करने लगा।

वास्तुपुरुष का जो अंग पीड़ित होगा या कमजोर रहेगा गृहस्वामी के उसी अंग में पीड़ा होती है। वास्तुपुरुष के अंग का कमजोर होना यह बताता है कि घर के उस भाग में किस प्रकार की ऊर्जा की कमी है। उदाहरण के लिए वास्तुपुरुष का हृदय अर्थात् ब्रह्मा व भूधर देवता के बीच का स्थान यदि पीड़ित या दूषित हो तो गृहस्वामी को हृदय रोग होने की आंशका अत्यधिक होती है।

४.४.३ समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ के आधार पर निघण्टु

इस प्रकार से वास्तुदेवता का यह निघण्टु समरांगण सूत्रधार में कहा गया है।

सारणी-४.४ देवता निघण्टु

ब्रह्मा	क्षेत्रों के मध्य, कमल से उत्पन्न, हजार मुख, अचिन्त्य विभव
ईश	सर्वभूत हर भगवान शंकर
पर्जन्य	बरसात करने वाले, जल के स्वामी
जयन्त	भगवान कश्यप ऋषि
महेन्द्र	देवताओं के स्वामी, राक्षसों के संहारक
सूर्य	दिनकर विवस्वान
सत्य	प्राणियों के हितैषी धर्म
भृश	कामदेव
अन्तरिक्ष	नभ
वायु	मारुत
पूषा	मातृगण
वितथ	कलयुग का अतुलनीय (बेजोड़) पुत्र अधर्म
गृहक्षत	चन्द्रमा का पुत्र बुध
यम	प्रेतों के स्वामी
गन्धर्व	देव नारद
भृङ्गराज	निर्ऋति का पुत्र राक्षस
मृग	ब्रह्मा व धर्म
पितृ	पितृलोक के निवासी देव
दौवारिक	प्रथमों के स्वामी नन्दी
सुग्रीव	आदि प्रजापति, सृष्टि के कर्ता मनु

सारणी-४.४ देवता निघण्टु

पुष्पदन्त	विनता के पुत्र, महाजवशाली (?बहुत तेज चलने वाले)
वरुण	जल के स्वामी तथा लोकपाल
असुर	राहु, सिंहिका राक्षसी के पुत्र
शोष	भगवान सूर्य के पुत्र शनि
पापयक्ष्मा	क्षय
रोग	ज्वर
नाग	सर्पों के स्वामी श्रीमान वासुकि शेषनाग
मुख्य	त्वष्टा तथा विश्वकर्मा
भल्लाट	चन्द्रमा
सोम	कुबेर
चरक	व्यवसाय
अदिति	लक्ष्मी
दिति	शूल धारी, वृषभ की ध्वजा वाले (भगवान शंकर)
आप	हिमवान
आपवत्स	उमा
आर्यमा	आदित्य
सावित्र	वेदमाता
सविता	गङ्गा
विवस्वान	शरीर को नष्ट करने वाला मृत्यु
इन्द्र	जय नामक वज्र धारण करने वाले बलवान हरि
मित्र	हलधर माली
रुद्र	महेश्वर
राजयक्ष्मा	कार्तिकेय
पृथ्वीधर	अनन्त (शेषनाग)

इस प्रकार से हमने यहाँ वास्तु तथा आगम व तन्त्र के ग्रन्थ के आधार पर निघण्टु को देखा। जो भी इस बात का इच्छुक हो कि वास्तुपुरुष के पैंतालीस देवता या अन्य कोई भी देवता, किस प्रकार की ऊर्जा को व्यक्त कर रहे हैं तो इसके आधार पर कर सकते हैं। उसके आधार पर निर्माण तथा वास्तु सुधार किया जा सकता है।

जिस प्रकार से एक मनुष्य के शरीर में सभी अंगों का होना तथा उनका स्वस्थ या निरोग या दोष रहित होना आवश्यक है, उसी प्रकार वास्तुविद्या के विभिन्न अंग, विभिन्न भाग आपस में एक दूसरे से जुड़े हैं तथा एक-दूसरे पर आश्रित हैं। मानव शरीर में आँख, कान, नाक, हाथ, पैर इत्यादि सभी अंग महत्वपूर्ण हैं। इन बाहरी दिखने वाले अंगों के अतिरिक्त जो आन्तरिक अंग हैं, जैसे लीवर, फेफड़े, इत्यादि ये सभी अंग भी दोष रहित होना अत्यन्त आवश्यक हैं। किसी भी अंग में दोष होने पर पूरा शरीर बीमार हो जाता है।

ठीक इसी प्रकार इस वास्तुविद्या के विभिन्न अंगों की पूरी एवं सही जानकारी एवं ज्ञान परम आवश्यक है। यहाँ यही तात्पर्य है कि भले ही एक वास्तुविद्, सारे कर्मकांण्ड (पूजन इत्यादि) को स्वयं सम्पन्न न भी करे, तो भी उसे पूरे विधि-विधान की जानकारी व ज्ञान आवश्यक है।

४.४.४ वास्तु देवता तथा बलिकर्म

मकान में गृह-प्रवेश के पहले वास्तुशान्ति कराने के पश्चात ही वह गृह या घर कहलाता है, होता है। वास्तुशान्ति की प्रक्रिया, वास्तव में घर को सकारात्मक ऊर्जा से भर देने की एक वैदिक प्रक्रिया है, विधि है। किसी भी शिल्प या मूर्ति को, प्राण प्रतिष्ठा के द्वारा अत्यधिक पॉजिटिवली चार्ज किया जाता है। इसके बाद ही, वह पूजा के योग्य होती है तथा अपना प्रभाव देती है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न वास्तुदोषों का पता लगाने के उपरान्त, उसके निवारण के लिए, दोष को दूर करने के लिए किए जाने वाले शान्ति कर्म, प्रायश्चित इत्यादि के विधि-विधान की पूरी जानकारी एवं ज्ञान, एक वास्तुविद को होना चाहिए, ताकि वह उन दोषों को दूर कर सके। विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ के पहले अध्याय में घर में विभिन्न वास्तुदोष के लक्षण बताए हैं। उसके तुरन्त बाद ही उन्हें दूर करने के लिए वास्तुशान्ति (पूजन-हवन आदि) का उपाय बताया है।

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ के गृहशान्ति नामक अध्याय में वास्तु दोष दूर करने के लिए बताया है कि पहले यह निश्चित करें कि गृह के किस भाग में दोष है, उसके पश्चात् उस दिशा के देवता (ऊर्जा) का पूजन (हवन) करें। वास्तुशास्त्र के सभी ग्रन्थ में बलिकर्म (हवन) नामक अध्याय है। इस अध्याय में वास्तु के देवताओं के पूजनविधान का वर्णन है।

सारणी-४.५ देवता एवं बलि पदार्थ

१. शिखि	घी
२. पर्जन्य	शालि (चावल), गेहुँ, उड़द आदि धान्य से
३. जयन्त	आम, द्राक्षा और खजूर आदि से
४. इन्द्र	मालती और मल्लिका पुष्पों से
५. सूर्य	लाल पुष्पों, लाल चन्दन के विलेपन से
६. सत्य देव	जम्बीर से, निम्बुओं से, नारंगी और पीले फलों से
७. भृश	सफेद फलों से और नारियलों से
८. नभ	गंध, धूप
९. मारुत	सुगन्धित पुष्पों से
१०. पूषा	मधु (शहद) संयुक्त कृसर(खीर)
११. वितथ	मद्य (मदिरा)-मांस-विवर्जित (छोड़े हुए) पदार्थों से
१२. विवस्वान्	पूजित होने पर तुष्ट होते हैं
१३. गृहक्षत	छोटे-छोटे पुष्पों से पूजित होने पर
१४. यम	मछली-मांस से युक्त भव्य पदार्थ
१५. गन्धर्वो	पुन्नाग, अगरु, धूप
१६. भृंगराज	मृगमांस से युक्त भोजनों से
१७. मृगदेव	राजजम्बु फलों और बेलों

सारणी-४.५ देवता एवं बलि पदार्थ

१८. पितरों	(खीरों), मांसों और सुन्दर भातो से
१९. दौवारिक	पुष्प सहित लड्डुओं, लावों से मिश्रित मांसों से
२०. सुग्रीव	कंटक (कांटे वाले)-जाति के पुष्पों से
२१. पुष्पदन्त	सपुष्प लावों और दधियुक्त अन्न और पायसों
२२. गरुड़	सूकर (सूअर) आदि के मांसों से
२३. वरुण	धूप और चन्दन से
२४. राहु	मांस-युक्त भक्ष्य-भोजनों से
२५. शनैश्चर	खून से
२६. क्षय	मांस से
२७. रोग	चर्बी से पूजा
२८. वासुकि	सतत दुग्ध (दूध)-दान से
२९. भल्लाट	सफेद पुष्पों के विन्यास से
३०. चन्द्र	दधियुक्त अन्न से
३१. कुबेर	धूप-दान से
३२. अदिति	सुवर्ण (सोने) से तथा कमलों स
३३. वृषभ	अर्क और मन्दार पुष्पों की मालाओं से
३४. अन्य देवताओं	धूप आदि से

४.५ वर्णाश्रम व्यवस्था

४.५.१ विषय प्रवेश

जैसा कि हम जानते है कि प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति अलग होती है। हर एक व्यक्ति के स्वभाव में दूसरे से भिन्नता पाई जाती है। उसकी रुचि दूसरे से भिन्न होती है। एक व्यक्ति को एक वस्तु पसंद है, तो वही वस्तु दूसरे का पसंद नहीं है। किसी को क्रीम कलर अच्छा लगता है तो दूसरे को लाल रंग अच्छा लगता है। किसी को अचार पसंद है तो दूसरे को मिठाई। वास्तुशास्त्र में व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार नियम बनाए गए है कि किस प्रकार की प्रकृति वाले व्यक्ति के लिए वास्तुशास्त्र के कौन से नियम लागू होगें।

वास्तुशास्त्र में व्यक्तियों को चार श्रेणी या वर्गो या वर्णो में विभाजित किया गया है। यही व्यवस्था वर्णाश्रम व्यवस्था कहलाती है। ये चार श्रेणियाँ इस प्रकार हैं-**ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र।**

४.५.२ वर्णाश्रम का निर्धारण

(राजा पृथु ने) उसके बाद चार वर्ण व चार आश्रम का विभाग किया। जो लोग वेद में निरत (रूचि रखने वाले) थे, अच्छे आचरण वाले थे, जिनकी इन्द्रियाँ नियन्त्रण में थी, विद्वान थे, पवित्र थे, **ब्राह्मण** बनाए गए।।९.५।।[१]

ब्राह्मण-जिनका कार्य अध्ययन, अध्यापन, मनन व चिन्तन का है, जो परोपकारी प्रकृति के हैं, उनको ब्राह्मण कहा गया है। आज के समय में जो सेवा कार्य में रत है, परोपकार की भावना से कार्य करते हैं, जिनका उद्देश्य लोगों का भलाई करना है वे सभी ब्राह्मण के अन्तर्गत आते हैं।

जो शूरवीर थे, बड़े उत्साही थे, शरण में आने वाले की रक्षा कर सकते थे, शरीर से मजबूत व लम्बे-चौड़े थे, **क्षत्रिय** कहलाए।।११.५।।[२]

---

[१] ततः स चतुरो वर्णानाश्रमांश्च व्यभाजयत्।
तेषु ये वेदनिरताः स्वाचाराः संयतेन्द्रियाः।।९।।
सूरयश्चावदाताश्च ब्राह्मणास्तेऽभवंस्तदा।

[२] ये तु शूरा महोत्साहाः शरण्या रक्षणक्षमाः।।११।।
दृढव्यायतादेहाश्च क्षत्रियास्त इहाभवन्।

क्षत्रिय- जो प्रशासनिक कार्यों में लगे है। प्रशासनिक कार्य चाहे वो शासकीय हो या अशासकीय सभी क्षत्रिय के अन्तर्गत आते है। उदाहरण के लिए शासकीय कार्यरत कलेक्टर, कमीशनर, पुलिस अधीक्षक आदि। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति आदि। मन्त्री, सचिव, कुलपति, आदि। हास्पिटल का अधीक्षक, डीन, डायरेक्टर आदि। जिस भी ऑफिस का वास्तु करना हो उसका प्रमुख व्यक्ति जो प्रशासन का कार्य कर रहा है, उसका वास्तु हम क्षत्रिय के लिए दिए गए नियमों के आधार पर करेंगे।

अशासकीय क्षेत्र में लें तो किसी कम्पनी या फेक्टरी का डायरेक्टर, मेनेजर, आदि। दुकान, वर्कशॉप, आदि का प्रमुख व्यक्ति। जो भी कार्यक्षेत्र हो उसके प्रमुख व्यक्ति के लिए वास्तु करना हो, उसके ऑफिस का वास्तु करना हो तो उसे वास्तुशास्त्र में बताए गए क्षत्रिय वर्ण के अनुसार वास्तुशास्त्र के नियम लागू किए जाएँगें।

जिन लोगों में स्वाभाविक रूप से निपुणता पाई जाती है, जिनका धन उत्पन्न करने के प्रति सहज अनुराग है, (प्रेम है), जो श्रद्धालु, कुशल, दयावान है उन्हें **वैश्य** बनाया गया।।१३.५।।[३]

वैश्य- वैश्य वर्ण के व्यक्ति की प्रकृति मुख्य रूप से व्यापार-व्यवसाय की है। इनका कार्य मुख्य से शास्त्रोक्त विधि से धन का अर्जन करना है। फिर चाहे वह व्यापार, व्यवसाय, विपणण, मार्केटिंग का कार्य करता हो, या शिक्षण का कार्य करता हो या डॉक्टर हो। यदि मुख्य ध्येय धन का अर्जन है तो वह व्यक्ति वैश्य की ही केटगरी (श्रेणी) में आएगा।

वे लोग जिनका न अधिक आदर था, न पवित्र थे, पिशुन (क्रूर, नीच) थे, न ही धर्म में रत थे, **शूद्र** कहलाए।।१५.५।।[४]

शूद्र-यह चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी है। आज के समय में हम नौकर आदि को इस श्रेणी रख सकते हैं। यह चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी है। वह चाहे ऑफिस में कार्य करने वाला लड़का हो या घर में कार्य करने वाले नौकर (सेवक) हो। सभी इसी श्रेणी में आएँगें।

---

[३] निसर्गान्नैपुणं येषां रतिर्वित्तार्जनं प्रति।।१३।।
श्रद्धादाक्ष्यदयावन्तो वैश्यांस्तानकरोदसौ।

[४] नातिमानभृतो नातिशुचयः पिशुनाश्च ये।।१५।।
ते शूद्रजातयो जाता नातिधर्मरताश्च ये।

४.५.३ रंग

अब हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि ब्राह्मण आदि चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) व्यक्ति के लिए कौन-कौन से रंग शुभ हैं?

सफेद, लाल, पीली व काले रंग की भूमि क्रम से ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए अथवा सबके लिए शुभ है।[८]

ब्राह्मण के लिए सफेद रंग शुभ बताया है। क्षत्रिय के लिए लाल, वैश्य के लिए सुनहरा तथा शूद्र के लिए काला रंग शुभ कहा है।

सफेद रंग ज्ञान, कीर्ति, मोक्ष, शान्ति, श्री, सौभाग्य व पवित्रता को प्रदर्शित करता है। इस रंग का प्रयोग करने से इस प्रकार के गुण विकसित होते है।

वास्तुशास्त्र में क्षत्रिय के लिए लाल (ताम्बे के समान) रंग शुभ बताया है।

लाल रंग वश्य, आकर्षण, श्री, सौभाग्य, विजय, क्रियाशीलता, क्रोध, प्रदर्शित करता है। देवी के उपासक, शक्ति के उपासक लाल रंग का प्रयोग करते हैं।

लाल रंग जैसा हमने जाना कि क्रियाशीलता को अभिव्यक्त करता है, प्रदर्शित करता है, ऊर्जा प्रदान करता है, ऊर्जा देता है। अब लाल रंग का प्रयोग करने पर ऊर्जा तो प्राप्त हो गई परन्तु वही ऊर्जा का उपयोग न हो, व्यक्ति उस ऊर्जा को कार्य रुप में परिणित न करें तो वही ऊर्जा क्रोध के रूप में अभिव्यक्त होने लगती है।

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में वैश्य प्रकृति के व्यक्ति के लिए पीला (सुनहरा) रंग शुभ बताया है। यह रंग का प्रयोग करने से वैश्योचित गुण विकसित होते हैं। वास्तु परामर्श में इसी रंग का प्रयोग सर्वाधिक किया जाता है।

काला रंग शोक, अपकीर्ति, दुःख आदि को प्रकट करता है। अतः सामान्य रुप में वास्तु में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। एक-एक रंग का अपना महत्व है, रंगों के बारे में अधिक जानकारी के लिए निघण्टु ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।

सिता रक्ता च पीता च कृष्णा चैव क्रमान्मही।
विप्रादीनां हि वर्णानां सर्वेषामथवा हिता।।४८।।८

४.५.४ स्वाद

मीठी, कषाय (हरड़ के समान स्वाद), तिक्त (निम्ब के समान स्वाद) व कटु (कड़वी) स्वाद वाली भूमि ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए क्रम से शुभ है या सभी के लिए मीठे स्वाद वाली भूमि शुभ है।[८]

जैसा कि हम जानते हैं कि हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। आँख, नाक, कान, जीभ व त्वचा।

वास्तुशास्त्र में बताया गया है कि ब्राह्मण प्रकृति के व्यक्ति के लिए मीठा स्वाद उचित है या उसका भोजन मीठा होना चाहिए। इससे ब्राह्मणोचित गुण विकसित होते हैं। मीठा स्वाद जलीय तत्व को बढ़ाता है, सात्विकता को बढ़ाता है। प्रायोगिक रुप से भी हम देखते हैं कि पण्डित जी मीठा पंसद करते हैं, मथुरा के पेठे जगत में प्रसिद्ध हैं। इसके अलावा इस प्रकार भी देख सकते हैं कि ब्राह्मण प्रकृति के व्यक्ति सामान्य रुप से अधिक मिर्च या तीखे या कड़वे पदार्थ को पसंद नहीं करते हैं।

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि मीठा पदार्थ सात्विक गुणों को विकसित करने में सहायक होता है।

इसी प्रकार मिर्च या तिक्त पदार्थ का भोजन करने से व्यक्ति में क्रियाशीलता बढ़ती है, स्थिरता में कमी आती है। अम्ल युक्त पदार्थ जैसे लवण, अचार, खटाई आदि का प्रयोग करने से वैश्योचित गुण विकसित होते हैं।

वास्तुशास्त्र के सभी ग्रन्थों में भूमि के रंग, गन्ध, स्वाद, आकार आदि के माध्यम से रंग, गन्ध, स्वाद व आकार आदि के गुण बताएँ हैं। इनका उचित प्रकार से प्रयोग करने से वर्ण के अनुसार गुण विकसित किए जा सकते हैं।

आकार का महत्व

जैसा की हम जानते हैं कि मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। इन ज्ञानेन्द्रियों से वह बाहरी ज्ञान (विषय) को ग्रहण करता है। इनमें आँख प्रमुख होती है, हमारे ज्ञान का अधिकांश भाग हम आँख से ग्रहण करते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार अपने ज्ञान का ८५ प्रतिशत भाग हम आँखों से ग्रहण करते हैं। आँख से हम दो चीज देखते हैं-आकार व रंग। इन दोनों का हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

---

[८] स्वादुः कषाया तिक्ता च कटुका चेत्यनुक्रमात्।
वर्णानां स्वादतः शस्ता सर्वेषां मधुराथवा।।४९।।८

नगर की रचना, कॉलोनी की रचना, प्लाट व उस पर बने हुए कमरे का आकार हमें अत्यधिक प्रभावित करते हैं।

विषय की गहराई में जाए तो कमरे का फर्नीचर, पलंग, खिड़की. दरवाजे आदि का आकार, फोटो फ्रेम आदि सभी के आकार उस घर में निवास करने वाले व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं।

आइए सबसे पहले यह देखें कि किस आकार का प्लाट निवास के लिए शुभ कहा गया है।

४.५.५ आकार

सारणी-४.६ नगर के आकार के माध्यम से आकार के गुण

आकार	निवास हेतु उपयुक्त
१. सम	राजा
२. चतुरश्र	राजा
३. साचि	पुरोहित
४. दीर्घ	छोटे राजकुमार
५. वृत्त	सेनापति
६. शम्बुक	गज, अश्व रथादि
७. शकटाक्षाकृति	बनिया
८. भगाकृति	वेश्याएँ
९. आदर्शाकृति	सुनार
१०. वज्राकृति	नगर-गोष्ठीक
११. कन्थाकृति	पुत्राभिलाषी
१२. छिन्नकर्णा	महामात्र
१३. विकर्णा	बहेलिए
१४. शंख-सदृश	काणे (एक आँख वाले)
१५.क्षुर-सन्निभ	गणाचार्य
१६. शक्तिमुख	व्रजाध्यक्ष
१७. कूर्मपृष्ठ	माली
१८. सदंश	दर्जी
१९. व्यजनाकृति	घोड़ों को पालने वाले
२०. शरावाकृति	बढ़ई

सारणी-४.६ नगर के आकार के माध्यम से आकार के गुण

२१. स्वस्तिकाकृति	बन्दी (कैदी)और मागध लोग
२२. पणवाकार	वेणु, तुर्य आदि बाजा बजाने
२३. मृदंगाकार	वेणु, तुर्य आदि बाजा बजाने
२४. विशर्कर	रथ को हाँकने वाला
२५. कबंधाकृति	नीचों और चाण्डालों
२६. यवमध्य-समाकृति	खेतिहरों
२७. उत्संगाकार	श्रमण
२८. गजदंताकार	पीलवानों (हाथी के वाहकों)
२९. परशु-सदृश विश्रावित	कैदी लोग
३०. श्वभ्र	मजदूर
३१. प्रलम्ब	नाई लोग
३२. विवाहिक	खजाने की रक्षा करने वाले
३३. त्रिकूष्ट	वह्निजीवी
३४. पञ्चकुष्ट	वह्निजीवी
३५. परिच्छिन्न	मानोपजीवी
३६. दिक्स्वस्तिकाभ	चैत्य और घरों का निर्माण
३७. श्रीवृक्ष	यज्ञवाट तथा वृक्ष
३८. वर्ध-मान-समानन	यज्ञवाट तथा वृक्ष
३९. एणीपद	गणिकाए
४०. नरपद	चोर

इस प्रकार से समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ के मातृका संस्थान अध्याय में ४० आकार के माध्यम से आकार के गुण बताएँ हैं। शास्त्र में सांकेतिक रुप से विषय को अभिव्यक्त करने की परम्परा है। जो बात जहाँ नहीं कहना है, उसे वहाँ सांकेतिक रुप से अभिव्यक्त कर, अन्य स्थान पर जहाँ उसका संबंध कम हो, उसे पूरी तरह से अभिव्यक्त कर देने की परम्परा रही है। ऐसा इसलिए किया जाता था कि जो पात्र होगा, वह उसे ग्रहण कर उसका अर्थ लेकर प्रयोग कर लेगा। इसीलिए भूमि के रंग, गन्ध, स्वाद, आकार आदि के माध्यम से रंग, गन्ध, स्वाद, आकार आदि के गुण बताएँ हैं।

४.६ नगर नियोजन

४.६.१ नगर के प्रकार व मान

सबसे पहले नगर के मान का वर्णन है, उसके पश्चात् लम्बाई व चौड़ाई का अनुपात बताया है:-

सारणी-४.७ नगर के प्रकार व मान

[१]नगर	धनुष	हस्त	फीट
बड़ा	४०००	१६०००	३२०००
मध्यम	२०००	८०००	१६०००
छोटा	१०००	४०००	८०००

नगर की लम्बाई, चौड़ाई से आठ भाग अधिक या सवाई या डेढ या चौड़ाई के समान होती है। उसे चौकोर (?) करना चाहिए।

लम्बाई = चौड़ाई या (१ + १/८) चौड़ाई आदि

४.६.२ पदविन्यास व मार्ग

नगर के लिए ६४ पद वास्तु का प्रयोग कर ६ मुख्य मार्ग तथा ९ चौराहे बनवाना चाहिए। मध्यम वंश का सहारा लेकर शुभ **राजमार्ग** को बनवाना चाहिए। मार्ग का निर्माण वंश पर करना चाहिए, ताकि वे खुले रहें।

सारणी-४.८ राजमार्ग

राजमार्ग	हस्त	फीट
बड़ा	२४	४८
मध्यम	२०	२०
छोटा	१६	३२

---

[१] ज्येष्ठं तत्र चतुश्चापसहस्रं पुरमिष्यते।
मध्यं द्वाभ्यां सहस्राभ्यामेकेन व्यासतोऽधमम्।।२।।१०

[२] साष्टमांशं सपादं वा सार्धं वा व्यासमायतम्।
कुर्यादेकैकमायामं चतुरास्त्रीकृतं शुभम्।।३।।१०
चतुःषष्टिपदाख्येन पुरं सर्वं प्रकल्पयेत्।
द्विरष्टकोष्टं तत् कुर्यात् षट्पथं नवचत्वरम्।।४।।१०
राजमार्गः शुभः कार्यो मध्यमं वंशमाश्रितः।।६।।१०

सारणी-४.९ महारथ्या

महारथ्या	हस्त
बड़ा	१२
मध्यम	१०
छोटा	८

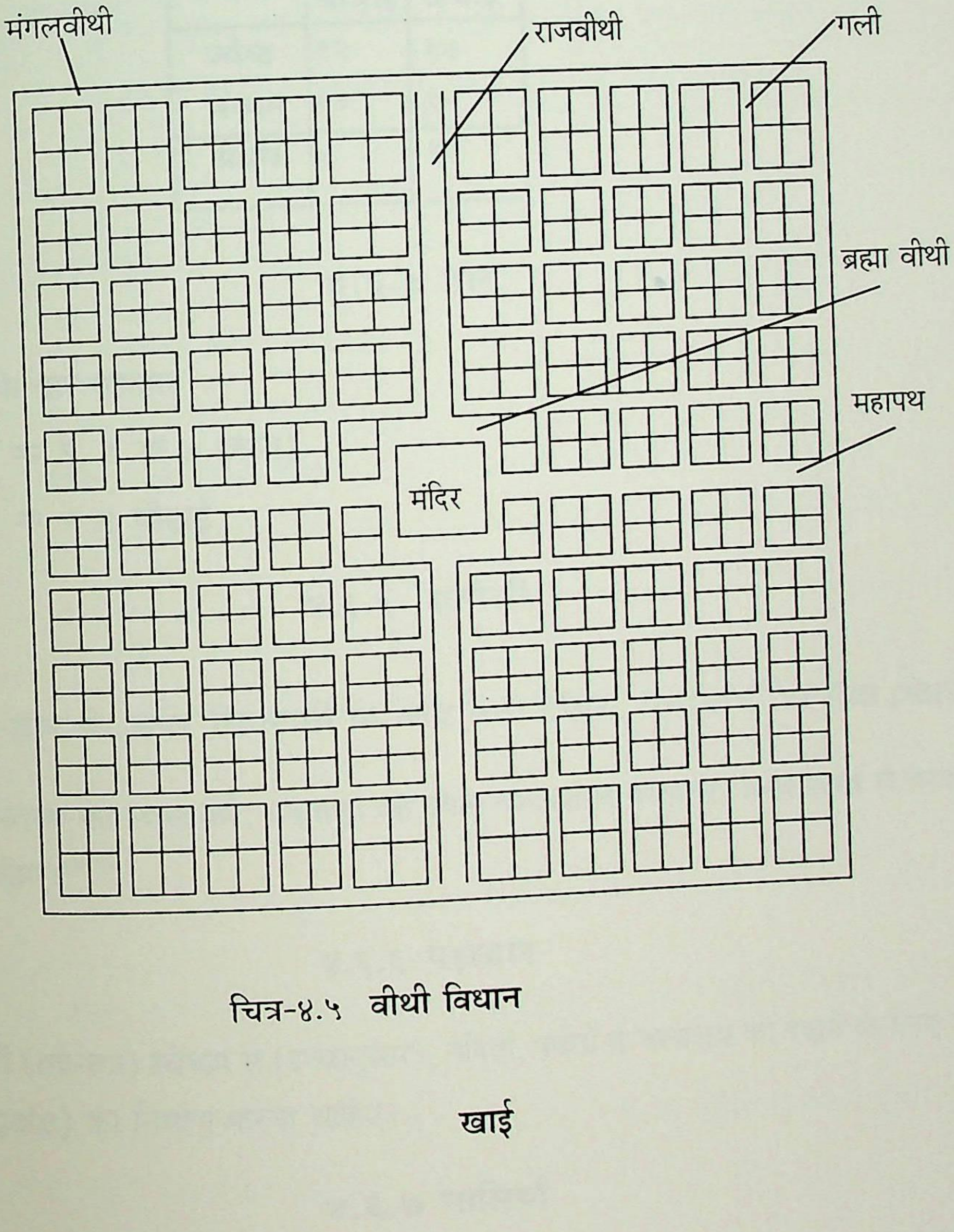
मंगलवीथी
राजवीथी
गली
ब्रह्मा वीथी
महापथ
मंदिर

चित्र-४.५ वीथी विधान

खाई

सारणी-४.१० फुटपाथ

नगर	हस्त
ज्येष्ठ नगर	तीन हस्त
मध्यम पुर	ढाई हस्त
छोटे पुर	दो हस्त

नगर के बाहर चारों ओर महारथ्या की चौड़ाई के बराबर खाई बनवाना चाहिए।। उन खाइयों को पेड़ों, लताओं व काँटों से ढक देना चाहिए।[२४/१०]

४.६.३ प्राकार

नगर की बाहरी सीमा पर दीवार बनवाकर उस पर प्राकार बनवाना चाहिए।

सारणी-४.११ प्राकार के मान

	चौड़ाई	ऊँचाई
ज्येष्ठ	१२	१७
मध्यम	१०	१५
अधम	८	१३

४.६.४ द्वार

राजमार्ग के चार महाद्वार

चौड़ाई = ९, ८ या ७ (हस्त)

ऊँचाई = २ x चौड़ाई

४.६.५ प्रतोली

प्रतोली-द्वार के ऊपर निगरानी के लिए बना टॉवर, turrent on the parapet

उस पर स्तम्भ का न्यास करें, बनवाए। वह स्थान व्यालजाल, शतघ्न्य, अस्त्र-शस्त्र व यन्त्र आदि से युक्त होना चाहिए।[४६/१०]

४.६.६ पक्षद्वार

वहाँ-वहाँ (तत्र-तत्र) स्वेच्छा से (इच्छानुसार), नदियों, पर्वतों व जलाशय को देखने के लिए उपयुक्त पक्षद्वार (sidegate) का निर्माण करना चाहिए।

४.६.७ नालियाँ

पत्थरों व लकड़ियों से आच्छादित (ढके हुए) नालियाँ, दो या एक हस्त की परिमाण की, उसमें जल प्रदक्षिण हो।

सन्न्यस्तस्तम्भवेद्यन्यदूर्ध्वं तस्योपकल्पयेत्।
व्यालजालशतघ्न्यस्त्रशस्त्रयन्त्रादिभिर्युतम्।।४६।।१०

४.६.८ अशुभ आकार में निवास करने का परिणाम

अतः शास्त्रज्ञ स्थपति को प्रयत्नपूर्वक बुद्धि से पहले बताए अनुसार सुन्दर नगर की स्थापना करना चाहिए।[६९]

सारणी-४.१२ अशुभ आकार में निवास करने का परिणाम

छिन्नकर्ण	चोर, बीमारी तथा शत्रुओं से भय
विकर्ण	दुष्ट राजा, सर्वलोकनिन्दित व सन्तानहीनता) तथा कम आयु
वज्र	स्त्री से पराजय, विषरोग व अनेक प्रकार के भेदों का भय
सूचीमुख	भूख व बीमारी से पीड़ित रहते हुए नाश
गोल	राजा के साथ नष्ट, सारा संचय नष्ट तथा अल्प आयु वाले
पंखे के समान	झूठ बोलने वाले, कम आयु के, पवन से पीड़ित तथा चंचल मन वाले
धनुष	दुश्चरित्र स्त्रियों से युक्त तथा नपुंसक
गाड़ी के समान	प्रजा को रोग, शोक, अग्नि व चोर का भय
द्विगुणायत संस्थान	असफलता, ब्राह्मणों के लिए भयदायक, लोगों में स्ववर्ग व कुटुम्बियों में झगड़ा, पुरवासियों, राजा, हाथी, घोड़ों का नाश होता है, ऐसे नगर को बलशाली शत्रु हमला करके उसका उपयोग करते हैं।
दिङ्मूढ	लोग का नाश, अग्नि से जलना तथा स्त्रीकृत भय
भुजंगकुटिल	अस्त्र, वायु, पिशाच, अग्नि, भूत, यक्ष आदि से भय से दुखी रहते हैं तथा रोगो से पीड़ित होकर नष्ट

४.६.९ नगर शान्ति

वेदी-निवेश, यात्रा, मन्दिर के निर्माण, अभिचार (मंत्रादि द्वारा), नदीकर्म, मित्रता तथा श्रम में शान्तिकर्म करना चाहिए।[७०/१०]

जिस नगर में मर्म पर स्थित देवता सदा पूजित रहते हैं तथा नगर के चौराहे भी (इसी प्रकार) पूजित रहते हैं, उस नगर में शान्ति का राज्य होता है।

४.६.१० नगर-नियोजन

नगर की मुख, सम्पूर्ण अङ्गों से सुशोभित, प्रत्येक द्वार पर सौम्यमुखौ (सुन्दर मुख, उत्तर की ओर मुख) लक्ष्मी व कुबेर की स्थापना करना चाहिए।

---

[६९] शास्त्रज्ञः स्थपतिस्तस्मात् प्रयत्नपरया धिया।
यथावत् कथितं चारु नगरं विनिवेशयेत्।।६९।।

सारणी-४.१४ नगर-नियोजन

आग्नेय कोण	सैनिक, स्वर्णकार तथा अग्नि से आजीविका चलाने वाले व अन्य के घर
दक्षिण दिशा	वैश्य, जुवारी, गाड़ी वाले, नट, नर्त्तक के घर
नैर्ऋत्य दिशा	सूकर, भेड़ से आजीविका करने वाले, बहेलिया, मल्लाह तथा दंड़ाधिकारी
पश्चिम	रथ व अस्त्र-शस्त्र बनाने में निपुण के घर
वायव्य	नौकर तथा शराब बेचने वालों के घर
उत्तर दिशा	यति, ब्रह्मज्ञानियों की सभा, प्याऊ तथा धर्मशाला
ईशान	घी, फल बेचने वाले
पूर्व	बलाध्यक्ष, राजा के मुखिया लोग
आग्नेय कोण	सैनिक
दक्षिण दिशा	श्रेष्ठियों तथा देश के उच्च लोग
नैर्ऋत्य	एक समय भोजन ग्रहण करने वालो
पश्चिम दिशा	कोशपाल, महामात्र, आदेशिकों तथा कलाकारों एवं निर्यामक
वायव्य	नायकों के सहित दण्डनाथ
उत्तर	पुरोहित, ज्योतिषियों

राष्ट्रं खेटमथ ग्रामं पश्यन्तेतपुरं महत्।
तत्रारोग्यार्थसंसिद्धी प्रजाविजयमादिशेत्।।१०५।।

राष्ट्र, खेट, ग्राम व पुर आदि को जब ये दोनों देखते हैं, तो वहाँ पर आरोग्य, अर्थसिद्धि व प्रजा की विजय होती है।

क्लेशबन्धवधैर्लोकाः स्युर्मिथः सूत्रहिंसकाः।
ग्रामं खेटं पुरं राष्ट्रं यदेतौ नैव पश्यतः।।१०६।।

जिस ग्राम, खेट, पुर, राष्ट्र को ये देवता नहीं देखते हैं वहाँ क्लेश, बन्धन, वध आदि अनर्थों से लोग आक्रान्त रहते हैं।

४.६.११ नगर के अन्दर स्थित मन्दिर

स्वामी कार्तिकेय के एक से अधिक मन्दिर होने पर सेनाध्यक्ष व सेना के लिए निश्चित रूप से पीड़ादायक होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि एक से अधिक मंदिर होने पर उस मंदिर से संबंधित व्यक्तियों के आपस में विभाजित होने की आशंका रहती है। जिससे उनमें गुट (अलग समूह) बन सकते हैं।

इस प्रकार से हमनें यह देखा कि समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार के नगर, उनके विभिन्न मान तथा उन्हें नियोजित करने की विधि को जाना। नगर में ६४ पद वास्तु का विन्यास करना, मर्म स्थान पर चौराहे बनाना। नगर की सीमा पर परकोटे का निर्माण कर सुरक्षा हेतु दीवार पर प्रतोली तथा दीवार के बाहर खाइयों का निर्माण करना यथास्थान प्रवेश द्वार बनाना एवं विभिन्न मार्गों को जानना तथा पद के अनुसार उसके उपयोग को भी समझा।

मुख्य मार्ग उत्तर-दक्षिण तथा आश्रित मार्ग पूर्व-पश्चिम बनाए जाते हैं।

यह भी देखा कि उग्र देवताओं के मंदिर का निर्माण बाहर तथा उनका मुख भी बाहर की और होता है सौम्य देवता के मंदिर नगर के भीतर तथा मध्य के ओर मुख किये होते हैं।

इस प्रकार से नगर नियोजन करने पर नगरवासी सुख व समृद्धि को प्राप्त कर उत्तरोतर वृद्धि करते है।

४.७ राजनिवेश

पुर में चौंसठ पद का वास्तु विन्यास करना चाहिए।[१/१ः] उसके आश्रय में परिखा (प्रतिकूप, खाई, नगर या किले के चारों और बनी नाली या खात), परकोटा (प्राचीर, चहारदीवारी), नगर का प्रवेश द्वार तथा अट्टालक (watch towers, अटारी, छत के ऊपर बना कमरा) बनवाना चाहिए।

उचित प्रकार से विभाग (विभाजित करके) करके रास्ते, चौराहे बनवाना चाहिए। क्रम से अन्दर व बाहर देवता के मन्दिर बनवाकर स्थापना करना चाहिए।[२/१ः]

उत्तर-पूर्व या पूर्व या (उत्तर) दिशा में झुकी हुई भूमि हो। मित्र पद में स्थित होने पर यश, श्री, विजय देने वाली होती है।[३/१ः]

४.७.१ नगर में राजमहल का स्थान

नगर के मध्य से पश्चिम की ओर	राजा का महल
पश्चिम दिशा	राजा का महल
विवस्वत	राजा का महल
भूधर	राजा का महल
आर्यमा	राजा का महल
मित्र	राजा का महल

४.७.२ द्वार

महेन्द्र	शुभ द्वार
गृहक्षत	शुभ द्वार
भल्लाट	शुभ द्वार

राजा की इच्छानुसार शुभलक्षणों से युक्त श्रीवृक्ष, सर्वतोभद्र, मुक्तकोण राजमहल का निर्माण करवाएँ।

कृते पुरनिवेशेऽथ चतुषष्टिपदाश्रये। नियुक्तपरिखासालगोपुराट्टालकेऽपि च ।।१।।
विभक्तरथ्ये परितः प्रविभाजितचत्वरे। क्रमादन्तर्बहिः क्लृप्तदेवतायतनस्थितौ।।२।।
प्रागुदक्प्रवणे देशे प्राग्द्वाराभ्युन्नतेऽथवा। यशःश्रीविजयाधायि मैत्रं पदमधिष्ठितम्।।३।।

सारणी-४.१५ पद एवं उनके उपयोग

पद	स्थान
सत्य	धर्माधिकरण, व्यवहार निरीक्षण
भृश	भण्डार-गृह
अन्तरिक्ष	मृग व पक्षियों
पूषण	सभाजन तथा भोजन
सावित्र	वाद्यशाला
सवित्र	वन्दना करने वाले
वितथ	चर्म तथा उसके योग्य अन्य आयुध
गृहक्षत	सुनार
यम	गुप्ति व कोष्ठागार (a prison or confinement)
गन्धर्व	प्रेक्षा-गृह तथा संगीत व निवास
विवस्वत	रथ व हाथी
सुग्रीव	अन्तःपुर
भृङ्गराज	खेलने का स्थान, झूला व कुमारी का भवन
मृग	अन्तःपुर
पितृ	शौचालय
इन्द्र	राजा की स्त्री
सुग्रीव	अरिष्टार
पुष्पदन्त	यन्त्र से युक्त फूलों का घऱ
वरुण	वापी व पान गृह
असुर	कोष्ठागार तथा
शोष	आयुध-गृह
रुद्र	भाण्डागार

सारणी-४.१५ पद एवं उनके उपयोग

पद	स्थान
पापयक्ष्मा	ओखली व चक्की
राजयक्ष्मा	लकड़ी का कार्य
रोग	औषधी
नाग	हाथी का स्थान
मुख्य	व्यायाम-गृह, नाटक-कक्ष तथा चित्र-गृह
भल्लाट	गाय व दूध का स्थान
सोम	पुरोहित, राजा का अभिषेक, दान, अध्ययन व शान्ति
भूधर	चामर व छत्र
महीधर	घुड़शाल
चरक	राज-पुत्रों के घर व विद्यालय
राजमाता	अदिति, पालकी व शय्यासनगृह बनवाएँ।
आप	हाथियों की शाला बनवाएँ।
आपवत्स	हंस, क्रौञ्च व सारस पक्षियों के कूजन
दिति	काका, मामा
ईशान	मन्दिर
पर्जन्य	ज्योतिषी के घर
जयन्त	सेनापति
आग्नेय कोण	शस्त्रकार्यशाला व शस्त्र का स्थान
ब्रह्मस्थान	इन्द्रध्वज

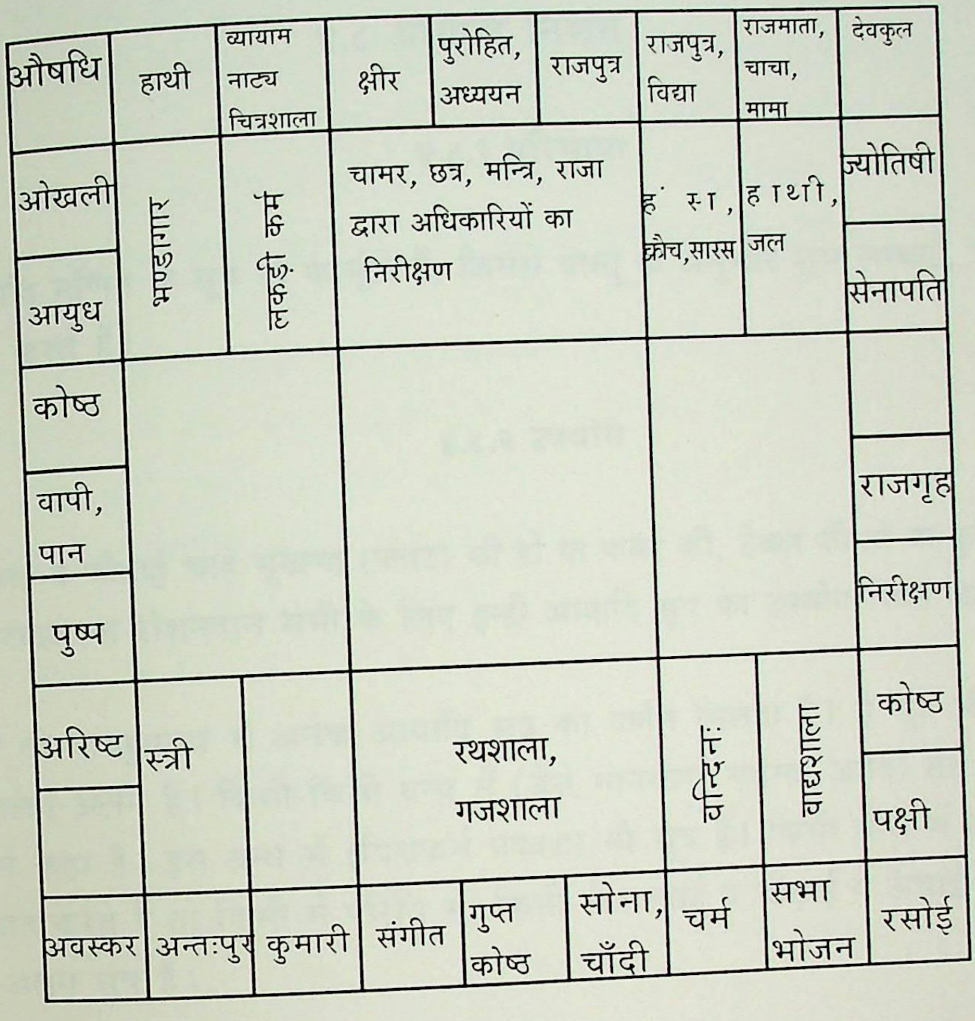
औषधि
हाथी
व्यायाम नाट्य चित्रशाला
क्षीर
पुरोहित, अध्ययन
राजपुत्र
राजपुत्र, विद्या
राजमाता, चाचा, मामा
देवकुल
ओखली
आयुध
भण्डागार
लकड़ी कर्म
चामर, छत्र, मन्त्रि, राजा द्वारा अधिकारियों का निरीक्षण
हंसा, क्रौंच,सारस
हाथी, जल
ज्योतिषी
सेनापति
कोष्ठ
राजगृह
वापी, पान
निरीक्षण
पुष्प
अरिष्ट
स्त्री
रथशाला, गजशाला
वन्दिनः
वाद्यशाला
कोष्ठ
पक्षी
अवस्कर
अन्तःपुर
कुमारी
संगीत
गुप्त कोष्ठ
सोना, चाँदी
चर्म
सभा भोजन
रसोई

राजा भोज द्वारा रचित इस ग्रन्थ में राजमहल के स्थान तथा नियोजन को बताया है, नगर के जिस भाग (पद) में जिस प्रकार की ऊर्जा होती है, उसके अनुरुप वहाँ कक्ष बनवाना चाहिए। वास्तु पदविन्यास में जो ४५ देवता हैं वे अलग-अलग ऊर्जा को प्रदर्शित करते हैं, उदाः के लिए पश्चिम मध्यम में वरुण देवता का स्थान है। वरुण देवता जल के स्वामी है अतः उस स्थान पर जलाशय आदि बनवाना चाहिए।

इसी प्रकार अग्निपद में अग्नि से सबंधित ऊर्जा हैं, अतः कहा है कि वहाँ रसोई बनवाना चाहिए इसी प्रकार अन्य पदों को जानना चाहिए।

४.८ आयादि निर्णय

४.८.१ परिभाषा

आयादि गणित के सूत्र या फार्मूले हैं, जिससे वास्तु के अनुसार शुभ लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई ज्ञात करते हैं।

४.८.२ उपयोग

लम्बाई व चौड़ाई चाहे भूखण्ड (प्लाट) की हो या कमरे की, टेबल की हो या कुर्सी की या खिड़की, दरवाजे या रोशनदान सभी के लिए इन्हीं आयादि सूत्र का उपयोग किया जाता है।

वैसे तो वास्तुशास्त्र में अनेक आयादि सूत्र का वर्णन मिलता है। ये सूत्र भी ग्रन्थ के अनुसार अलग-अलग हैं। किसी-किसी ग्रन्थ में (जैसे मानसार, मयमत आदि) छह सूत्र हैं तो इन्हें षड्वर्ग कहा हैं। इस ग्रन्थ में (विश्वकर्म प्रकाश) नौ सूत्र हैं। किसी ग्रन्थ में क्षेत्रफल से आयादि ज्ञात करते हैं तो किसी में परिधि से, किसी में लम्बाई व चौड़ाई व ऊँचाई ज्ञात करने के अलग-अलग सूत्र हैं।

४.८.३ इकाई

लम्बाई व चौड़ाई नापने के लिए हम आजकल फीट या इंच का प्रयोग करते हैं। वास्तुशास्त्र में नापने के लिए जिस इकाई का उपयोग किया जाता है वह है हस्त व अंगुल।

४.८.४ हस्त व अंगुल के उपयोग का महत्व

जैसे किसी व्यक्ति के लिए, कोई वस्त्र का निर्माण करते हैं, जैसे पेन्ट, शर्ट इत्यादि, तो वह पेन्ट, शर्ट का नाप या आकार अलग-अलग होता है। अतः उसके शर्ट, पेन्ट आदि का नाप भी अलग होता है।

जब हम किसी व्यक्ति के लिए घर बनवाते हैं तो उसके उपयोग में आने वाली वस्तुएँ भी उस व्यक्ति के नाप के अनुसार होना चाहिए। जैसे एक व्यक्ति जेसलमेर, बाड़मेर आदि क्षेत्र में रहने वाला है, उसकी ऊँचाई या उसके शरीर की लम्बाई साढ़े छह फीट है, दूसरा व्यक्ति लद्दाख क्षेत्र का है, पहाड़ी क्षेत्र का है, जिसकी लम्बाई या जिसके शरीर की लम्बाई सामान्यतः पांच या साढ़े पांच फीट है। इस प्रकार दोनों व्यक्तियों के घर बनवाते समय हमें ध्यान रखना होगा कि उसके शरीर का क्या मान है? जेसलमेर वाले व्यक्ति के लिए पलंग

करीब सात फीट का बनेगा, जबकि लद्दाख क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति का पलंग लगभग साढ़े पांच या छह फीट का बनेगा। इसी प्रकार उनके बैठने के लिए जो कुर्सी होगी उसकी ऊँचाई भी अलग-अलग होगी। इसलिए वास्तु में व्यक्ति के शरीर के नाप के अनुपात में गृह का निर्माण किया जाता है। इससे घर तथा व्यक्ति के बीच में सामञ्जस्य स्थापित होता है। व्यक्ति के शरीर के जिस अंग के अनुपात में निर्माण किया जाता है वह है हाथ या हस्त। छोटे माप के लिए जिस इकाई का प्रयोग करते हैं वह है अंगुल। एक हस्त में चौबीस अंगुल होते हैं।

मान दण्ड में लेना चाहिए। (१३/२६) मान को उचित करने के लिए हस्त का प्रयोग कर सकते हैं। यदि दण्ड में मान अशुभ हो तो शुभ करने के लिए हस्त मान लेकर प्रयोग करना चाहिए। १५/२६) इसी प्रकार शुभ करने के लिए अंगुल आदि का प्रयोग भी कर सकते हैं। लम्बाई में चौड़ाई का गुणाकर आठ से भाग देने पर जो शेष रहता है, उसे आय कहते हैं। जो इस प्रकार हैः-वृष , सिंह गज ध्वजाएँ प्रासादों, पुरों (नगर, शहर) एवं वेश्मों (गृहों) में मंगलकारी कही गई हैं।

सारणी-४.१६ शेषफल, आय एवं परिणाम

शेषफल	आय	परिणाम
१	ध्वज	अर्थलाभ
२	धूम	सन्ताप
३	सिंह	भोग
४	श्वान	झगड़ा
५	वृष	धन और धान्य
६	खर	स्त्री-दूषण
७	गज	मंगल
८	ध्वांक्ष	मरण

इन आयादि सूत्रों के माध्यम से हम उचित लंबाई व चौड़ाइ का प्रयोग कर कक्ष के उपयोग का निर्धारण कर सकते हैं।

नगरे वा पुरादौ वा दण्डैर्मानं विधीयते।।१३।।२६
यत्र हस्तैर्मिति क्षेत्रे तत्रायो हस्तसंश्रितः।।१४।।२६
अङ्गुलैस्तु मिते क्षेत्रे सोऽङ्गुलैस्तदलाभतः।।१५।।

४.९ गृहद्रव्यप्रमाणानि

४.९.१ मध्यम द्वार का मान

मध्यम प्रकार के घरों (द्वार) में तीन राशिओं के अंश से बारह अंश तक छोड़ देना चाहिए।[१]

द्वार की ऊँचाई = १/३ (घर की ऊँचाई)

द्वार की ऊँचाई = (१/४) (घर की ऊँचाई)

द्वार की ऊँचाई = (१/५) (घर की ऊँचाई)

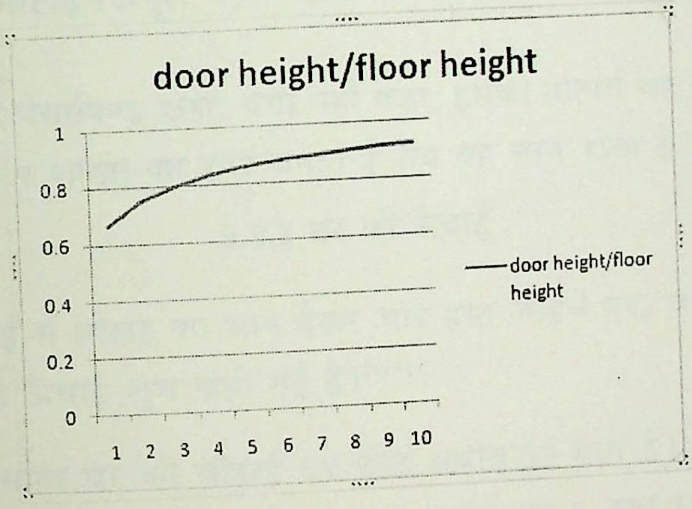

विश्लेषण मध्यम प्रकार के लिए कहा कि घर की जितनी ऊँचाई हो उसमें से ऊँचाई का तीसरा भाग से बारहवें भाग तक कोई भी भाग तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ आदि कम कर देना, इस प्रकार जो मान प्राप्त हो, उतनी द्वार की ऊँचाई होती है। जैसे घर की ऊँचाई है १२ फीट तो इसका एक तिहाई (१२/३ अर्थात् ४ फीट) कम किया (१२-४), तो ८ फीट आया। यह द्वार की ऊँचाई है।

इसी श्लोक में कहा कि द्वार की ऊँचाई, घर की ऊँचाई (मंजिल की ऊँचाई) में से तीसरे भाग से बारहवें भाग तक कम करते हैं।

अब जैसे बारहवाँ भाग कम की तो (१२/१२) अर्थात् १ फीट कम किया तो आया (१२-१) ११ फीट यह द्वार की अधिकतम ऊँचाई हुई, जब घर की ऊँचाई १२ हो।

इससे यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि जब मंजिल की ऊँचाई १२ फीट हो तो द्वार की ऊँचाई ८ फीट से ११ फीट के मध्य हो सकती है या होती है।

---

[१] त्रैराशिकेन मध्यानां द्वादशाशं परित्यजेत्।।३।।

४.९.२ चौखट

द्वार की ऊँचाई जितने हस्त हो, उतने अंगुल में चार जोड़ने पर **पेद्यापिण्ड (चौखट)** का मान होता है। उसकी चौड़ाई सवा गुना, डेढ़ गुना, पौने दो गुना या दो गुना हो सकती है। इससे अधिक नहीं होना चाहिए। इससे अधिक मान होने पर स्फुट (बहुत ज्यादा, फटना) हो जाता है।[८-९]

विश्लेषणः-जैसे द्वार की ऊँचाई ८ फीट अर्थात् ४ हस्त हो, तो उतने अंगुल अर्थात् ४ अंगुल में चार जोड़ देने पर ८ अंगुल द्वार की चौखट की लकड़ी की मोटाई का मान होता है। चौखट की चौड़ाई का मान मोटाई से सवा गुने से दुगने तक होता है। इसमें यह मान ८ का सवा गुना (१० अंगुल) से दो गुना (१६ अंगुल) तक होगा।

द्वार की चौखट की मोटाई (अंगुल में) = द्वार की ऊँचाई (हस्त में) + ४

पेद्यापिण्ड-यहाँ पेद्यापिण्ड कहा, पेद्या नहीं कहा, इसका तात्पर्य यह है यह पिण्ड है, समूह है, जब ७ शाखा या ९ शाखा का द्वार बनाते हैं तब यह मान होता है।

४.९.३ घर की ऊँचाई

घर की चौड़ाई में सोलह का भाग देकर चार हस्त जोड़ने पर, घर की ऊँचाई का मान प्राप्त होता है। उतनी ऊँचाई शुभ कही गई है।[१६/२८]

विश्लेषणः- माना घर की चौड़ाई ६४ फीट अर्थात् ३२ हस्त है। अब ३२ में सोलह का भाग दिया, २ आया। इसमें ४ जोड़ा तो ६ हस्त आया। यह ६ हस्त (१२ फीट), मंजिल की ऊँचाई है।

ज्येष्ठ घर की ऊँचाई (भवन की चौड़ाई के सोलहवें अंश में) सात हस्त (१४ फीट) जोड़कर, मध्यम की ऊँचाई (भवन की चौड़ाई के सोलहवें अंश में) छह हस्त (१२ फीट) जोड़कर, छोटे घर की ऊँचाई (भवन की चौड़ाई के सोलहवें अंश में) पाँच हस्त (१० फीट) जोड़कर कही गई है।[१७/२८]

[८-९] द्वारोच्छ्रायकरैस्तुल्येष्वङ्गुलेषु विनिक्षिपेत्।
चत्वारि पेद्यापिण्डः स्यात् सपादं विदधीत तम्।।८।।
सार्धं वा सत्रिभागं वा द्विगुणं चाधिकं न तु।
एवं कृते भवेद् द्वारपेद्याया विस्तृतिः स्फुटा।।९।।
विस्तारात् षोडशो भागश्चतुर्हस्तसमन्वितः।
तलोच्छ्रयः प्रशस्तोऽयं भवेद् विदितवेश्मनाम्।।१६।।
सप्तहस्तो भवेज्ज्येष्ठे मध्यमे षट्करोन्मितः।
पञ्चहस्तः कनिष्ठे तु विधातव्यस्तथोदयः।।१७।।

भवन	शाला (हस्त)	फीट[१८/२८]
ज्येष्ठ	१७	३४
मध्यम	१०	२०
छोटे	५	१०

४.९.४ स्तम्भ का मान

स्तम्भ की कोटि = (१/४) द्वार की चौड़ाई[२६/२८]

सारणी-४.१७ स्तभं के नाम एवं उनके लक्षण

नाम	आकार	कोण	जंघा की ऊँचाई
पद्मक	कमल के समान	-	डेढ़ भाग
घट पल्लव	घटिका के समान	आठ कोण	-
कुबेर स्तम्भ	-	सोलह कोण	चौकोर
श्रीधर	गोल		

४.९.५ उत्कालक आदि अंग

स्तम्भ के ऊपर तुला (बीम) आदि विभिन्न अंग होते हैं। ये अंग, छत का भार, स्तम्भ पर स्थानान्तरित करते हैं। इन्हें प्रस्तर आदि भी कहते हैं (मानसार अध्याय १६)। इस रचना को विभिन्न आकृतियों से सजाने का विधान भी शास्त्र में बताया गया है।

उत्कालक (upper block or architrave style or the main beam resting on the abacus on capital of column) की ऊँचाई, स्तम्भपिण्ड के बराबर शुभ कही गई है। कुम्भिका, उत्कालक के समान पिण्ड में होती है, परन्तु उसकी चौड़ाई आठ अंश से युक्त होती है।[२४/२८]

[१८/२८] ज्येष्ठे भवेत् सप्तदशहस्ताच्छाला प्रविस्तृता।
मध्यमे दशहस्तात् तु पञ्चहस्तात् कनीयसि।।१८।।

[२४/२८] उत्कालकसमुछ्रायः स्तम्भपिण्डसमः शुभः।
कुम्भिकोत्कालवत् पिण्डे विस्तारेऽष्टांशसम्मिता।।२४।।

[२६/२८] द्वारविस्तारपादेन स्तम्भकोटिर्विधीयते।

[३४/२८] स्तम्भमूलस्य विस्तृत्या तलपद(ट्ट)स्य विस्तृतिः।
सपादया विधातव्या बाहुल्यं पादहीनया।।३४।।

कुम्भिका की चौड़ाई आठ अंश से युक्त होती है का तात्पर्य है कि १/८ भाग अधिक होती है।

४.९.६ स्तम्भ तलपट्ट

तलपट्ट की चौड़ाई = स्तम्भ मूल की चौड़ाई के बराबर होती है।

तलपट्ट की मोटाई = .75 or 1.25 (तलपट्ट की चौड़ाई) (३४/२८)

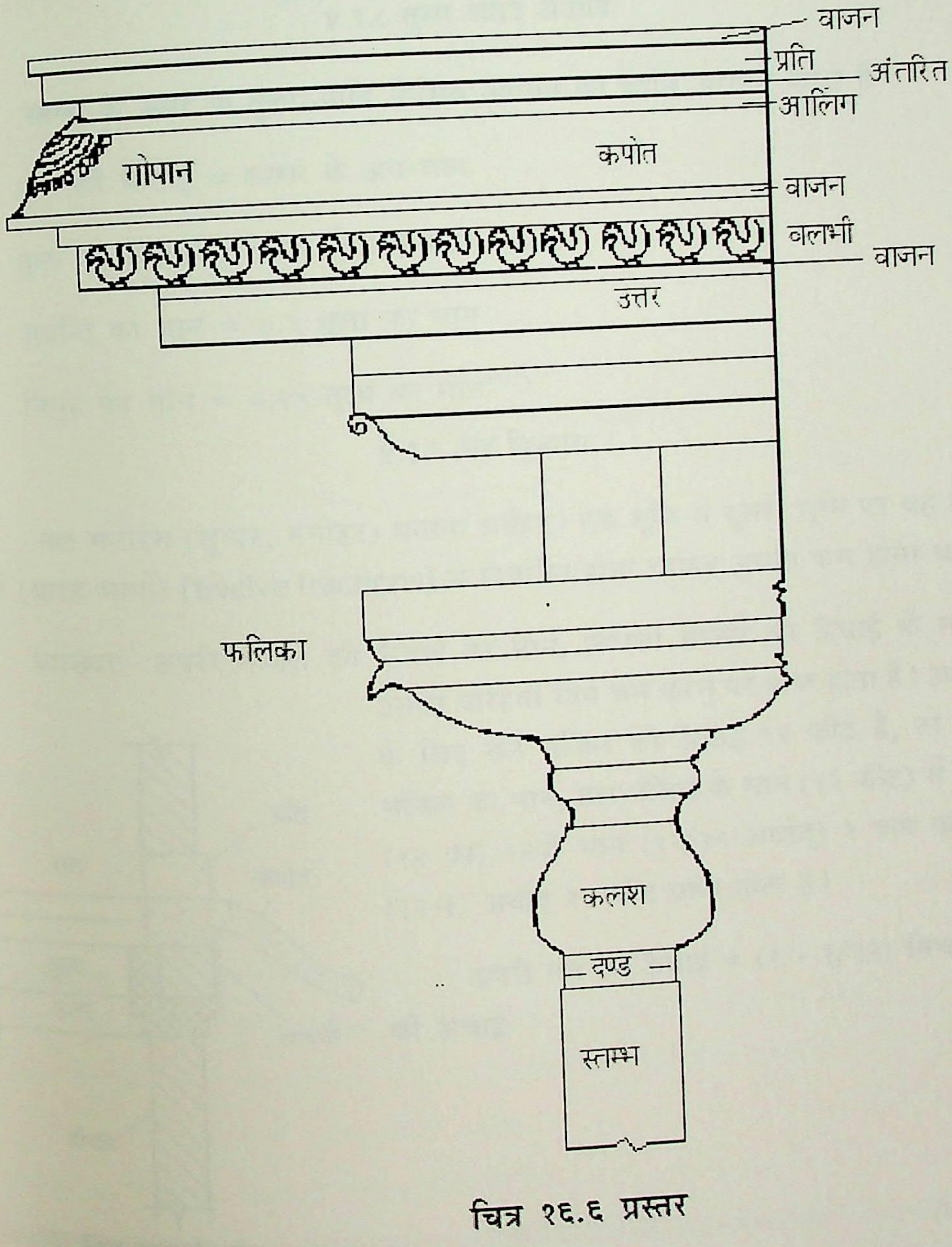

वाजन
प्रति
अंतरित
आलिंग
गोपान
कपोत
वाजन
वलभी
वाजन
उत्तर
फलिका
कलश
दण्ड
स्तम्भ

चित्र २६.६ प्रस्तर

[३५/२८] स्तम्भेन तुल्यं विस्तारे बाहुल्ये पदसम्मितम्।
हीरग्रहणमायामे स्तम्भाग्रात् त्रिगुणं भवेत्।।३५।।

४.९.७ हीरग्रहण आदि अंग व स्तम्भ भूषण

हीरग्रहण की चौड़ाई = स्तम्भ की चौड़ाई

हीरग्रहण की मोटाई = १.२५ (स्तम्भ की चौड़ाई)

हीरग्रहण की लम्बाई = 3 स्तम्भ का अग्र [३५/२८]

व्याख्याः- हीरग्रहण का तात्पर्य बोधिका, फलकासन आदि से हो सकता है।

४.९.८ तुला आदि अवयव

स्तम्भ के ऊपर के तुला आदि विभिन्न अवयव का वर्णन आरम्भ करते हैं-

तुला की मोटाई = स्तम्भ के अग्र-भाग

तुला का विस्तार= स्तम्भ के अग्र-भाग

जयन्ति का मान = ०.५ तुला का मान

निर्यूह का मान = ०.२५ तुला का मान[४१/१६]

४.९.९ तल विन्यास

तल मनोरम (सुन्दर, मनोहर) बनाना चाहिए। एक भूमि से दूसरी भूमि पर वह द्वादश अंशों (बारह भागों) (twelve fractions) से विवर्जित होना चाहिए अर्थात कम होना चाहिए।

व्याख्याः- ऊपरी मंजिल की ऊँचाई का मान, निचली मंजिल की ऊँचाई के मान में उसका बारहवाँ भाग कम करने पर प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए तल मंजिल की ऊँचाई १२ फीट है, तो पहली मंजिल का मान, तल मंजिल के मान (१२ फीट) में उसका (१२ का) १२वाँ भाग (१२/१२ अर्थात्) १ कम करने से (१२-१) अर्थात् ११ फीट प्राप्त होता है।

ऊपरी तल की ऊँचाई = (१ - १/१२) निचले तल की ऊँचाई

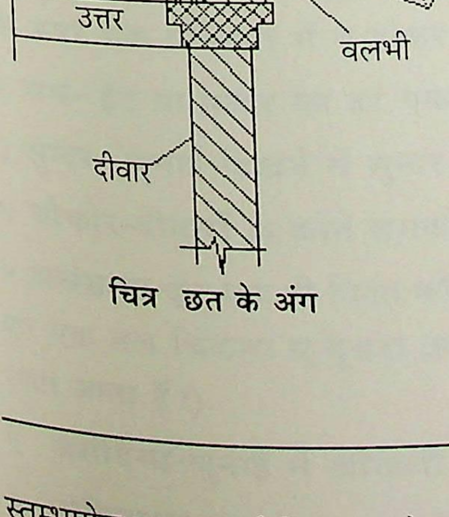

चित्र छत के अंग

स्तम्भाग्रेण समा कार्या विस्तारस्थौल्यतस्तुला।।४१।।१६

४.९.१० पीठमान

सारणी-४.१८ पीठमान

पीठमान	
वर्ण	पीठ का मान (अंगुल में)
ब्राह्मण	३६
क्षत्रिय	३२
वैश्य	२८
शूद्र	२४

पीठमान

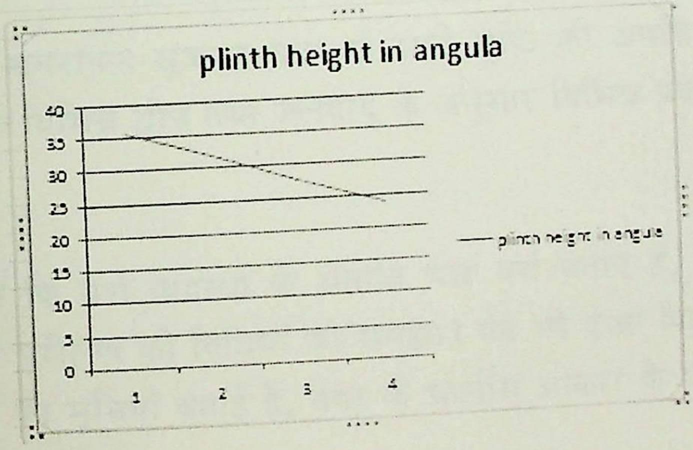

४.९.११ चुनाई के गुण

१ **सुविभक्त-** दीवार में ईंट या पत्थरों की संधि (जोड़) चौड़ी नहीं होना चाहिए तथा वे एक के ऊपर एक पक्तियों में न होकर संधि के ऊपर ईंट या पत्थर आने चाहिए।

२ **सम-** ईंट या पत्थर का हर एक थर (तह, परत) समतल होना चाहिए।

३ **सुन्दर-** चुनाई दिखने में सुन्दर होना चाहिए।

४ **चौकोर-**दीवारों के कोने समकोण होना चाहिए।

५ **असंभ्रान्त-**ईंट एक ही दिशा की ओर रखी जाएँ, ऐसी चुनाई होना चाहिए। (सामान्य ईंट का एक तल चिकना व दूसरा तल खुरदुरा होती हैं,चुनाई करते समय चिकना भाग नीचे रखा जाता हैं।)

६ **असंदिग्ध-**चुनाई में खोखली जगह न रह पाए।

७ **अविनाश्य-**चुनाई मजबूत हो।

८ **अन्यबर्हित**-दीवार की मोटाई सब जगह समान हो। (बाहर की ओर निकली न हो)

९ **अनुत्तम** या अनुमत्त-ईंट उत्तम हों।

१० **अनुद्धत्त**-थर (परत) समतल हो। (अधिक उठा हुआ न हो)

११ **अकुब्ज**-चौड़ाई समान हो। (कुबड़ न निकला हो)

१२ **अपीड़ित**-चुनाई में पत्थर या लकड़ी के टुकड़े न हो।

१३ **समानखण्ड**-ईंट की मोटाई समान हो।

१४-१५ **ऋजुवन्त-अन्तरंग**-दीवार अन्दर व बाहर से सीधी हो।

१६ **सुपार्श्व**-बाजू दिखने में अच्छी हो।

१७ **सन्धिसुश्लिष्ट**-संधि एक ही चौड़ाई की हो।

१८ **सुप्रतिष्ठ**-ईंट को चूने में अच्छी तरह बैठा दिया गया है।

१९ **सुसंधि**-जोड़ पर बराबर चूना रखा हो।

२० **अजिह्म**-दीवार साहुल (सावल) में होना चाहिए। (जोड़ खुले)

उपसंहार

इस प्रकार से समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ में हमने सृष्टि की उत्पत्ति विभिन्न ग्रह नक्षत्र आदि की गति पृथ्वी के विभिन्न द्वीप तथा जलवायु के अनुसार विभिन्न प्रकार के व्यक्ति आदि को देखा।

हमने यह देखा कि वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत चार वर्ण बताए हैं, उनके अनुरुप भूमि चयन को जाना, भूमि परीक्षण की विधियों को समझा। यह भी देखा कि भूमि की प्रकृति के अनुसार सोलह प्रकार की भूमियाँ बताई हैं, नगर के चालीस आकार के माध्यम से आकार के गुण बताए है।

नगर निर्माण करते समय मर्म आदि को ध्यान में रखकर परकोटा, प्रवेश-द्वार, गोपुर एवं मार्ग का निर्माण करना तथा उनके मान को देखा। राजा भोज द्वारा विरचित इस ग्रन्थ में बताए गए मान-दण्ड आज भी समयोचित है।

इन्दौर नगर की संरचना का जब हम अध्ययन करते हैं, तो पाते हैं कि इन्दौर के आस-पास लगभग तीन सौ-चार सौ किलोमीटर तक अन्य कोई नगर इसके तुलना में विकसित नहीं हो पाया है।

इन्दौर के मुख्य मार्ग पूर्व-पश्चिम (जवाहर मार्ग, महात्मा गाँधी मार्ग) तथा अन्य आश्रित मार्ग (यशवंत निवास रोड़, जेल रोड़ आदि) उत्तर-दक्षिण हैं, नगर के मध्य में राजबाड़ा स्थित हैं, सामने उद्यान है जिसके चारों और ब्रह्म वीथी हैं। बाज़ार भी शास्त्र अनुकूल है।

नये मार्ग एम आर टेन आदि भी पूर्व-पश्चिम है तथा रिंग रोड़ जो कि शास्त्र में मंगल वीथी के नाम से बताया गया हैं वास्तु अनुरुप दृष्टिगोचर होता हैं।

नगर नियोजन के पश्चात् इस ग्रन्थ में निर्माण का क्रम विधि, पदार्थ, शाल भवन, चुनाई की विधि आदि को विस्तार से बताया गया हैं।

एक शाल, द्वि-शाल, त्रि-शाल तथा चतुःशाल गृहों का वर्णन तथा उनकी संज्ञा जो कि वास्तव में विशेषण हैं के साथ किया गया हैं। इनके संयोग से बनने वाले दस शाल भवनों की संख्या दस लाख अड़तालीस हजार पाँच सौ छियोत्तर होती हैं। नव शाल आदि गृहों की संख्या इसके अतिरिक्त हैं घरों की संख्या भेद व गुण का वर्णन अन्यत्र दुर्लभ हैं।

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार के पदविन्यास का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ में हमें वृत्त वास्तु का भी वर्णन मिलता है। इसमें बताया गया हैं कि वृत्त वास्तु का प्रयोग त्रिकोण, पंचकोण आदि आकारों के लिए किया जा सकता हैं। इस प्रकार का उल्लेख हमें सभी नियमित तथा अनियमित वास्तु आकार के पदविन्यास में उपयोगी हैं। इसके आधार पर हम किसी भी भूखंड या निर्मित क्षेत्र का पदविन्यास कर उसके मर्म स्थान याद कर सकते हैं। जैसा कि हम जानते हैं कि मर्म स्थान पर स्तंभ आदि का निर्माण नहीं करना चाहिए, अतः इन्हें जानकर उचित प्रकार से नियोजन किया जा सकता हैं।

समरांगण सूत्रधार के अध्याय इकत्तीस जो कि यंत्र विधानम है के अंतर्गत पंच महाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश) की सहायता से विभिन्न प्रकार के यान तथा यंत्र का वर्णन मिलता हैं।

महर्षि भारद्वाज द्वारा रचित यंत्र सर्वस्वम में सभी प्रकार के यंत्रों का वर्णन है। ऐसा माना जाता है कि प्रसिद्ध ग्रंथ विमान शास्त्र, यंत्र सर्वस्वम का ही एक भाग है। पारे का प्रयोग इंधन के रूप में किया गया है। इन ग्रंथों में अनेकानेक रहस्य से परिपूर्ण विधियों का वर्णन किया गया है। इस शोध प्रबंध में इस विषय को स्पर्श नहीं किया गया है अन्य शोधार्थी इस पर स्वतंत्र रूप से शोध कर पाएगें।

अध्याय ५

मयमत का अभियान्त्रिकी पक्ष

अध्याय ५ मयमत का अभियान्त्रिकी पक्ष

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
५.१	मयमत ग्रन्थ एक परिचय	४
५.२	वास्तु के प्रकार	५
५.२.१	भूमि	५
५.२.२	भूमि परीक्षा	६
५.२.३	भूपरिग्रह	६
५.२.४	मानोकरण	७
५.३	दिशा ज्ञान व पद विन्यास	९
५.३.१	पदविन्यास	११
५.३.१.१	उपपीठ पद विन्यास	१३
५.३.१.२	मण्डूक पदविन्यास	१३
५.३.२	बलिकर्मविधान	१५
५.४	नगर नियोजन	१६
५.४.१	नगर के मान	१६
५.४.२	दंड के अनुसार ग्राम के भेद	१६
५.४.३	आठ प्रकार के ग्राम	२०
५.४.४	मंदिर हेतु वर्जित स्थान	२१
५.४.५	गर्भ विन्यास	२४
५.४.६	मान के अनुसार नगर के भेद	२६
५.४.७	वप्र विधान	२७

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
५.४.८	नगर के प्रकार	२८
५.४.९	दुर्ग	३२
५.४.१०	भवन का मान दंड में	३७
५.४.११	साला के आकार	३७
५.४.१२	खाई	३७
५.४.१३	नगर की दीवार	३८
५.४.१४	छोटे महलों की योजना	३८
५.४.१५	परकोटा	३८
५.४.१६	तीसरा आवरण	४०
५.४.१७	पद	४०
५.४.१८	नगर प्रकार	४२
५.४.१९	वर्णानुसार गृह-निर्माण	४३
५.४.२०	वाट भित्ति विधान	४३
५.४.२१	द्वारमान	४४
५.५	नींव	४७
५.६	उपपीठ	५१
५.७	अधिष्ठान	५३
५.८	स्तम्भ	५७
५.९	द्वार	६४
५.१०	लेप व मसाले	६७

५.१ मयमत ग्रन्थ एक परिचय

मयमत ग्रन्थ की रचना मय मुनि द्वारा की गई है। इस ग्रन्थ में कुल ३६ अध्याय तथा लगभग ३३०० श्लोक हैं।

इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय का नाम **संग्रहाध्याय** है। इसमें १२ श्लोक हैं तथा पूरे ग्रन्थ के विभिन्न अध्यायों के नाम का उल्लेख किया गया है। दूसरा अध्याय **वस्तु के प्रकार**, तीसरा **भूमि-परीक्षा की विधि**, चौथा **भूमि अधिग्रहण** पाँचवाँ **मान के उपकरण** छठवाँ **शंकु स्थापन विधि** सातवाँ **देवताओं का पद-विन्यास**, आठवाँ **बलिकर्म** (देवताओं के लिए हवन) की विधि, अध्याय ९ **ग्राम आदि के विन्यास व लक्षण**, दसवाँ अध्याय **नगर के लक्षण**, ग्यारहवाँ **भूमिलम्ब विधान**, बारहवाँ **गर्भ-विन्यास विधान**, तेरहवाँ अध्याय **उपपीठ** (भवन आदि का आधार) की विधि, अध्याय १४ में **अधिष्ठान** (भवन के आधार, उपपीठ के ऊपर का भाग) के लक्षण का वर्णन है।

उसके पश्चात पन्द्रहवाँ अध्याय **स्तम्भ के लक्षण**, सोलहवाँ **प्रस्तर** (कॉलम के ऊपरी भाग का फैलाव) की विधि, सत्रहवाँ **सन्धिकर्म** (लकड़ी को जोड़ने की विधि) के विधान एवं अट्ठारहवाँ अध्याय में **शिखर के लक्षण** का वर्णन है।

उन्नीसवाँ अध्याय **एक भूमि** (मंज़िल) विधान, बीसवाँ **दो मंज़िल लक्षण**, इक्कीसवाँ **तीन तल** (मंज़िल) विधान, बावीसवाँ **चार मंज़िल आदि** (मंज़िल से अधिक ऊँचे भवन) के लक्षण, तेईसवाँ **परिवार** (देवताओं के परिवार) **विधान,** चौबीसवें अध्याय में **गोपुर** (मंदिर आदि का प्रवेश द्वार) का साल (Wall) सहित वर्णन है। पच्चीसवाँ अध्याय **मण्डप** आदि की विधि, छब्बीसवाँ **शालाओं के लक्षण**, सत्तावीसवाँ **चतुर्गृहविधानम्** (गृह-विन्यास की विधि) एवं अट्ठावीसवे अध्याय में **गृहप्रवेश** का वर्णन है। उसके पश्चात उन्तीसवाँ अध्याय **राज-वेश्म** (राजमहल) तथा तीसवाँ अध्याय **द्वार-विन्यास** विधि है।

इकतीसवाँ अध्याय **यान** (वाहन), बत्तीसवाँ **शयन** (फ़र्नीचर, पलंग इत्यादि) लक्षण, तैंतीसवाँ **लिंग लक्षण** तथा चौंतीसवाँ अध्याय **पीठ लक्षण** है। पैंतीसवाँ अध्याय सम्यग **अनुकर्म विधि** (जीर्णोद्धार) एवं छत्तीसवाँ अध्याय **प्रतिमा के लक्षण** है। यह सब संक्षेप में तथा यथाक्रम से वर्णित किया है।

५.२ वास्तु के प्रकार

अध्याय २ में वास्तु की परिभाषा बताई है कहा है कि सभी निर्माण को वास्तु कहा है। वास्तु के चार प्रकार भूमि, भवन, यान व शयन बताया है।

भूमि के संबंध में कहा है कि भूमि दो प्रकार की होती है-मुख्य व गौण। अन्य तीन भवन, यान व शयन का आधार भूमि होने के कारण सर्वाधिक महत्व भूमि को दिया जाता है।

५.२.१ भूमि

वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) के लिए किस प्रकार की भूमि ग्रहण करना चाहिए, यह बताया है-[१]

सारणी-५.१ वर्णानुसार शुभ भूमि

वर्ण	चौ : ल	रंग	वृक्ष	झुकाव	स्वाद
ब्राह्मण	१:१	सफ़ेद	गूलर	उत्तर	कषाय व मधुर
क्षत्रिय	१:(१+१/८)	लाल	पीपल	पूर्व	तिक्त
वैश्य	१:(१+१/६)	पीला	पाखर	पूर्व	अम्ल
शूद्र	१:(१+१/४)	काला	वट	पूर्व	कटु

विश्लेषणः- इस अध्याय में वर्ण के अनुसार शुभ आकार (लम्बाई व चौड़ाई का अनुपात), शुभ रंग, वृक्ष, प्लव तथा स्वाद का वर्णन किया है। इसमें सांकेतिक रुप से बताया है कि ब्राह्मण व्यक्ति के लिए वर्गाकार शुभ है, आकार चाहे नगर का हो, प्लाट का, कक्ष का हो या किस वस्तु (फर्नीचर आदि) का, वर्गाकार ब्राह्मण के लिए शुभ है।

इसी प्रकार सफेद रंग ब्राह्मणोचित गुण को विकसित करता है। मधुर स्वाद भी ब्राह्मणोचित गुण को विकसित करने में सहायक होता है।

ठीक इसी प्रकार लाल रंग व तिक्त स्वाद क्षत्रियोचित गुणों को विकसित करने में सहायक होता है। यहाँ सांकेतिक रुप से आकार, रंग, स्वाद आदि के माध्यम से आकार, रंग व स्वाद आदि के गुण बताए हैं।

५.२.२ भूमि परीक्षा

देवताओं व ब्राह्मणों के लिए वर्गाकार व आयताकार भूमि शुभ है तथा भूमि पश्चिम या दक्षिण दिशा में ऊँची होना चाहिए। भूमि चयन के सन्दर्भ में बताया कि जो भूमि में सुगन्ध आती हो, जो ठोस हो, स्निग्ध हो, स्पर्श करने पर सुख प्राप्त होता हो ऐसी भूमि शुभ है। शुभ वृक्षों से युक्त, षड्रस से युक्त भूमि शुभ है।

भूमि, कपाल, पत्थर, कीड़े, दीमक, हड्डी, छिद्र, कोयला, जड़, काँटे तथा कीचड़ से, कंकर, लकड़ी व ढेला, बालू, भूसा, राख से रहित तथा कम बालू से युक्त होना चाहिए।

अशुभ भूमि के सन्दर्भ में कहा है कि दही, घी, शहद, तेल, रक्त, शव, मछली, पक्षी की गन्ध के समान अशुभ है।

सभा, चैत्य (आराधना स्थल) के समीप की, राजा के महल के पास में लगी हुई, देवालय के समीप की, काँटे वाले वृक्षों से युक्त, गोल, त्रिकोण, विषम, वज्र के समान आकार वाली, कछुआ के समान ऊँची भूमि, चांडाल के निवास पास में स्थित, चर्मकार के घर के पास, दो, तीन या चार रास्तों पर स्थित, मध्य में झुकी हुई भूमि को छोड़ देना चाहिए।

इसी प्रकार अन्य जीव-जन्तुओं से युक्त भूमि को छोड़ देना चाहिए।

विश्लेषणः- इस अध्याय में निर्माण हेतु भूमि चयन विधि का वर्णन किया है तथा बताया है कि ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए जो सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित हो तथा नकारात्मक ऊर्जा का प्रभाव न हो। आसपास का वातावरण भी रहवास हेतु उपयुक्त हो।

५.२.३ भूपरिग्रह

भूमि का चयन करने के उपरान्त उसे वैदिक विधि से अधिग्रहण करना चाहिए। उस भूमि पर गोवंश को लाकर उनसे पददलन करवाना चाहिए। उस भूखण्ड पर ब्राह्मणों को बुलवाकर उनसे यथाशक्ति स्वस्तिवाचन करवाने के उपरान्त यह कहना चाहिए कि जो भी भूत, देव, राक्षस आदि इस स्थान पर रहते हों वे अन्यत्र चले जाएँ, अब हम इस भूमि का अधिग्रहण कर रहे हैं।

उसके पश्चात मिट्टी की परीक्षा की विधि का वर्णन है, इसमें मिट्टी के आर्द्रता, घनत्व तथा उर्वरता की परीक्षा की जाती है। एक घन हस्त का एक गड्ढा खोदकर उसे जल से भर देते हैं, उसके पश्चात् यदि अगले दिन सुबह उस गड्ढे में जल शेष रह जाता है तो वह भूमि शुभ

मानी जाती है। उसके पश्चात उस गड्ढे को उसी मिट्टी से भर देते हैं यदि मिट्टी बच जाती है तो वह भूमि शुभ कही गई है। उस भूमि पर धान्य बोकर उसकी ऊर्वरता की परीक्षा की जाती है। इस प्रकार से इस अध्याय में भूमि अधिग्रहण तथा मिट्टी की परीक्षा की विधि का वर्णन है।

विश्लेषणः- इस अध्याय में भूमि परीक्षण विधि का वर्णन है। इसके द्वारा मिट्टी के घनत्व (भार वहन क्षमता), आर्द्रता तथा उर्वरता का परीक्षण किया जाता है। जिस भूमि पर निर्माण करना है, उसका घनत्व व आर्द्रता उचित होने पर वह रहवास हेतु उपयुक्त होती है, उर्वर भूमि पर भवन का निर्माण करने से उसमें निवास करने वाले व्यक्ति को प्रकृति की पोषणकारी शक्ति प्राप्त होती है, जो विकास में सहायक होती है।

५.२.४ मानोकरण

माप की विभिन्न इकाइयों का वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार हैः-

सारणी-५.२ माप की इकाई

इकाई	इकाई
८ परमाणु	= १ रथधूलि
८ रथरेणु	= १ बालाग्र
८ बालाग्र	= १ लीख (लीक)
८ लिखा	= १ यूका (जूँ)
८ यूका	= १ यव
८ यव	= १ मात्रांगुल,
१२ मात्रांगुल	= १ वितस्ति
२ वितस्ति	= १ हस्त
४ हस्त	= १ धनुर्दण्ड
८ दण्ड	= १ रज्जु

सारणी-५.३ माप की इकाई

हस्त	नाम	उपयोग
२४ मात्रांगुल =	१ कर, किष्कु	यान, शयन, सभी कार्य
२५ मात्रांगुल =	१ प्राजापत्य हस्त	बहु मंजिला भवन, मन्दिर, वैश्य
२६ मात्रांगुल =	१ धनुर्मुष्टि	वस्तुओं (वास्तु)
२७ मात्रांगुल =	१ धनुर्ग्रह	ग्राम व नगर आदि

इसके अतिरिक्त हस्त तथा उनके उपयोग भी बताए हैः-

कर्ता की मध्यमा अंगुलि के मध्य पर्व की लम्बाई के बराबर **मात्रांगुल** होता है।

इस अध्याय में स्थपति आदि चार का वर्णन है जो निर्माण के कार्य को पूर्ण करते हैं, वे हैं- स्थपति, सूत्रग्राही, वर्धकि व तक्षक। स्थपति, अन्य तीनों का गुरु होता है। **स्थपति** सभी शास्त्र में निपुण, धार्मिक, दयालु, मात्सर्य आदि सात दोष (लालच, ईर्ष्या (द्वेष), दारिद्र्य, दुष्ट, घमण्ड, शत्रुभाव व क्रोध) से रहित होता है। वह गणित में निपुण व सत्यवादी होता है। **सूत्रग्राही**, स्थपति का शिष्य या पुत्र होता है। **तक्षक** लकड़ी को काटता है। **वर्धकि** मिट्टी, लकड़ी आदि के सभी कार्यों को करने में कुशल होता है। ये चार मिलकर पूरा निर्माण कार्य करते व करवाते हैं।

विश्लेषणः- इस अध्याय में यह बताया है कि प्राचीन समय में माप की सूक्ष्मतम इकाई परमाणु थी। सामान्य रुप से वास्तु में अंगुल व हस्त का प्रयोग गृह व कक्ष आदि के मान में किया जाता है। दण्ड आदि का प्रयोग मार्ग, नगर आदि के मान के लिए किया जाता है। कोश, गव्यूति आदि का प्रयोग एक नगर से दूसरे नगर की दूरी मापने के लिए करते हैं।

जब वास्तु के अनुसार निर्माण करते हैं तब गृहादि के सारे मान (भूखण्ड, भवन, कक्ष, खिड़की, दरवाजे, पलंग आदि) का मान मुख्य व्यक्ति के अंगुल या हस्त के अनुपात में करते हैं। जिस प्रकार व्यक्ति के कपड़े, जूते आदि शरीर के अनुपात में होते हैं, ठीक उसी प्रकार व्यक्ति (गृहस्वामी) के शरीर के अनुपात (अंगुल, हस्त आदि) से गृह का निर्माण किया जाता है।

५.३ दिशा ज्ञान व पद विन्यास

अध्याय ६ में दिशा ज्ञान की विधि का वर्णन है। वास्तुशास्त्र में नियोजन (प्लानिंग) दिशा पर ही आधारित है। अतः भूमि का चयन व परीक्षण करने के उपरान्त दिशाज्ञान की विधि का वर्णन है।

इसमें बताया गया है कि लकड़ी के बने हुए एक शंकु की सहायता से दिशा ज्ञात करते है। यह शंकु एक हस्त लम्बा होता है, इसका आधार पर व्यास ६ अंगुल तथा अग्र भाग का व्यास १ अंगुल होता है। भूखण्ड के मध्य स्थल को समतल करके उस पर दो हस्त व्यास का एक वृत बनाते हैं। दोपहर के पूर्व तथा दोपहर के पश्चात शंकु के शीर्ष की छाया वृत्त की परिधि को जिस बिन्दु पर स्पर्श करती है उसे चिह्नित कर लेते हैं। इनमें उचित संशोधन कर पूर्व-पश्चिम दिशा ज्ञात हो जाती है, इस पर मत्स्याकृति बनाने से उत्तर-दक्षिण दिशा ज्ञात हो जाती है। उसके पश्चात क्रम से विदिशा ज्ञात करते हैं।

इस अध्याय में रस्सी के लक्षण का वर्णन है, उसके पश्चात् खात-शंकु का वर्णन है। इसमें आगे सूत्र-विन्यास का वर्णन है। इन सूत्रों की सहायता से भूखण्ड पर निर्माण किया जाता है।

विश्लेषणः- इस अध्याय में सूर्य की सहायता से दिशा ज्ञात करने की विधि का वर्णन है। इस प्रकार से दिशा ज्ञात करने से पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र से दिशा प्रभावित नहीं होती है। आधुनिक समय में हम चुम्बकीय सुई की सहायता से दिशा ज्ञात करते हैं, जिसमें कई बार पृथ्वी पर लोकल (स्थानीय) चुम्बकीय क्षेत्र उपस्थित होने के कारण अशुद्धि होने की आशंका रहती है। इस विधि द्वारा हम शुद्ध उत्तर ज्ञात करते हैं। इस प्रकार से दिशा-उपदिशा (विदिशा) ज्ञात कर ग्राम, नगर या भूखण्ड का पद विन्यास (विभिन्न भागों में विभाजित करना) किया जाता है। इसे अध्याय ७ में बताया गया है।

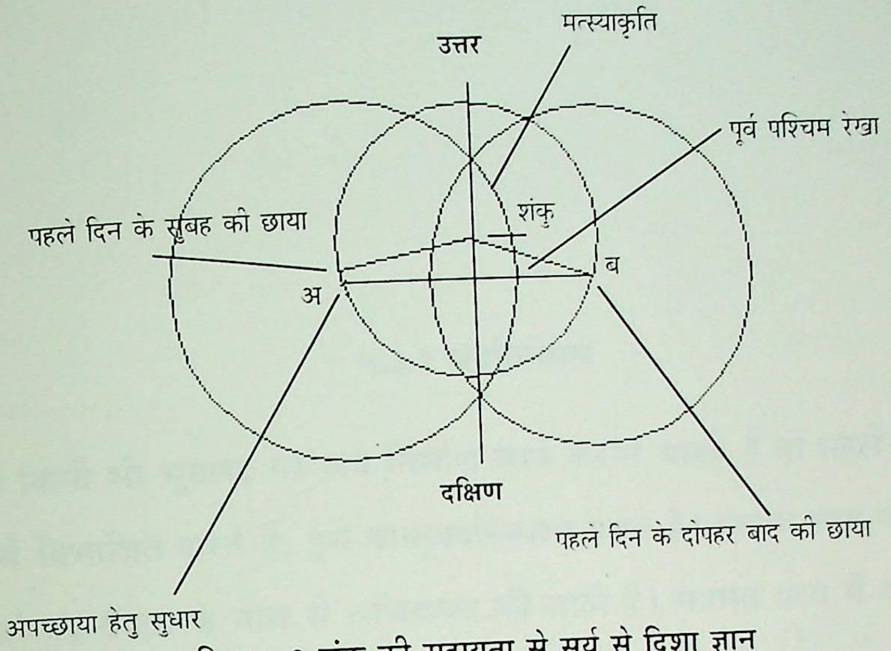
मत्स्याकृति
उत्तर
पूर्व पश्चिम रेखा
शंकु
पहले दिन के सुबह की छाया
ब
अ
दक्षिण
पहले दिन के दोपहर बाद की छाया
अपच्छाया हेतु सुधार

चित्र ५.१ शंकु की सहायता से सूर्य से दिशा ज्ञान

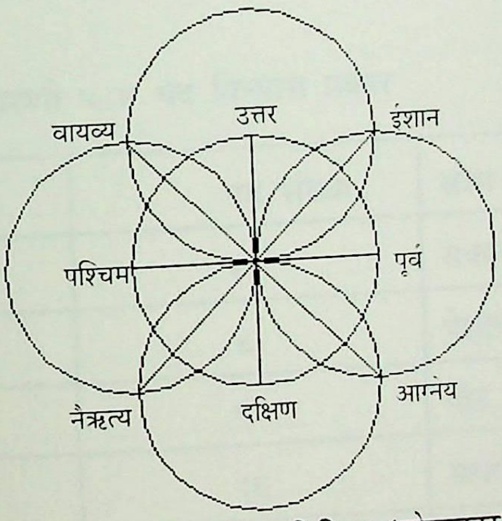
वायव्य
उत्तर
ईशान
पश्चिम
पूर्व
नैऋत्य
दक्षिण
आग्नेय

चित्र ५.२ दिशा-विदिशा (गोलाकार)

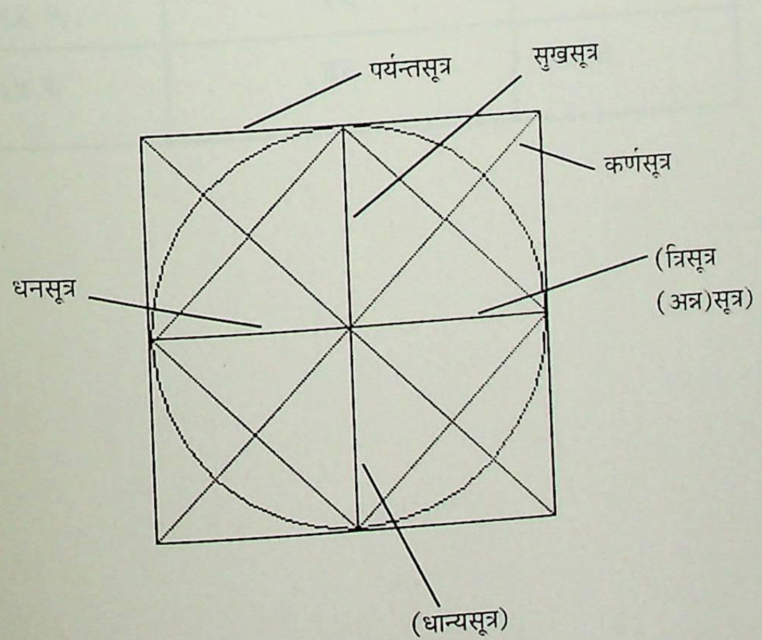
पर्यन्तसूत्र
सुखसूत्र
कर्णसूत्र
धनसूत्र
(त्रिसूत्र
(अन्न)सूत्र)
(धान्यसूत्र)

चित्र ५.३ सूत्र-विन्यास

५.३.१ पदविन्यास

जब हम किसी भी भूखण्ड पर जब निर्माण कार्य करना चाहते हैं तो पहले भूखण्ड को विभिन्न भागों में विभाजित करते हैं, इसे वास्तुपदविन्यास कहते हैं। प्रत्येक भाग पद कहलाता है, पद की ऊर्जा पद-देवता के नाम से अभिव्यक्त की जाती है। मयमत ग्रन्थ में बत्तीस प्रकार के पदविन्यास का वर्णन मिलता हैः-

सारणी ५.४ पद विन्यास प्रकार

क्रमांक	पद संख्या	संज्ञा
(१) १X १	१	सकल
(२) २X२	४	पेशाच
(३) ३X३	९	पीठ
(४) ४ज़४	१६	महापीठ
(५) ५X ५	२५	उपपीठ
(६) ६X ६	३६	उग्रपीठ

सारणी ५.४ पद विन्यास प्रकार

क्रमांक	पद संख्या	संज्ञा
(७) ७X ७	४९	स्थण्डिल
(८) ८ X ८	६४	मण्डूक
(९) ९ X ९	८१	परमशायिका
(१०) १० X १०	१००	आसन
(११) ११ X ११	१२१	स्थानीय
(१२) १२ X १२	१४४	देशीय
(१३) १३ X १३	१६९	उभयचण्डित
(१४) १४ X १४	१९६	भद्रमहासन
(१५) १५ X १५	२२५	पद्म गर्भ
(१६) १६ X १६	२५६	त्रियुत
(१७) १७ X १७	२८९	व्रतभोग
(१८) १८ X १८	३२४	कर्णाष्टक
(१९) १९ X १९	३६१	गणित
(२०) २० X २०	४००	सूर्यविशालक
(२१) २१ X २१	४४१	सुसंहित
(२२) २२ X २२	४८४	सुप्रतिकान्त
(२३) २३ X२३	५२९	विशाल
(२४) २४ X २४	५७६	विप्रगर्भ
(२५) २५ X २५	६२५	विश्वेश
(२६) २६ X २६	६७६	विपुलभोग
(२७) २७ X २७	७२९	विप्रकान्त
(२८) २८ X २८	७८४	विशालाक्ष
(२९) २९ X २९	८४१	विप्रभक्ति
(३०) ३० X ३०	९००	विश्वेसार
(३१) ३१ X ३१	९६१	ईश्वरकान्त
(३२) ३२ X ३२	१०२४	इन्द्रकान्त

५.३.१.१ उपपीठ पद विन्यास

५ गुणित ५ अर्थात् २५ पद का होता हैः- इसका उपयोग पूजन आदि में किया जाता है।

मारुत	मुख्य	सोम	अदिति	ईश
शोष	रुद्र	भूधर	आपवत्स	जयन्त
वरुण	मित्र	ब्रह्मा	आर्य	आदित्य
सुग्रीव	इन्द्र	विवस्वान	सावित्र	भृश
पितृ	भृङ्ग	यम	वितथ	अग्नि

चित्र-५.४उपपीठ पदविन्यास

५.३.१.२ मण्डूक पदविन्यास

यह ६४ पद का होता है, इसका प्रयोग सभी निर्माण में करते हैः-

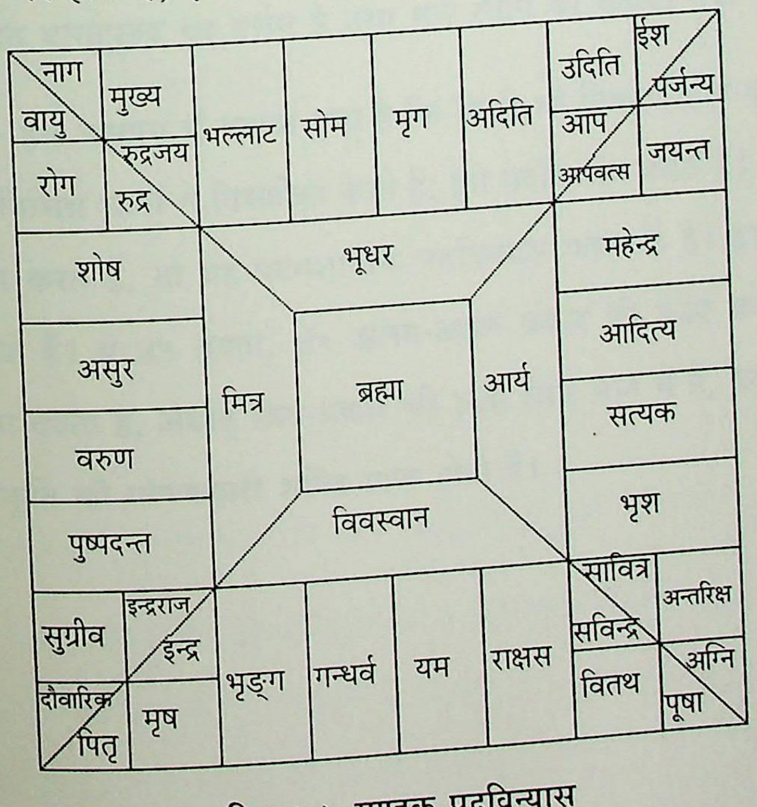

नाग
वायु
मुख्य
रोग
रुद्रजय
रुद्र
भल्लाट
सोम
मृग
अदिति
उदिति
ईश
पर्जन्य
आप
आपवत्स
जयन्त
शोष
भूधर
महेन्द्र
असुर
मित्र
ब्रह्मा
आर्य
आदित्य
सत्यक
वरुण
विवस्वान
भृश
पुष्पदन्त
सावित्र
अन्तरिक्ष
सुग्रीव
इन्द्रराज
इन्द्र
भृङ्ग
गन्धर्व
यम
राक्षस
सविन्द्र
अग्नि
दौवारिक
पितृ
मृष
वितथ
पूषा

चित्र-५.५ मण्डूक पदविन्यास

इक्यासी पद का वास्तुविन्यास परमशायिक पद विन्यास कहलाता हैः-

वायु	नाग	मुख्य	भल्लाट	सोम	मृग	अदिति	उदिति	ईश
रोग	रुद्र	रुद्रजय	भूधर			आप	आपवत्स	पर्जन्य
शोष								जयन्त
असुर	मित्र		ब्रह्मा			आर्य		महेन्द्र
वरुण								आदित्य
पुष्पदन्त								सत्यक
सुग्रीव	इन्द्रराज	इन्द्र	विवस्वान			सविन्द्र	सावित्र	भृश
दौवारिक								अन्तरिक्ष
पितृ	मृष	भृङ्ग	गन्धर्व	यम	राक्षस	वितथ	पूषा	अग्नि

परमशायिक पदविन्यास

इसके पश्चात् वास्तुपुरुष का वर्णन है तथा मर्म स्थान को बताया गया है।

विश्लेषणः- इस अध्याय में बताया गया है कि किसी भी निर्माण कार्य को आरम्भ करने से पहले पूरे क्षेत्र को विभिन्न भागों में विभाजित करते हैं, इसे पदविन्यास कहते हैं। जब भूखण्ड को ८१ भागों में विभाजित करते हैं, तो यह परमशायिक पदविन्यास कहलाता है। इसमें चित्रानुसार ४५ देवता निवास करते हैं। ये ४५ देवता, ४५ अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा को प्रदर्शित करते हैं। वास्तुशास्त्र में जैसा देवता है, अर्थात् जिस प्रकार की ऊर्जा जिस भाग में है, उसके अनुसार निर्माण कार्य करने पर प्रकृति की पोषणकारी शक्ति प्राप्त होती है।

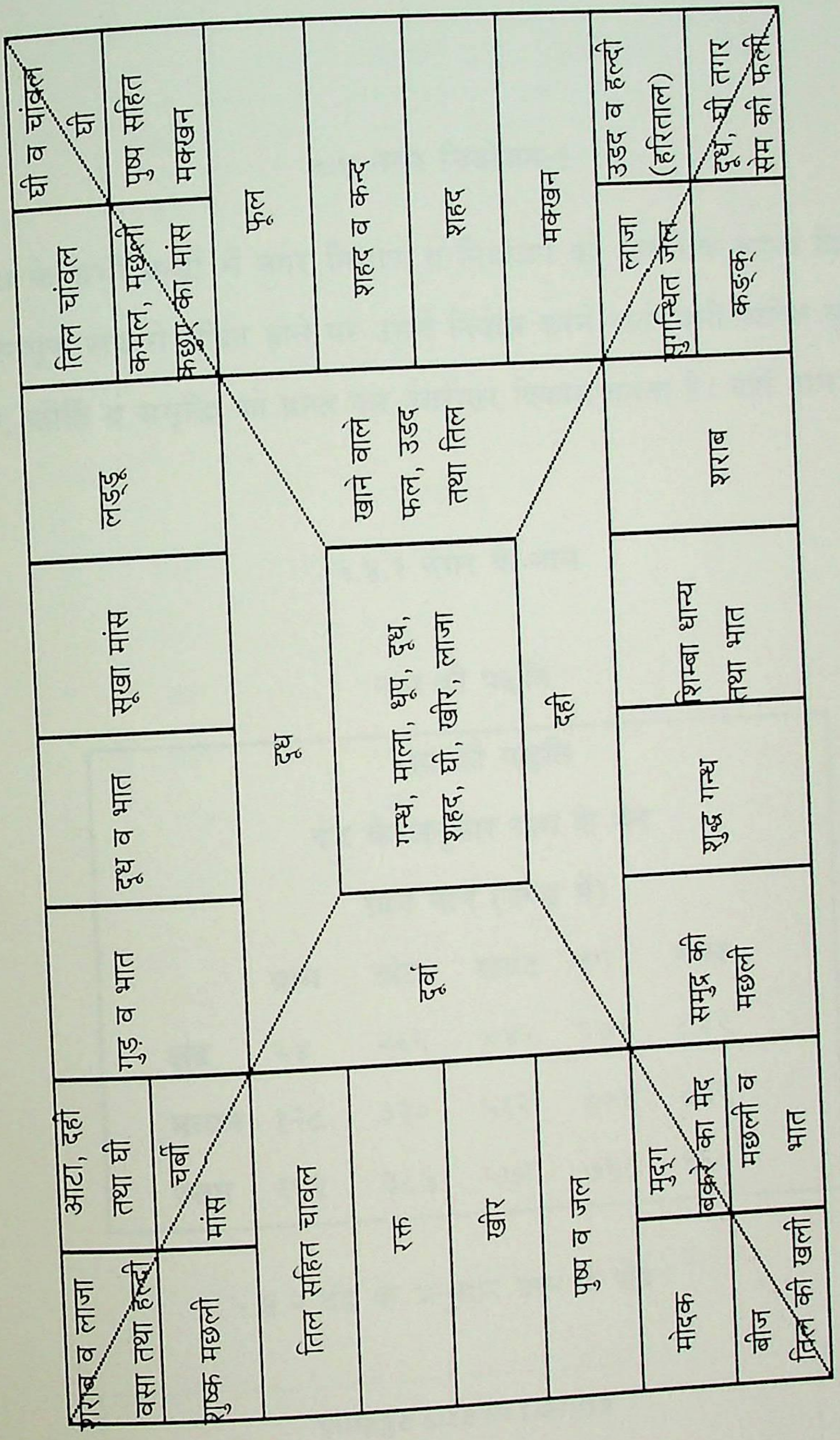
घी व चांवल
घी
पुष्प सहित मक्खन
फूल
शहद व कन्द
शहद
मक्खन
उडद व हल्दी (हरिताल)
दूध, घी तगर सेम की फली
तिल चांवल
कमल, मछली कछुआ का मांस
लाजा सुगन्धित जल
कड्डू
लड्डू
खाने वाले फल, उडद तथा तिल
शराब
सूखा मांस
गन्ध, माला, धूप, दूध, शहद, घी, खीर, लाजा
शाम्बा धान्य तथा भात
दूध
दही
दूध व भात
शुद्ध गन्ध
गुड़ व भात
दूर्वा
समुद्र की मछली
आटा, दही तथा घी
चर्बी मांस
मुद्गा बकरे का मेद
मछली व भात
शराब व लाजा
वसा तथा हल्दी
शुष्क मछली
तिल सहित चावल
रक्त
खीर
पुष्प व जल
मोदक
बीज तिल की खली

चित्र ५.७ पद-देवता बलि

५.३.२ बलिकर्मविधान

इसमें वास्तुपुरुष के शरीर पर स्थित ४५ देवताओं के लिए बलि के पदार्थ का वर्णन है।

विश्लेषणः- इस बलि विधान का वास्तुशोधन में भी अत्यधिक महत्व है, जो पद दूषित या दोषपूर्ण होता है, उसका शोधन या दोष दूर करने के लिए वास्तुपद के देवताओं को उनके नाम व मन्त्र के साथ हवन करने का विधान है, यही विधि वास्तुपूजन या वास्तुशान्ति भी कहलाती है।

५.४ नगर नियोजन-१

वास्तुशास्त्र के सभी ग्रन्थों में नगर निर्माण व नियोजन को अत्यधिक महत्व दिया गया है। नगर का वास्तु सम्पूर्ण रुप से उचित होने पर उसमें निवास करने वाले सभी व्यक्ति सुखी होते हैं, सम्पूर्ण राष्ट्र धन, कीर्ति व समृद्धि को प्राप्त कर उत्तरोत्तर विकास करता है। यहाँ ग्राम विन्यास का अध्ययन करेंगे।

५.४.१ नगर के मान

नाप की पद्धति

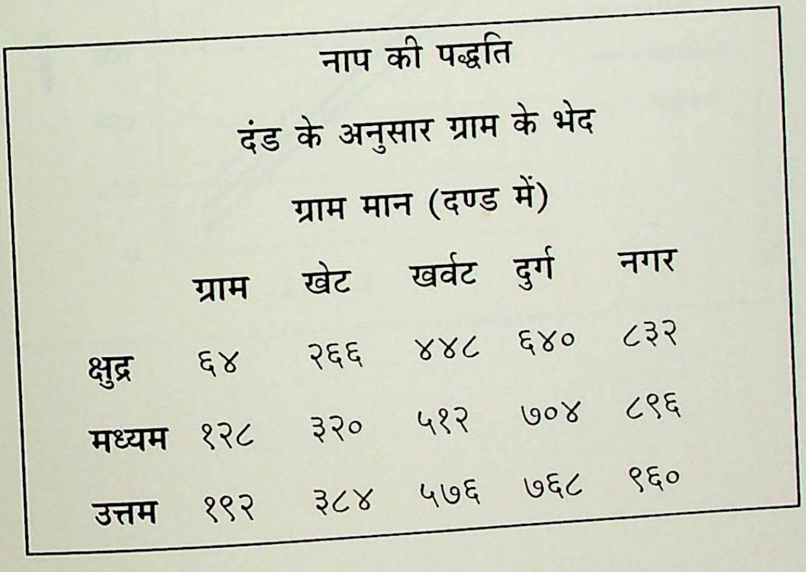

नाप की पद्धति

दंड के अनुसार ग्राम के भेद

ग्राम मान (दण्ड में)

	ग्राम	खेट	खर्वट	दुर्ग	नगर
क्षुद्र	६४	२६६	४४८	६४०	८३२
मध्यम	१२८	३२०	५१२	७०४	८९६
उत्तम	१९२	३८४	५७६	७६८	९६०

५.४.२ दंड के अनुसार ग्राम के भेद

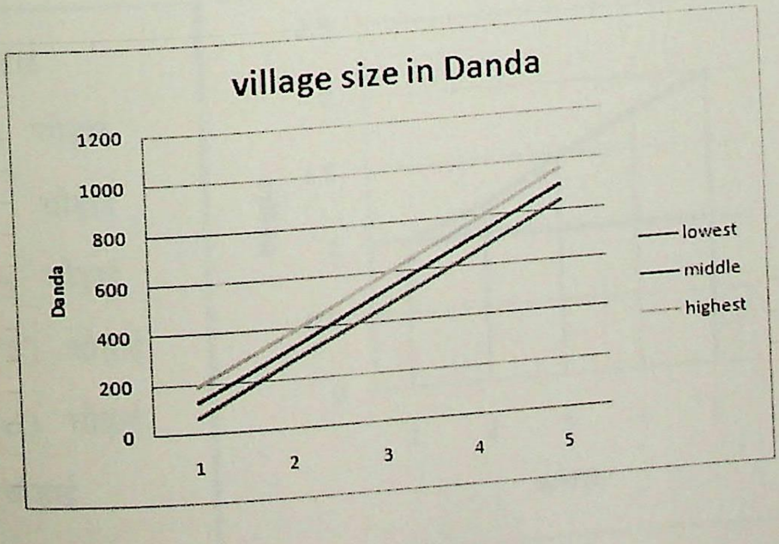

सारणी-५.७ ग्राम भेद (ब्राह्मण की संख्या के अनुसार)

	उत्तम	मध्यम	अधम	अधमाधम
उत्तम	१२०००	७०००	४०००	१०००
मध्यम	१००००	६०००	३०००	७००
अधम	८०००	५०००	२०००	५००

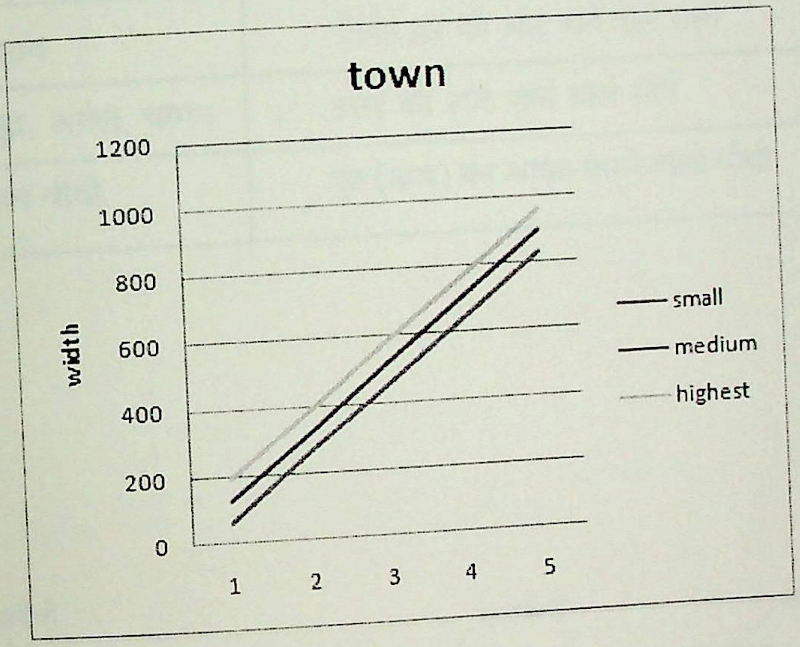

सारणी-५.६ लम्बाई व चौड़ाई का अनुपात

लम्बाई = चौड़ाई
लम्बाई = १.२५ चौड़ाई
लम्बाई = १.५ चौड़ाई
लम्बाई = १.७५ चौड़ाई
लम्बाई = (७/६) चौड़ाई
लम्बाई = (९/८) चौड़ाई
लम्बाई = २ चौड़ाई

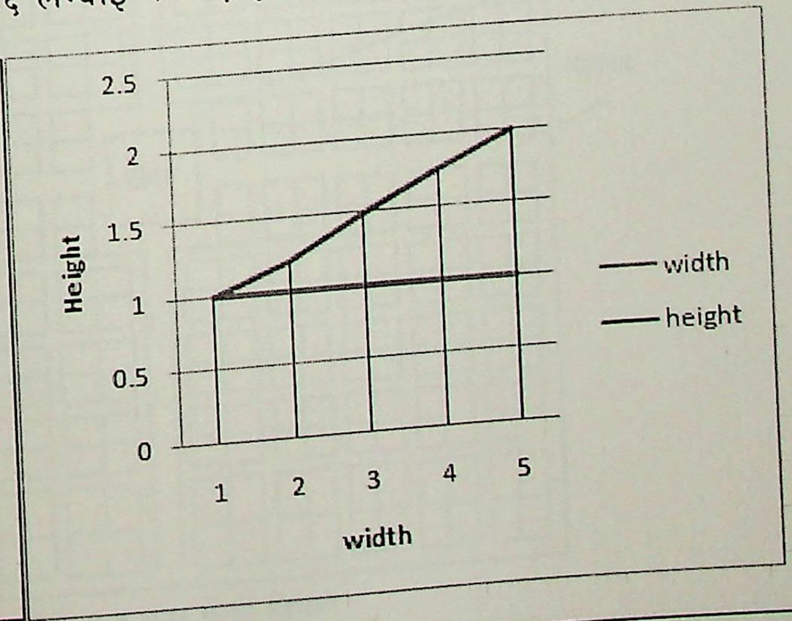

सारणी-५.८ वीथी लक्षण

वीथी	विशेषता
मंगलवीथी	परिधि पर स्थित
महापथ	पूर्व से पश्चिम छः दंड के मार्ग
ब्रह्मा वीथी	ग्राम की मध्य (के चारों ओर) की वीथी
राजवीथी	द्वार की ओर जाने वाले मार्ग
गली	राजवीथी के दोनों ओर के मार्ग
नाराच	तिर्यग द्वार की ओर जाने वाले रास्ते
क्षुद्र, अर्गल, वामन	उत्तर की ओर जाने वाले मार्ग
जन वीथी	पुर (नगर) को आवृत करने वाली वीथी

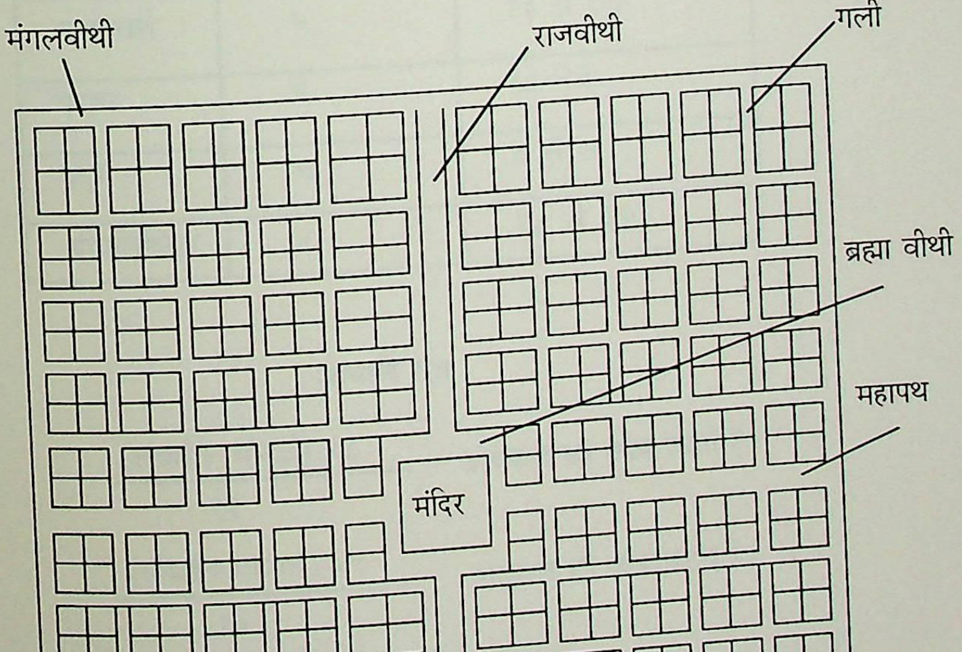
मंगलवीथी
राजवीथी
गली
ब्रह्मा वीथी
महापथ
मंदिर

चित्र ९.१ ग्राम वीथी विधान

सारणी-५.९ ग्राम भेद

स्थान	निवासी
मंगल	केवल ब्राह्मण
पुर	राजा तथा व्यापारियों
ग्राम	अन्य जनों से युक्त
मठ	तपस्वी

सारणी-५.१० **ग्राम व रास्ते संख्या**

नाम	**पूर्व-पश्चिम**	**दक्षिण-उत्तर रास्ते**
दण्डक	१	१
स्वस्तिक	२	२
प्रस्तर	३	३ से ७
प्रकीर्णक	४	८ से १२
नन्द्यावर्त	५	१३ से १७
पराग	६	१८-२२
पद्म	७	३ से ७
श्रीप्रतिष्ठित	८	२८ से ३२

आयादि सूत्र

$$\frac{(\text{लंबाई}+\ \text{चौड़ाई})\times ८}{१२}$$ **शेषफल** को **आय** कहते हैं।

$$\frac{(\text{लंबाई}+\ \text{चौड़ाई})\times ९}{१०}$$ शेषफल को **व्यय** कहते हैं।

$$\frac{(\text{लंबाई}+\ \text{चौड़ाई})\times ३}{८}$$ शेषफल को **योनि** कहते हैं।

$$\frac{(\text{लंबाई}+\ \text{चौड़ाई})\times ८}{२७}$$ शेषफल को **नक्षत्र** कहते हैं।

$$\frac{(\text{लंबाई}+\ \text{चौड़ाई})\times ८}{३०}$$ शेषफल को **तिथि** कहते हैं।

५.४.३ आकार के अनुसार आठ प्रकार के ग्राम

दण्डक, स्वस्तिक, प्रस्तर, प्रकीर्णक, नन्द्यावर्त, पराग, पद्म तथा श्रीप्रतिष्ठित-

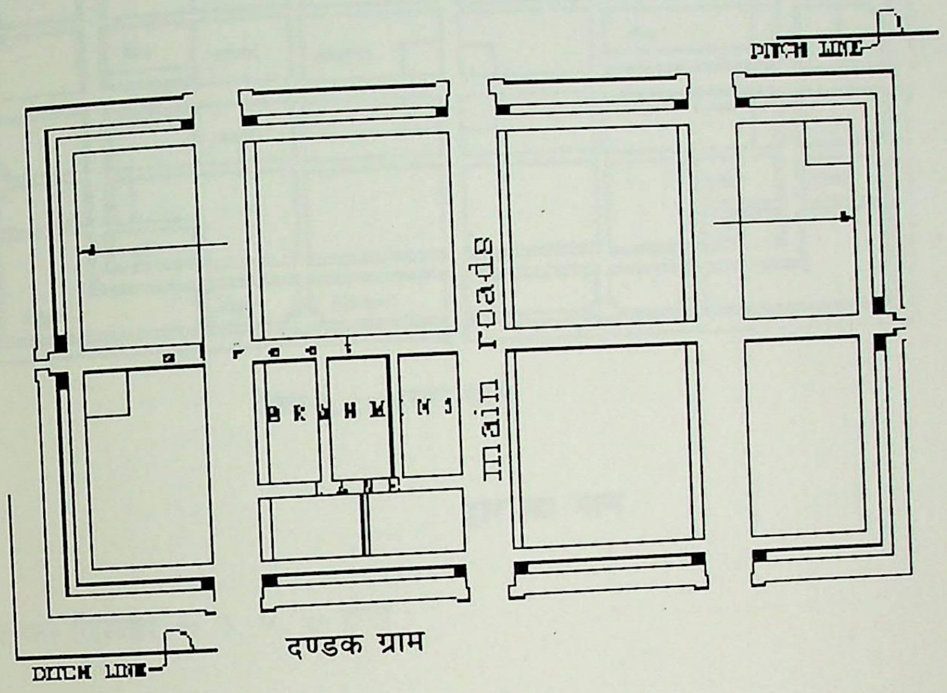
DITCH LINE
main roads
दण्डक ग्राम
DITCH LINE

चित्र-५.८ दण्डक ग्राम

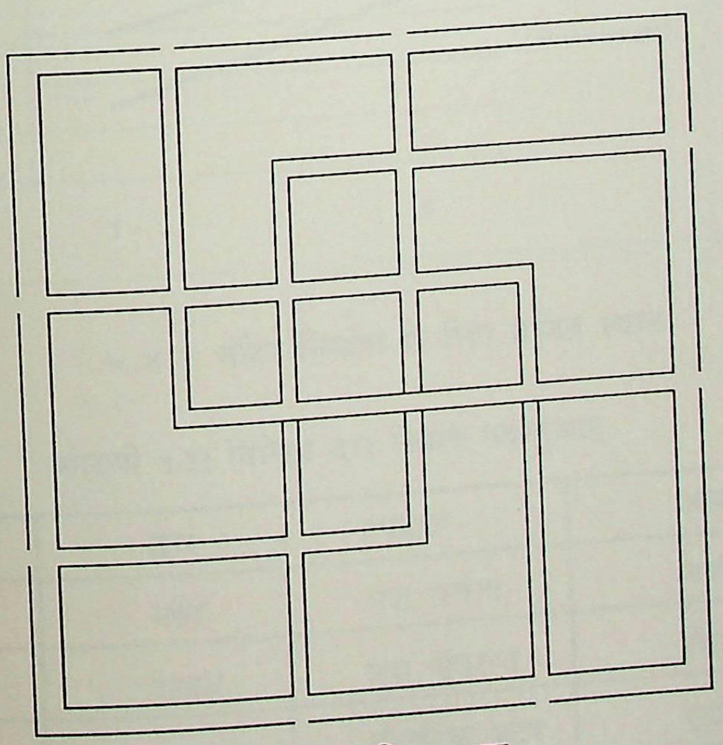

चित्र-५.९ स्वस्तिक ग्राम

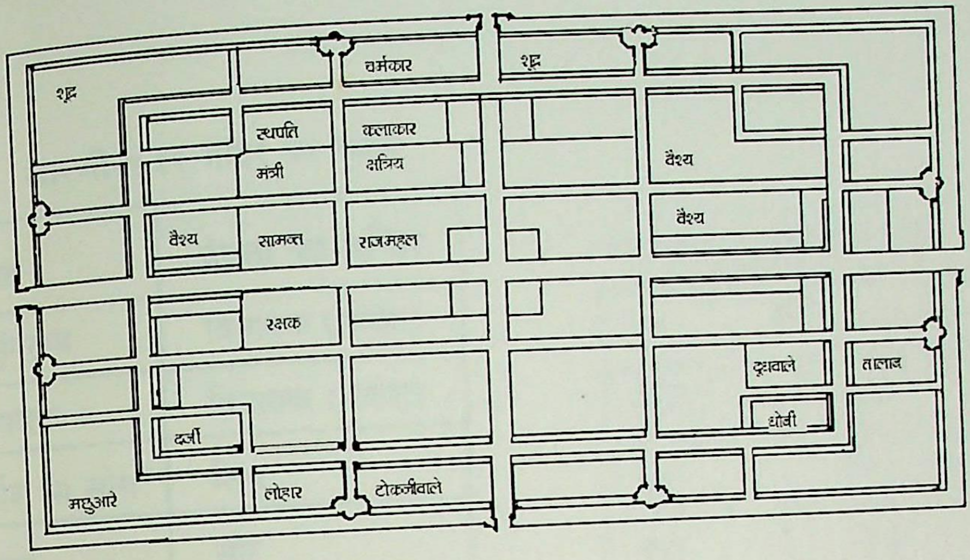
शूद्र
चर्मकार
शूद्र
शूद्र
स्थपति
कलाकार
मंत्री
क्षत्रिय
वैश्य
वैश्य
सामन्त
राजमहल
वैश्य
रक्षक
दूधवाले
तालाब
धोबी
दर्जी
मछुआरे
लोहार
टोकरीवाले

चित्र-५.१० प्रस्तर ग्राम

द्वार का मान

द्वार का विस्तार = ३, ५, ७ हस्त

द्वार की ऊँचाई = २ या १.५ या १.७५ चौड़ाई

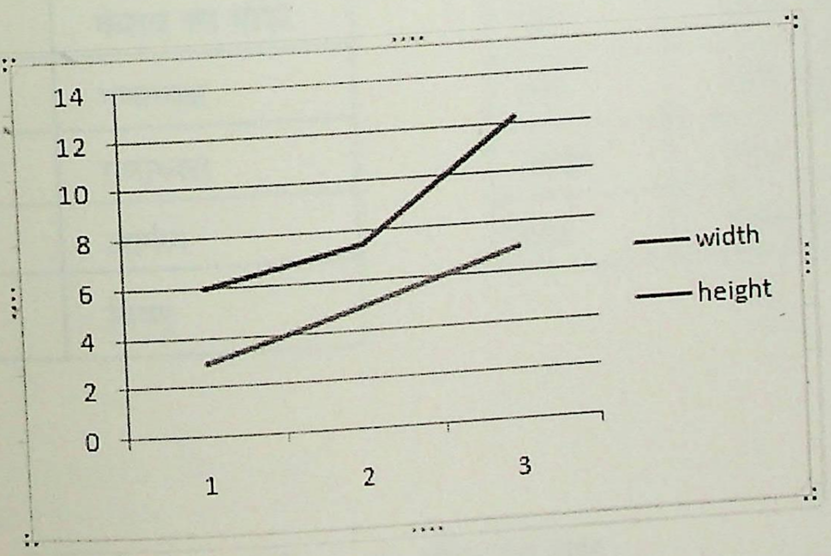

५.४.४ मंदिर निर्माण के लिए वर्जित स्थान

सारणी ५.११ विभिन्न द्वार स्थिति पदानुसार

दिशा	द्वार	उपद्वार	जलद्वार
पूर्व	महेंद्र	भृश, पर्जन्य	जयन्त
दक्षिण	राक्षस	पूषा, भृंगराज	वितथ
पश्चिम	पुष्पदन्त	दौवारिक, शोष	सुग्रीव
उत्तर	भल्लाट	नाग, दिति	मुख्य

सारणी-५.१२ मंदिर का स्थान

पद	देवता का मन्दिर
भृंगराज	विनायक (गणेश)
पावक	विनायक (गणेश)
ईश या सोम	शिव
सूर्य	सौर
अग्नि	कालिका
भृश	विष्णु
यम	षण्मुख (कार्तिकेय)
भृश	केशव का मंदिर
मृग	केशव का मंदिर
नैऋत्य	केशव का मंदिर
सुग्रीव	गणाध्यक्ष
पुष्पदन्त	गणाध्यक्ष
नैऋत्य	आर्यक
वरुण	विष्णु

सारणी ५.१३ पदानुसार देवता के मंदिर

पद	देवता का मंदिर
सुगल	सुगत
भृंग	जिन (जैन)
वायु	मदिर
मुख्य	कात्यायनी
सोम	धनद या मातृणा
ईश	शंकर
पर्जन्य	शंकर
जयन्त	शंकर
सोम	धनद, गणेश
शोष	धनद, गणेश
अदिति	मातृ
मध्य	विष्णु, सभामण्डप

सारणी- ५.१५ मंदिर का मुख

देवता	मुख
ईश	पूर्व या पश्चिम
विष्णु	मध्य की ओर
शेष	पूर्व
मातृणा	उत्तर

सारणी ५.१४ पद व उपयोग

स्थान	उपयोग
ब्रह्मा के ईशान, आग्नेय	सभास्थान
ब्रह्म के वायव्य	हरि का मंदिर
ब्रह्म के नैऋत्य	हरि का मंदिर

हृदय, वंश, शूल, सूत्र, संधि तथा कर्णसिरा इन छः स्थानों पर मंदिर आदि का निर्माण नहीं करना चाहिए।

गृह (घर) का मान

गृह की चौड़ाई = ३, ५, ७, ९ (दण्ड)

लंबाई = २ + चौड़ाई से २ (चौड़ाई)

सारणी- ५.१६ ग्राम की बसाहट

गौशाला	दक्षिण
पुष्पवाटिका	उत्तर
तपस्वी	पूर्व के द्वार के पास या पश्चिम में
जलाशय, वापी या कुआँ	सभी चाहे गए स्थान पर
वैश्य	दक्षिण
शूद्र के घर	सीमा (परिधि)
नाई तथा अन्य कर्मकारों	पूर्व या उत्तर
मछुआरों	वायव्य
मांस से आजीविका (कसाई)	पश्चिम
तेली के घर	उत्तर
[illegible]	+ [illegible]

५.४.५ गर्भ विन्यास

धातु

स्वस्तिक को सोने, लोहे, ताँबे तथा चाँदी में चारों दिशाओं में रखना चाहिए।

स्वस्तिक-सोने, लोहे, ताम्बे, चाँदी

पात्र का मान (अंगुल में)

प्रारम्भ	बढ़ाते हुए	अंगुल तक
१२	५-५	३२

लम्बाई = चौड़ाई + १

गर्भविन्यास का स्थान

नगर में, ग्राम में, निगम में, खेट में, पत्तन में, कोत्मकोलक में, ब्रह्म, आर्यक, अर्क, विवस्वान तथा यम (के पद में गर्भविन्यास को करें)।

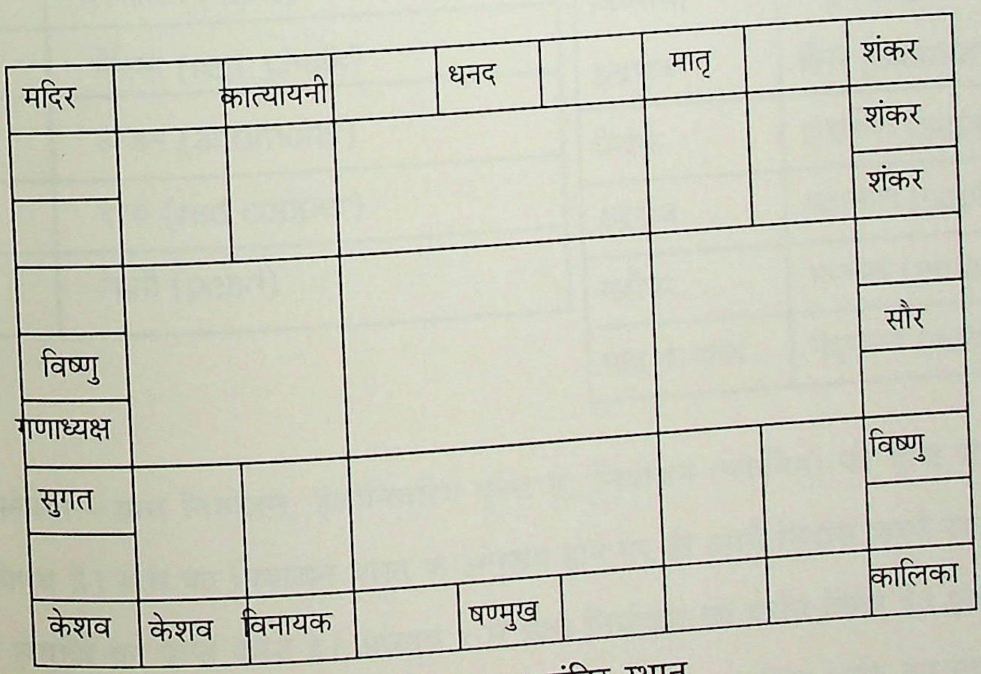
मदिर
कात्यायनी
धनद
मातृ
शंकर
शंकर
शंकर
सौर
विष्णु
गणाध्यक्ष
सुगत
विष्णु
कालिका
केशव
केशव
विनायक
षण्मुख

चित्र- ५.१२ मंदिर स्थान

सारणी-५.१७ पद एवं गर्भविन्यास पदार्थ

पद	पदार्थ
सूर्य	चाँदी का वृष, सोने का वज्र
यम	ताम्बे का यमराज, सोने का हाथी
वरुण	जलाधिप चाँदी का, सोने का सिंह
सोम	चांदी का द्विजराज, चांदी का घोड़ा
ईश	पारा (mercury)
अग्नि	टिन (tin)
नैऋत्य	सीसा (lead)
वायु	सोना (gold)
जयन्त	जातिहिंगुल (cinnabar)
भृश	हरिताल (orpiment)
वितथ	मनःशिला (red arcenic)
भृंगराज	माक्षिक (pyrides)
सुग्रीव	राजावर्त (lapis)
शोष	गैरिक (red chalk)
मुख्य	अंजन (antimony)
अदिति	दरद (red copper)
आपवत्स	मोती (pearl)

सारणी-५.१८ धान्य एवं धातु

धान्य	धातु
शाली	सोना
ब्रीहि	चांदी
कोद्रव	लोहा
कंकु	टिन
माष	सीसा
तिल	पारा
मुद्ग	लोहा
कुलत्थ	ताम्बा

सारणी-५.१७ पद एवं गर्भविन्यास पदार्थ

पद	पदार्थ
मरीच	विद्रुम (coral)
सवित्र	पुष्पराग (topaz)
विवस्वत	वैडूर्य (tiger's eye)
इन्द्रराज	हीरा (diamond)
मित्रक	इन्द्रनील (sapphire)
रुद्रराज	महानील (saphhire)
महीधर	मरकत (emarald)
पात्र के मध्य	पद्मराग (ruby)

विश्लेषणः- ग्राम नियोजन, इंजीनियरिंग दृष्टि से, नियोजन (प्लानिंग) की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। ग्राम का नियोजन वास्तु के अनुरुप होने पर ही उसमें निवास करने वाले व्यक्ति उन्नति तथा समृद्धि को प्राप्त करते हैं। अध्याय ९ में ग्राम नियोजन का वर्णन किया है। इसमें मान, लम्बाई व चौड़ाई का अनुपात, आकार के अनुसार ग्राम, गर्भविन्यास, मन्दिर आदि का स्थान, ग्राम के किस भाग में किस प्रकार से ऊर्जा के अनुसार व्यक्तियों को बसाना चाहिए इसका वर्णन किया है। गर्भविन्यास के बारे में विश्लेषण करने पर हम पाते हैं जिस देवता का मन्दिर बनाना हो, उस देवता से संबंधित अस्त्र, शस्त्र, आयुध, वाहन व शक्ति का निवेश गर्भ में किया जाता है, जो उस देवता से संबंधित ऊर्जा को बढ़ाने में सहायक होता है।

नगर नियोजन-२

ग्राम विन्यास के बाद, इस नगर विधान या नगर विन्यास नामक अध्याय १० में, हमें नगर नियोजन का वर्णन मिलता है। इसमें विभिन्न प्रकार के नगर बताए गए हैं। नगर की दीवार, नगर के मर्म स्थान, उनके मार्ग के साथ-साथ विभिन्न अवसर पर बनाए जाने वाले विभिन्न न्यास जैसे शिबिर आदि का वर्णन है। सुरक्षा के लिए बनाए जाने वाले दुर्ग, विभिन्न स्थान पर बनाए जाने वाले दुर्ग का वर्णन भी मिलता है। नगर नियोजन में वीथी, बाजार के साथ साथ, अलग-अलग वर्ण के लोगों को नगर की किस दिशा में बसाना चाहिए इसका उल्लेख भी किया गया है।

५.४.६ मान के अनुसार नगर के भेद

सारणी- ५.१९ मान के अनुसार नगर के भेद

प्रकार	प्रांरभ	वृद्धि	तक (दण्ड में)
७८	३००	१००	८०००
२१	१००	१०	३००
२५	४०००	५००	१६०००

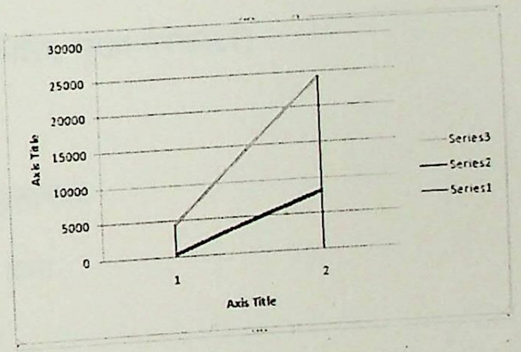

सारणी-५.२० नगर व मान

नगर	प्रकार	प्रांरभ	वृद्धि	तक(दण्ड में)
खेट	६	३००	२०-२०	४००
द्रोणमुख	५	४००	२४-२४	४९६
खर्वट	५	२००	५०-५०	४००
निगम	१५	२००	१०-१०	३४०
कोत्मकोलक	५	२००	१००-१००	५००
विडम्ब	७	२००	५०-५०	५००

लम्बाई = २ (चौड़ाई) या १.७५ (चौड़ाई) या १.५ (चौड़ाई) या ७/६ (चौड़ाई) या ९/८ (चौड़ाई)

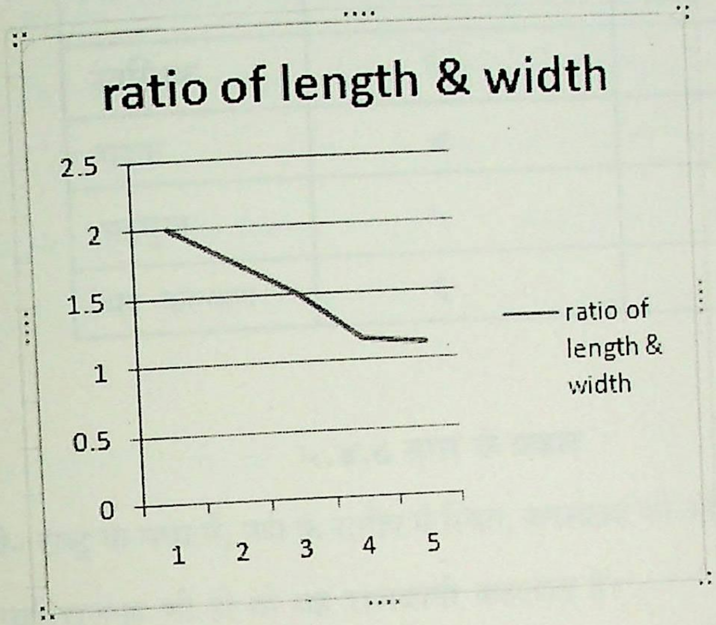

५.४.७ वप्र विधान (बाहरी भित्ति, मुख्य परकोटा)

आकारः-

वर्गाकार, आयताकार, वृत्ताकार, अंडाकार, पूर्ण वृत्ताकार

दीवार के निचले भाग की मोटाई = २, ३, ४ हस्त

दीवार की ऊँचाई = ७, १० या ११ हस्त

दीवार के ऊपरी भाग की मोटाई = २/३ (दीवार के निचले भाग की मोटाई)

देवालयों (मंदिरों) आदि के अंदर व बाहर की ओर चारों ओर परिखा (खाई) होती है।

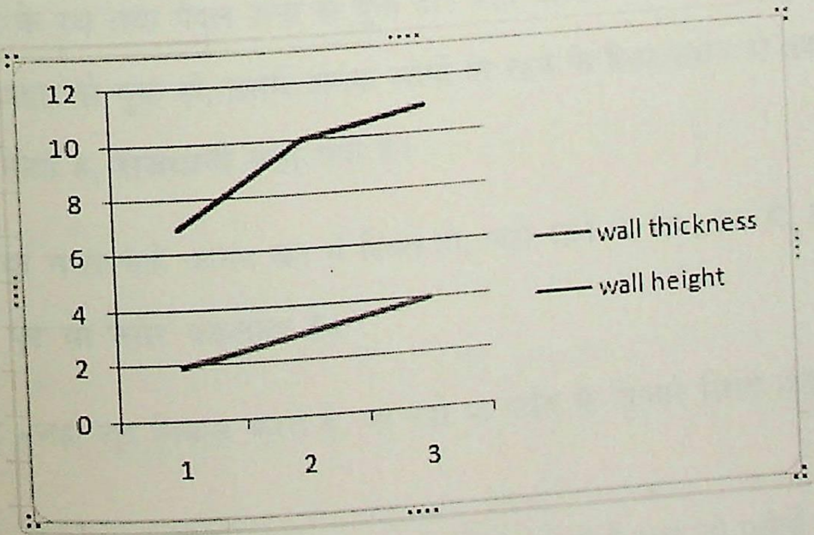

सारणी-५.२१ नगर एवं मार्ग संख्या

नगर संज्ञा	मार्ग सं	मार्ग सं
स्वस्तिक	६	६
भद्रक	४	४
भद्रमुख	५	अनेक
भद्र कल्याण	६	अनेक

५.४.८ नगर के प्रकार

१ राजधानी- राष्ट्र के मध्य में, नदी के समीप में स्थित, जनसंख्या की अधिकता वाला नगर केवल कहलाता है, यदि वहाँ राजगृह भी हो तो वह **राजधानी** कहलाता है।

२ केवल-जब चारों प्रधान दिशा में दरवाज़े (गोपुर) से युक्त हो, चारों ओर परकोटा हो तथा क्रयविक्रय हेतु दुकानें एवं (सभी वर्णों के) निवास के लिए घर हो तथा सभी देवताओं के मंदिर हो, वह नगर **केवल** कहलाता है।

३ राजधानी-जो नगर उत्तर तथा पूर्व की ओर से अभेद्य हो, जो चारों ओर से दीवार से घिरा हो, जो की (भुरभुरी) मिट्टी से युक्त हो, दीवार के चारों ओर परिखा हो, गढ़ की सेना चारों दिशाओं में स्थित होकर सुरक्षा (निगरानी) रखती हो, प्रधान सुरक्षा कर्मी दक्षिण तथा पूर्व की ओर मुख किए हो व नगर ऊँचे गोपुर से युक्त हो। अनेक प्रकार की मालिकाओं (gallery) से युक्त हो। सभी प्रकार के देवताओं के मंदिरों से युक्त, अनेक गणिकाओं से युक्त तथा जिसमें बहुत से उद्यान हों। साथ ही हाथी, घोड़े, युद्ध के रथ तथा पैदल सेना से युक्त हो। जहाँ पर हर वर्ण व हर वर्ग के लोग रहते हो। अनेक द्वार व उपद्वार से युक्त हो, उसमें अनेक लोगों के रहने के लिए स्थान हो तथा जिसमें राजा के लिए भी महल होता है, **राजधानी** कहा गया है।

४ पुर या नगर-चाहे कानन वन में स्थित हो, जहाँ रहने के लिए घर हो, क्रयविक्रय के लिए दुकानें हो, वह **पुर या नगर** कहलाता है।

५ खेट -जहाँ शूद्र निवास करते हैं, जो नदी या पर्वत के किनारे स्थित होता है, **खेट** कहलाता है।

६ खर्वट-जिसमें हर प्रकार के वर्ग व वर्ण के लोग रहते हैं तथा जो पर्वतों के बीच स्थित होता है, **खर्वट** कहलाता है।

७ कुब्ज-खर्वट व खेट के मध्य, जहाँ अधिक संख्या में व्यक्ति निवास करते हो, वह जन स्थान **कुब्ज** कहलाता है।

८ पत्तन-जहाँ पर अन्य देशों का सामान मिलता है, जहाँ पर हर वर्ग व वर्ण के व्यक्ति निवास करते हैं, जहाँ दुकानें होती हैं, जहाँ रत्न, धन, अनाज, महीन वस्त्र व गंध का बहुत व्यवसाय होता है, जो समुद्र के किनारे स्थित होता है तथा जो तटों पर सुदूर तक फैला हो, वह **पत्तन** कहलाता है।

९ शिबिर-विद्वान कहते हैं कि **शिबिर**, शत्रु राजा के राज्य के समीप स्थित होता है, और यह युद्ध में प्रयुक्त होने वाली सभी वस्तुओं से युक्त होता है और यह सेना तथा सेनापति को आश्रय देता है।

१० सेनामुख-विद्वानों के अनुसार **सेनामुख** वह स्थान होता है, जहाँ हर वर्ग के लोग मिलकर रहते हैं। जहाँ राजा का भवन होता है। जिसकी सुरक्षा के लिए गढ़ की सेना भी नियुक्त की जाती है।

११ स्थानीय-स्थानीय वह नगर होता है, जिसे राजा द्वारा स्थापित किया जाता है, जो नदी या पर्वत के समीप स्थित होता है। जहाँ पर एक राजगृह भी होता है। जिसकी सुरक्षा के लिए भारी मात्रा में गढ़ की सेना को नियुक्त किया जाता है।

१२ द्रोणमुख-जिसे नदी के दाएँ या बाएँ दोनों किनारों पर बढ़ाया गया हो, (स्थापित किया गया हो), जहाँ पर व्यापारियों तथा अन्य का आना-जाना हो, जहाँ पर हर वर्ग व वर्ण के लोग निवास करते हो, उसे आचार्यों ने **द्रोणमुख** कहा है। द्रोणमुख पत्तन के समान होता है।

१३ कोत्मकोलक-ग्राम के समीप आश्रय के लिए जो स्थान होता है, उसे विडम्ब कहते हैं। जंगल के मध्य में, आश्रय के लिए जो स्थान होता है, उसे **कोत्मकोलक** कहते हैं।

१४ निगम -वह नगर होता है, जहाँ चारों वर्ण के लोग रहते हैं, जहाँ हर वर्ग के लोग मिलकर रहते हैं व जहाँ पर कई शिल्पकार भी रहते हैं।

१५ स्कन्धावार- स्कन्धावार वह स्थान होता है, जिसके पास जंगल या नदी होती है। जहाँ पर भारी जनसंख्या होती है, तथा जो एक राजगृह से युक्त होता है, जो एक चेरीका (एक उपनगर जिसमें ब्राह्मण रहते हैं) के बाद में होता है।

विश्लेषणः-इस प्रकार से हमने देखा कि विभिन्न प्रकार के नगर होते हैं। इन नगरों के भेद उसके उपयोग, संख्या तथा स्थान आदि के अनुसार होते हैं। आधुनिक समय में भी जब नगर बनाना हो तो इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर नगर निर्माण किया जा सकता है। प्रत्येक प्रकार के नगर के लिए अलग-अलग प्रकार का नियोजन (प्लानिंग) होती है। जब हम किसी बड़े नगर जैसे राजधानी आदि का निर्माण करते हैं तो उसके लिए व्यापक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर प्लानिंग की जाती है। जैसे चक्रवर्ती एक प्रकार का राजा होता है। राजाओं की आठ श्रेणियाँ

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में बताई गई है। जब हम ऐसे नगर का निर्माण करेंगे जिसमें चक्रवर्ती राजा भी रहता हो तो उसे उसकी आवश्यकता के अनुरुप निर्मित करेंगे कि विशेष अवसर पर अन्य राजा महेन्द, नरेन्द्र आदि के आने पर उनके निवास आदि की भी उचित व्यवस्था हो।

इसी प्रकार प्रत्येक नगर के लिए मुख्य मार्ग, उपमार्ग, यान-मार्ग, उनके मान आदि को भी ध्यान में रखा जाता है।

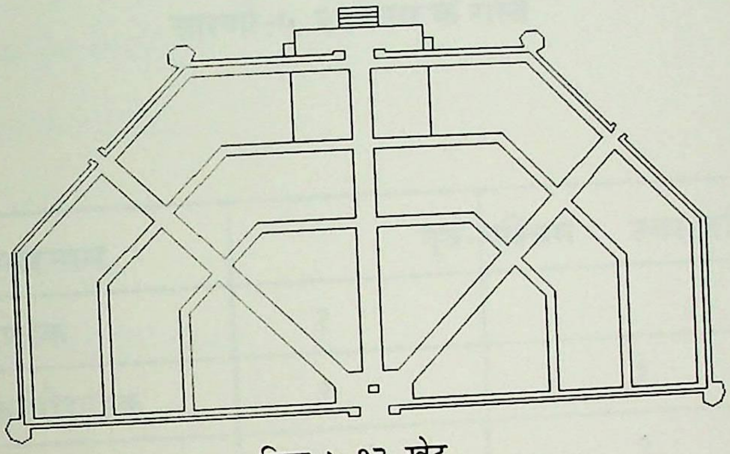

चित्र-५.१३ खेट

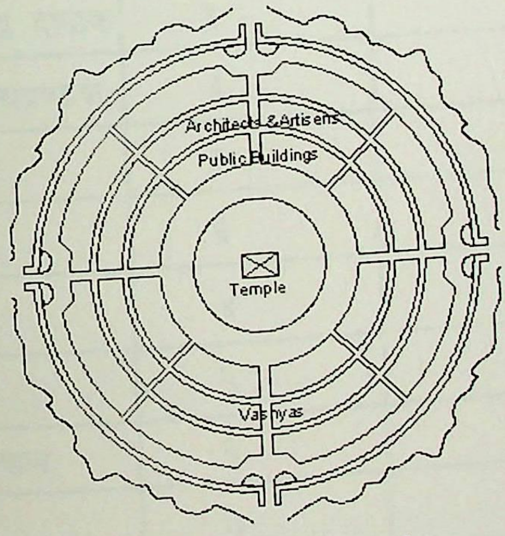
Architects & Artisens
Public Buildings
Temple
Vaishyas

चित्र- ५.१४ खर्वट

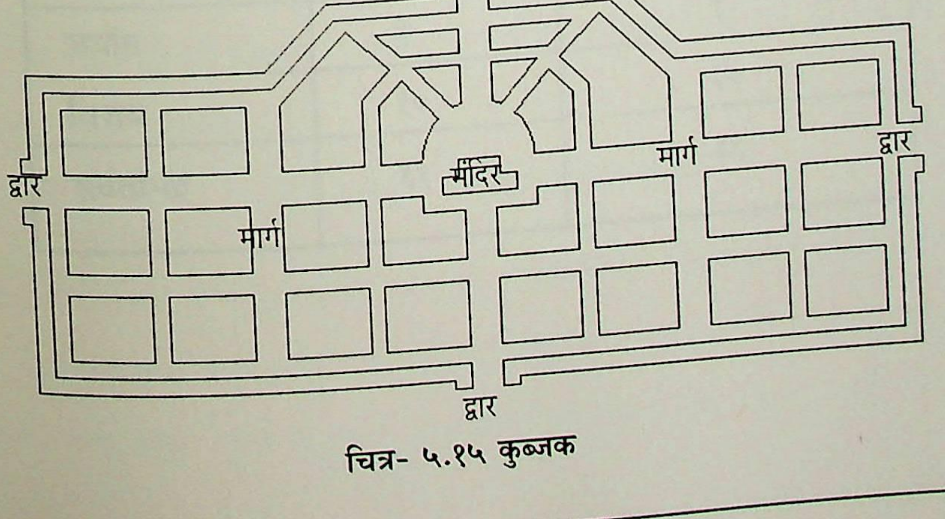
मार्ग
द्वार
मंदिर
द्वार
मार्ग
द्वार

चित्र- ५.१५ कुब्जक

५.४.९ दुर्ग

सात प्रकार के दुर्ग बताए गए हैं- गिरी दुर्ग, वन दुर्ग, जल दुर्ग, पंक (कीचड़) दुर्ग, ईरिण (मरुभूमि) दुर्ग, दैवत (प्राकृतिक) दुर्ग, मिश्र दुर्ग।

गिरी दुर्ग, पर्वतों के मध्य में या पर्वत के पार्श्व (बाजू या किनारे) में या पर्वत के शिखर (चोटी) पर होता है। **वन** दुर्ग एक अजल (सूखी जगह) पर या वन में छुपा होता है।

सारणी-५.२२ नगर के रास्ते

नगरनाम	पूर्व-पश्चिम	उत्तर-दक्षिण
दण्डक	१	
कर्तरीदण्डक	१	१
बाहुदण्डक	२	१
कुटिकामुख दण्डक	१	१
कलकाबन्धदण्डक	३	३
वेदीभद्रक	३	
स्वस्तिक	६	६
भद्रक	४	४
भद्रमुख	५	अनेक
भद्र कल्याण	६	अनेक
महाभद्र	७	अनेक
सुभद्रा	८	८
जयांग	९	९
विजय	१०	१०
सर्वतोभद्र	११	११

मिश्र दुर्ग वह होता है, जिसमें उपरोक्त दोनों प्रकार के दुर्गों की विशेषताएँ या लक्षण पाए जाते हों।

दैव दुर्ग में प्राकृतिक सुरक्षा होती है।

पंक दुर्ग में कीचड़ का चारों ओर परकोटा होता है।

जल दुर्ग, नदी के मध्य में या सागर के मध्य में होता है।

ईरिण (रेत दुर्ग) (रेगिस्तान दुर्ग) ऐसे स्थान पर होता है, जो वृक्ष व पानी से रहित होता है।

परकोटों का निर्माण बारह आकार में से एक आकार का होता है-

- वर्ग (वर्गाकार),
- वृत्ताकार,
- अंडाकार,
- आयताकार,
- नन्द्यावर्त के आकार,
- मुर्गे का आकार,
- हाथी की temporal bone (हाथी कुंभ) आकार,
- नाग की कुंडली के समान,
- जिसकी भुजाएँ वक्र हो,
- त्रिभुजाकार,
- अष्टभुजाकार या
- अर्धवृत्ताकार।

ईंट से बने हुए परकोटे की ऊँचाई = बारह हस्त

मोटाई = २ x ऊँचाई

परकोटे की दीवार के तल में एक गुज़रने लायक रास्ता होता है। परकोटों के अंदर की ओर सभी ऊँचे बिंदुओं पर हर प्रकार के युद्ध के यन्त्रादि होते हैं। चारों ओर एक परिखा होती है।

भूमि पर परकोटों की दीवारों के कोने, ऊँचे महल (tower) से जुड़े हुए होते हैं तथा उसके बाद चारों ओर शिबिर होते हैं।

दुर्ग में भण्डारण तथा मन्दिर

दुर्ग में कई प्रकार के (भिन्न प्रकार) के लोग रहते हों व जहाँ पर राजा का महल हो। जहाँ पर गज़, अश्व, युद्ध रथ तथा पैदल सेना भारी संख्या में हों। जहाँ पर अक्षुण्ण मात्रा में अन्न, तेल, शीरा, नमक, औषधि, गंध, ज़हर, साथ ही धातुएँ, लकड़ी का कोयला, स्नायु (gut), हाथी दाँत, बाँस, तृण,

चर्म, शाक, छाल युक्त वृक्ष तथा कड़ी लकड़ियाँ आदि हों।

दुर्ग को दुर्गम, आक्रमण से सुरक्षित तथा अभेद्य होना चाहिए। दुर्ग सुरक्षा तथा विजय के लिए बनाया जाता है। इसे शत्रुओं के लिए अभेद्य ही होना चाहिए।

इंद्र, वासुदेव, गुहा, जयंत, वैश्रवण, अश्विनी, श्री, मदिर, शिव, दुर्गा और सरस्वती, इन सभी देवताओं का पूजन व सम्मान (निवेश) भित्ति (प्राकार) के अंदर होना चाहिए तथा दुर्ग के निर्माण के समय इन सभी का ध्यान रखना चाहिए।

विश्लेषणः- दुर्ग के लिए उचित आकार व स्थान का प्रयोग करने पर दुर्ग दुर्जय हो जाता है। आपातकालीन परिस्थितियों का सामना करने के लिए बताया गया है कि दुर्ग में जल, भोजन, औषधि आदि की पर्याप्त व्यवस्था होना चाहिए।

विद्वानों ने इस प्रकार से **सोलह** प्रकार के नगरों का वर्णन किया है।

अन्तरापण (बाज़ार)

विश्लेषणः-

इस प्रकार से हमने इस अध्याय में देखा कि नगर का नियोजन करते समय अनेकानेक विषयों का ध्यान रखा जाता है।

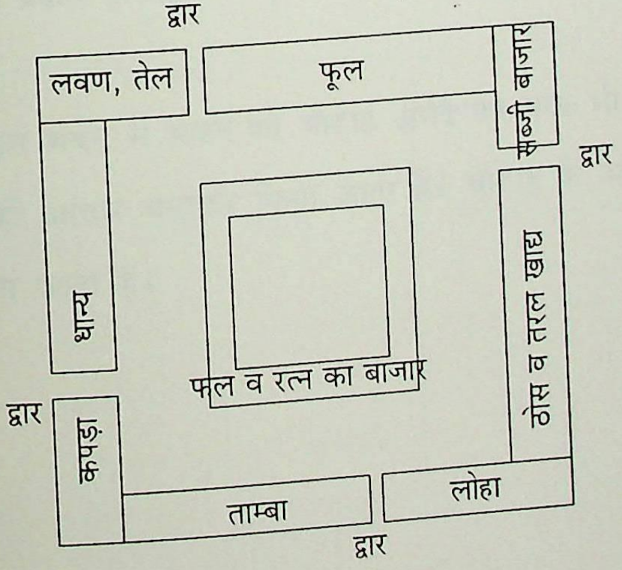
द्वार
लवण, तेल
फूल
मछली बाजार
द्वार
धान्य
ठोस व तरल खाद्य
फल व रत्न का बाजार
द्वार
कपड़ा
ताम्बा
लोहा
द्वार

चित्र-५.१६ नगर

इस अध्याय में नगर के विभिन्न मान, उसमें रहने वाले व्यक्ति के अनुसार नगर का मान व संज्ञा, नगर के प्रकार, मार्ग आदि के बारे में विस्तार से प्रकाश डाला है।

नगर की सुरक्षा, उपयोग में आने वाली वस्तुओं का उचित भंडारण, विभिन्न उपयोग के अनुसार प्लानिंग, बाजार, आमोद-प्रमोद के साधन आदि सब बातों को ध्यान में रखकर नगर का नियोजन किया जाता है। इसी अध्याय में temporary रूप से बसाए जाने वाले नगरों का उल्लेख भी मिलता है। दुर्ग आदि को सामान्य रूप से बताया गया है।

अध्याय ११ में एक से बारह मंजिला भवन की चौड़ाई, लम्बाई व ऊँचाई के मान का वर्णन किया गया है। इसमें चौड़ाई व ऊँचाई के अनुपात, शान्तिक आदि का भी वर्णन मिलता है, जो नाम है, वहीं गुण या प्रापर्टी उत्पन्न होती है।

भवन चौकोर, आयताकार, ग़ोल या अंडाकार, अष्टकोण, छह कोण वाला, आयताकार कोने पर ग़ोल होता है।

ऊँचाई = २ या १.५ या १.२५ (चौड़ाई)

ऊँचाई का मान = जन्म (plinth) **(अधिष्ठान** (base) **से स्तूपि के अंत तक**

विश्लेषणः- इस अध्याय में १ मंजिल से १२ मंजिल तक के भवनों के मान का वर्णन किया है। यह बताया है ऊँचाई व चौड़ाई के अनुपात से भवन के गुण निर्धारित किए जा सकते हैं। जैसे जिस भवन की ऊँचाई व चौड़ाई का अनुपात १०ः७ का होता है उस भवन में निवास करने से शान्ति प्राप्त होती है। इसी प्रकार ऊँचाई व चौड़ाई का अनुपात ९ः६ का होने पर पौष्टिकता प्राप्त होती है।

इसके अतिरिक्त इस भवन में भवन की चौड़ाई आदि का मान भी बताया है। भवन का निर्माण, उसकी चौड़ाई को आधार बनाकर किया जाता है। चौड़ाई के अनुपात से लम्बाई तथा ऊँचाई का निर्धारण किया जाता है।

सारणी-५.२३ चौड़ाई व ऊँचाई का अनुपात

नाम	ऊँचाई	चौड़ाई	ऊः चौ
शान्तिक	१०	७	१०:७
पौष्टिक	९	६	९:६
जयद	८	५	८:५
अद्भुत	७	४	१.५:१
सर्वकामिक	६	३	२:१

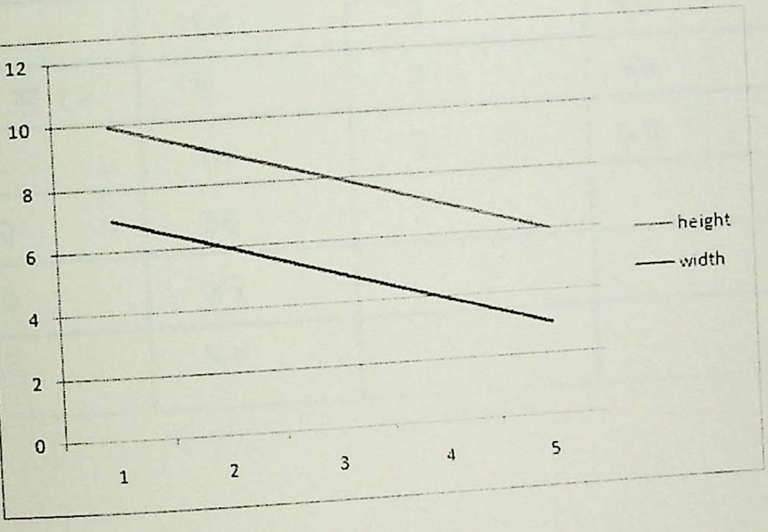

सारणी-५.२५ एक से पांच मंज़िला भवन का मान

मंज़िल	प्रारंभ	बढ़ाते हुए	चौड़ाई (हस्त)
१	३	२	३, ५, ७. ९
	४	२	४, ६, ८, १०
२	५	२	५, ७, ९, ११,
	६	२	६, ८, १०, १२,
३	७	२	७, ९, ११, १३, १५
	८	२	८, १०, १२, १४, १६
४ या ५	९	२	९, ११, १३, १५, १७
	१०	२	१०, १२, १४, १६, १८

सारणी-५.२४ चार से सोलह मंज़िल भवन का मान

मंज़िल	प्रारंभ	बढ़ाते हुए	हस्त तक
४ से १२	१७	२	६९ तक
	१८	२	७० तक
	२३	३	१०१
	२४	३	१०२
	१३	२	६५
	१४	२	६४
	१७	२	९५
	१८	२	९६
५ से १२	९	२	५५
	१०	२	५६
१२	३६		
१३	४२		
१६	५०		

सारणी-२६ मंज़िला भवन व उपयोग

मंज़िला	उपयोग
३ से ४	वैश्य, शूद्र
५	पट्टभृत
७ से ११	चक्रवर्ती, युवराज व राजा
९, १०	ब्राह्मण
११	राक्षस, गंधर्व, यक्ष
१२	सार्वभौम राजा

राजवेश्म विधान नामक अध्याय २९ में राजा के महलों का वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम नगर के अनुपात में महल का मान, तथा नगर में उसकी दिशा बताई गई है। मानसार ग्रन्थ में चक्रवर्ती आदि ८ राजा बताए गए हैं। इस ग्रन्थ में राजाओं के महल का विन्यास (बसाहट, planning) बताया गया है। गोपुर (परकोटे का द्वार), खाई के साथ साथ महल के पाँचों परकोटों के अन्दर किन-किन लोगों को कहाँ बसाना चाहिए इसका उल्लेख किया गया है। कौन सा कार्य किस परकोटे के किस पद में करना चाहिए इसे भी बताया गया है।

इस अध्याय में हमें नगर नियोजन का वर्णन भी मिलता है। नगर में सेना की टुकड़ी, व्यापारी, कुआँ, बावड़ी, जलाशय, गोपुर का उल्लेख भी किया गया है। विभिन्न राजाओं एवं युवराज के महल, हस्तिशाला, अश्वशाला एवं अन्य का, अनेक पशु-पक्षी के स्थान को भी बताया गया है। विभिन्न कक्ष जैसे स्नान, अभिषेक, मन्त्रशाला किस प्रकार बनवाना चाहिए, यह सब कुछ विस्तार से बताया गया है।

५.४.१० भवन का मान दंड में

चौड़ाई

चौड़ाई	१४४ १४० १३६ १३२ १२८ ११२ (दंड)
बड़े महल की चौड़ाई	१४४ से ५२८ (दंड)

लंबाई

लंबाई = २ या १.७५ या १.५ या १.२५ चौड़ाई

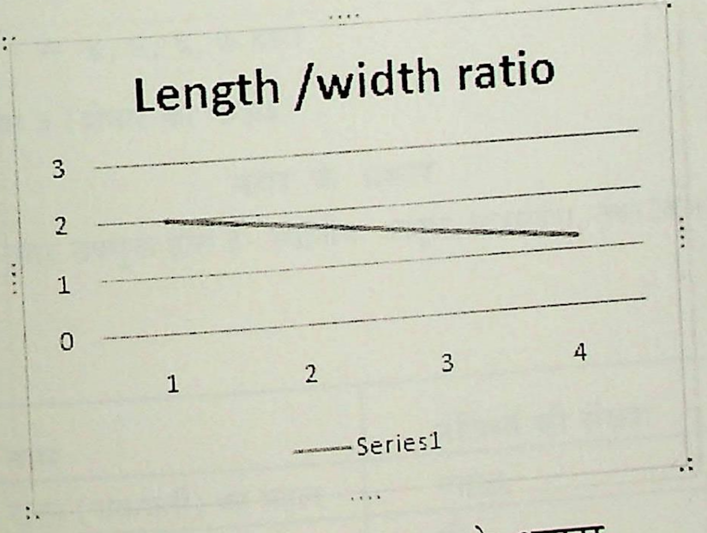

५.४.११ साला (enclosure) के आकार

साला (enclosure) के आकार बारह बताए गए हैं-चौकोर, ग़ोल, आयत, शकट, नन्द्यावर्त, मुर्गा, हाथी, कुम्भ, स्वस्तिक, एकदम ग़ोल, मृदंग, या concave आकार का होता है। एक मान का प्रयोग करना चाहिए।

५.४.१२ खाई

बाहरी दीवार (परकोटे) के बाहर खाई (moat) होती है। इसकी चौड़ाई, छह से नौ दण्ड तक होती है।

खाई की चौड़ाई = ६-९ दंड

खाई के निचले भाग की चौड़ाई = १/८ खाई के ऊपरी भाग की चौड़ाई

५.४.१३ छोटे महल

पहला परकोटा

मान	हस्त
दीवार चौड़ाई	३ हस्त
दीवार ऊँचाई	११ हस्त
मार्ग	७ हस्त

दूसरा परकोटा

मान	हस्त
दीवार चौड़ाई	१ दंड (४ हस्त)
दीवार ऊँचाई	१०.५ हस्त
मार्ग	९ हस्त

५.४.१४ परकोटा

दीवार चौड़ाई	१.२५ दंड (५ हस्त)
दीवार ऊँचाई	१५ हस्त
मार्ग	३ दंड (१२ हस्त)

५.४.१५ नगर की दीवार

नगर की दीवार की चौड़ाई = २ दंड

= ४, ५, ६, ७ हस्त

दीवार की ऊँचाई = २ या ३ (दीवार की चौड़ाई)

नगर के प्रकार

राजा के लिए ४ प्रकार नगर उपयुक्त होते हैं- स्थानीय, आहूत, यात्रामणि, तथा विजय।

नाम	मंज़िलों की संख्या
राजा (चक्रवर्ती) का महल	ग्यारह
राजा यदि ब्राह्मण हो तो	नौ
क्षत्रिय हो तो	सात
मण्डलेश का महल	छह
युवराज का महल	पाँच
वैश्यों का घर	चार
सेनापति का घर	चार
शूद्रों के घर	एक, दो या तीन
सामंत प्रमुख के घर	पाँच

पहला परकोटा

पद	स्थान
आर्य	द्वारहर्म्य
इन्द्र	आँगन
सूय	आँगन
भृश	गोल भवन
अन्तरिक्ष	वृत्त
पूषा	दक्षिणा
आँगन	वितथ
गृहक्षत	आँगन
यम	सेना
गन्धर्व	नृत्य के लिए रंग (stage)
भृंगराज	अश्वशाला
मृष	सूतिका
पितृ	हर्म्य (reception)
दौवारिक	जललीला
सुग्रीव	जललीला
पुष्पदन्त	खलूरिका (annexe)
वरुण	संकरालय
असुर	संकरालय
शोष	संकरालय
मित्र	संकरालय
रोग	बन्द कमरे
वायु	बन्द कमरे
नाग	चतुश्शाल भवन
मुख्य	कन्या (young girl)
भल्लाट	औषधि कक्ष
मृग	मालिश
आप	गर्म तथा ठंडा पानी
आपवत्स	गर्म तथा ठंडा पानी
ईशान	इष्ट देवता
जयन्त	इष्ट देवता
महेन्द्र	भोजन स्थान
महीधर	भोजन स्थान
मरीच	भोजन स्थान

द्वितीय आवरण

पद	स्थान
इन्द्र	छत्र व भेरी
आदित्य	छत्र व भेरी
सत्य	दान के लिए कमरा
भृश	प्याऊ
अन्तरिक्ष	ग्राइन्डिंग(चक्की)
अग्नि	ग्राइन्डिंग(चक्की)
पूषाण	अश्वशाला
साविन्द्र	अश्वशाला
वितथ	अश्वशाला
राक्षस	शस्त्रशाला
यम	रसोईघर
गन्धर्व	सेनापति का कमरा
भृंगराज	सेनापति का कमरा
मृष	फ़क़ीर, इंद्रजाल
नैर्ऋति	भैंस स्थान
दौवारिक	भैंस स्थान
सुग्रीव	भैंस स्थान
पुष्पदन्त	दानशाला
नाग	लंबा सरोवर
रुद्र	लंबा सरोवर
मुख्य	कन्या तथा धात्री
भल्लाट	कंचुकी
सोम	कंचुकी
मृग	कंचुकी
अदिति	बाँझ स्त्री
दिति	धात्री
ईश	धात्री
पर्जन्य	धात्री
आप	जलाशय
आपवत्स	जलाशय
जयंत	दक्षिणा शाला
महेन्द्र	दान देने का कमरा

५.४.१६ तीसरा आवरण

पद	स्थान
इन्द्र	शास्त्र का कमरा
सूर्य	गान (गणित)
सत्य	(वेद) अध्ययन
भृश	वेद अध्ययन
मुख्य	रसोई
अन्तरिक्ष	रसोई
पूषाण	बछड़े सहित गाय
अग्नि	बछड़े सहित गाय
वितथ	चमड़ा का स्थान
गृहक्षत	हाथी का स्थान
यम	चित्र तथा शिल्प
गन्धर्व	मसालेदार सामान
भृंगराज	मसालेदार सामान
मृष	ईंधन
पितृ	दान का कमरा
दौवारिक	दान का कमरा
सुग्रीव	कुश्ती
पुष्पदन्त	चार कोष्ठक
वरुण	युवराज का महल
असुर	चन्द्रशाला
शोष	ऊँट का स्थान
रोग	गधे तथा ऊँट
वायु	वापी (बावड़ी)
नाग	फूलों का सरोवर
मुख्य	हाथी का स्थान
भल्लाट	अश्वशाला
सोम	प्रसूतिका
मृग	लम्बे जलाशय
आदित्य	लम्बे जलाशय
दिति	लम्बे जलाशय
ईशान	लम्बे जलाशय
जयन्त	लम्बे जलाशय

५.४.१७ पद

पद	स्थान
जयन्त	आँगन
सूर्य	आँगन
भृश	आँगन
अग्नि	रसोई
वितथ	मूलकोश
गृहक्षत	द्वारप्रासाद
यम	योषिता
भृङ्ग	योषिता
पितृ	योषिता
सुग्रीव	नृत्तशाला
वारुण	राजा का घर
शोष	अन्तःपुर
वायु	जलाशय
मुख्य	वास(निवास)
सोम	तुलाभार
दिति	सोना व रत्न
ईश	वापी

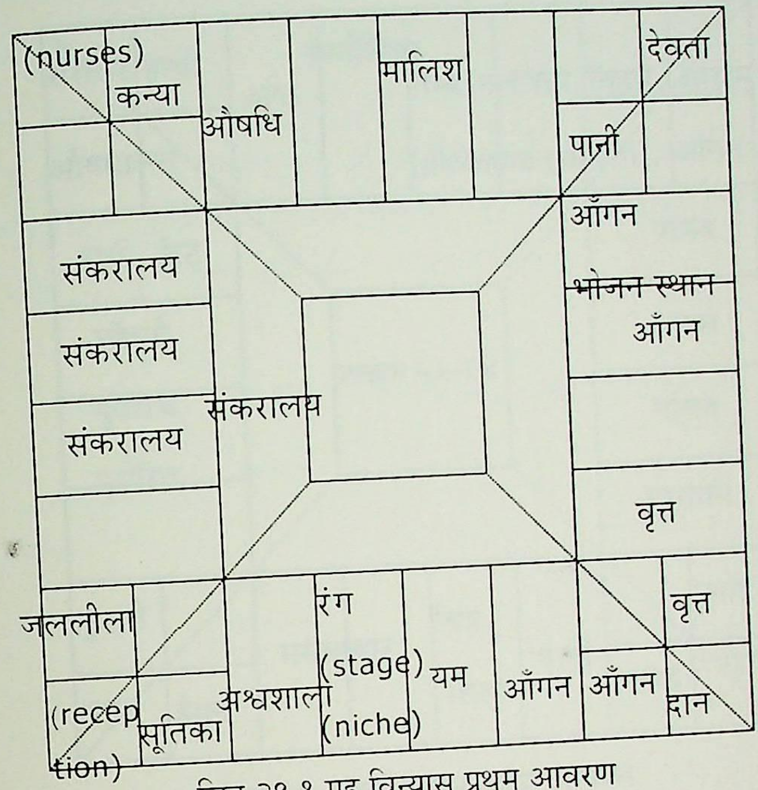
(nurses)
कन्या
औषधि
मालिश
देवता
पानी
आँगन
भोजन स्थान
आँगन
संकरालय
संकरालय
संकरालय
संकरालय
वृत्त
वृत्त
जललीला
(reception)
सूतिका
अश्वशाला
रंग
(stage)
(niche)
यम
आँगन
आँगन
दान

चित्र २९.१ गृह विन्यास प्रथम आवरण

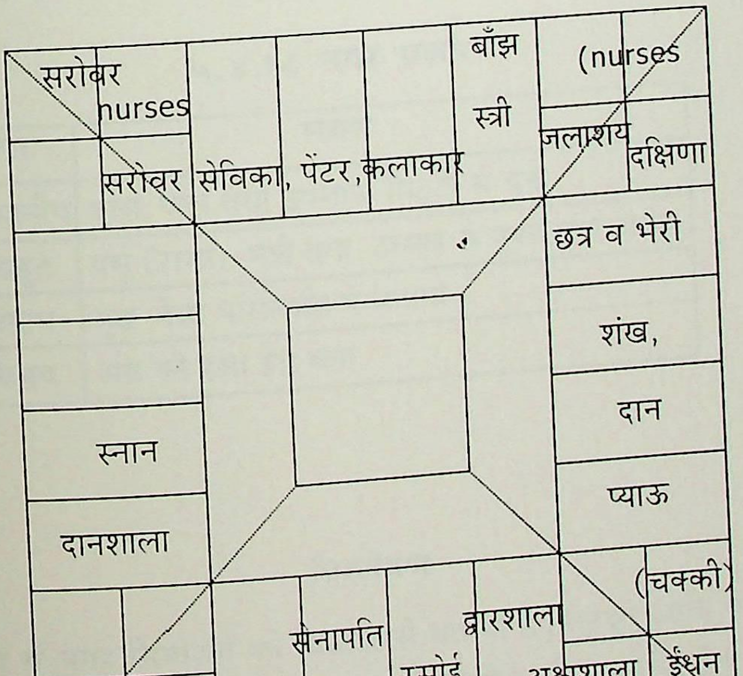
सरोवर
nurses
सरोवर
सेविका, पेंटर, कलाकार
बाँझ
स्त्री
(nurses
जलाशय
दक्षिणा
छत्र व भेरी
शंख,
दान
प्याऊ
स्नान
दानशाला
(चक्की)
ईंधन
अश्वशाला
द्वारशाला
रसोई
सेनापति
सेनापति
भैंस

चित्र२९.२ गृहविन्यास द्वितीय आवरण

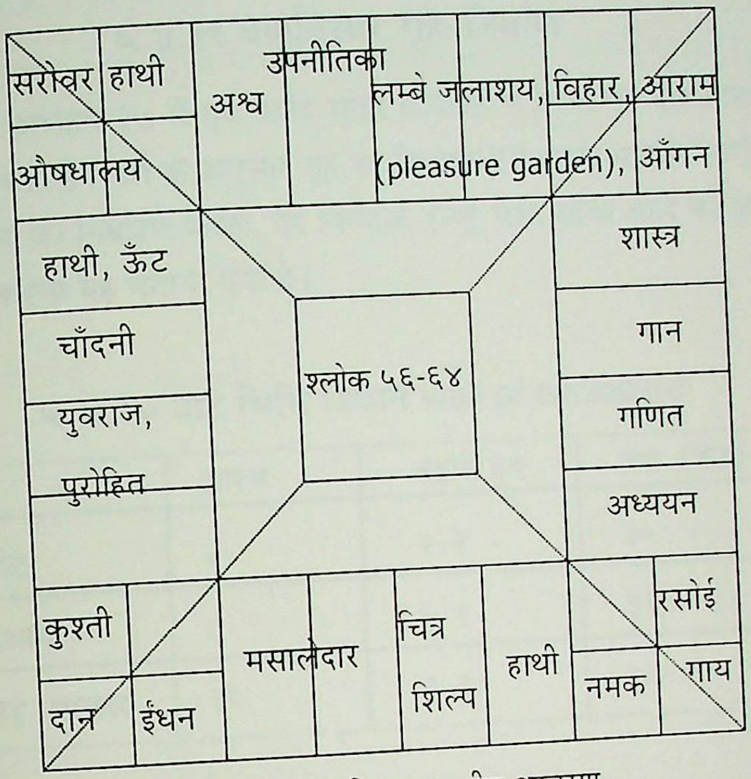
सरोवर
हाथी
अश्व
उपनीतिका
लम्बे जलाशय, विहार, आराम
(pleasure garden), आँगन
औषधालय
हाथी, ऊँट
चाँदनी
युवराज,
पुरोहित
शलोक ५६-६४
शास्त्र
गान
गणित
अध्ययन
रसोई
गाय
नमक
हाथी
चित्र
शिल्प
मसालेदार
कुश्ती
दान
ईंधन

चित्र २९.३ गृहविन्यास तृतीय आवरण

५.४.१८ नगर प्रकार

नगर	लक्षण
स्थानीय	घास, जल तथा उपजाऊ मिट्टी से युक्त
आहूत	प्रभु (राजा), मंत्री तथा उत्साह से युक्त तथा अजेय
संग्राम	युद्ध जैसी परिस्थिति में बनाया
विजय	अग्र की रक्षा हेतु बना

विश्लेषण

इस अध्याय में नगर नियोजन को विस्तार से बताया है। सुरक्षा आदि की दृष्टि से नगर के विभिन्न परकोटे के मान, दीवार की मोटाई, नगर के नियोजन को बताया है। यह नगर नियोजन पद के अनुसार, परकोटे के अनुसार तथा युद्ध आदि परिस्थिति के अनुसार बताया है। जिस पद में जिस प्रकार की ऊर्जा होती है, उसके अनुसार वहाँ बसाहट की जाती है।

५.४.१९ वर्णानुसार गृह-निर्माण

चतुर्गृह नामक अध्याय २७ में पूर्व आदि मुख्य दिशाओं में स्थित गृह को अन्नालय, धान्यालाय, धनालय तथा सुखालय कहा है। वर्ण के अनुसार गृह का विन्यास एवं उसके मान का वर्णन मिलता है। घर बनाते समय उसकी सीमा का निर्धारण करना, पद विन्यास, रज्जू, वंश, सन्धि आदि को ज्ञात कर मर्म स्थान का त्याग कर निर्माण करना यह बताया गया है।

५.४.२० वाट भित्ति विधान wall of enclosure

	आरंभ	बढ़ाते हुए	तक (दंड)
छोटा	४	२-२	३०
मध्यम	८	२-२	३२
बड़े आकार	३२	२-२	१००

दीवार की ऊँचाई	९ ८ ७ ६ (हस्त)
मोटाई	१/३, १/४ ((ऊँचाई)
मोटाई (ऊपरी भाग)	३/४ (निचले भाग के)
पाद के मध्य की दूरी	= १/३ या १/५ (गृह की चौड़ाई)
गृह की चौड़ाई जितने हस्त हो	= उतने अंगुल स्तंभ का व्यास होना चाहिए।

वर्णानुसार लंबाई-चौड़ाई अनुपात

वर्ण	ल	चौ
ब्राह्मण	१	१
क्षत्रिय	१	१.१२५
वैश्य	१	१.१६६६७
शूद्र	१	१.२५

द्वारमान

द्वार की ऊँचाई = ६.५/८ (स्तंभ की ऊँचाई)

(द्वार की ऊँचाई के) आधे को नौ भागों में विभाजित करें, आधा भाग छोड़कर शेष द्वार की चौड़ाई होती है।

द्वार की ऊँचाई = ४/५ (स्तंभ की ऊँचाई)

द्वार स्थान

१३२ राक्षस, पुष्पदन्त, भल्लाट या महेन्द्र के पद में द्वार शुभ है।

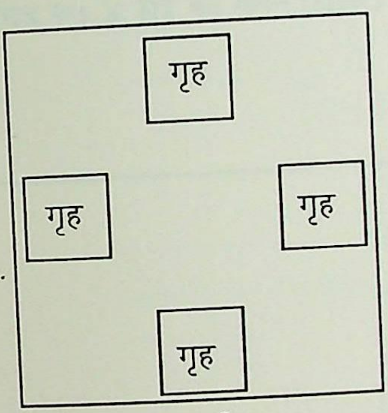

चित्र २७.१ भिन्न गृह

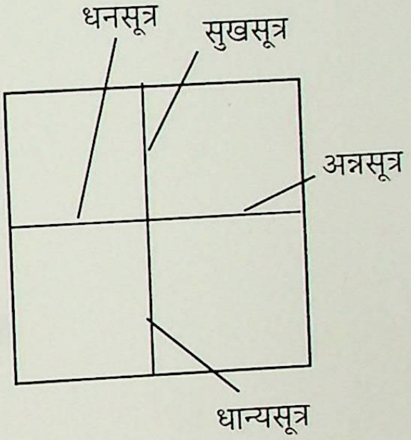
धनसूत्र
सुखसूत्र
अन्नसूत्र
धान्यसूत्र

चित्र २७.३ सूत्र विन्यास

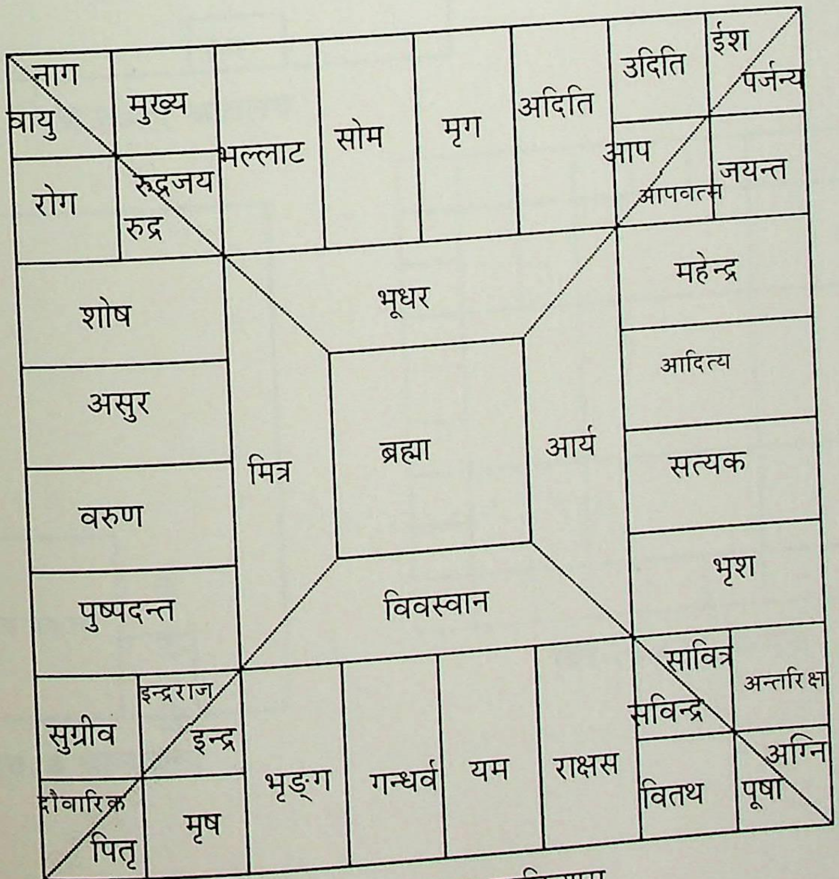
नाग
वायु
मुख्य
रोग
रुद्रजय
रुद्र
भल्लाट
सोम
मृग
अदिति
उदिति
ईश
पर्जन्य
आप
आपवत्स
जयन्त
शोष
भूधर
महेन्द्र
आदित्य
असुर
मित्र
ब्रह्मा
आर्य
सत्यक
वरुण
भृश
पुष्पदन्त
विवस्वान
सावित्र
अन्तारिक्ष
सविन्द्र
अग्नि
इन्द्रराज
सुग्रीव
इन्द्र
भृङ्ग
गन्धर्व
यम
राक्षस
वितथ
पूषा
दौवारिक
मृष
पितृ

चित्र २७.२ मण्डूक पदविन्यास

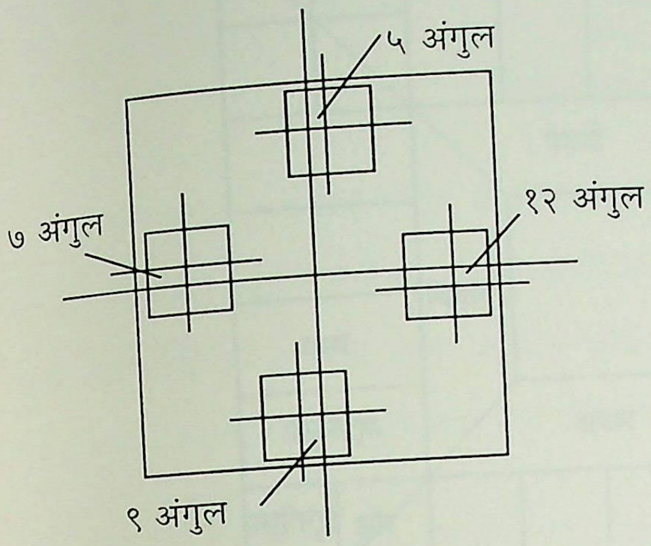
५ अंगुल
१२ अंगुल
७ अंगुल
९ अंगुल

चित्र २७.४ सूत्र का गमन (shift)

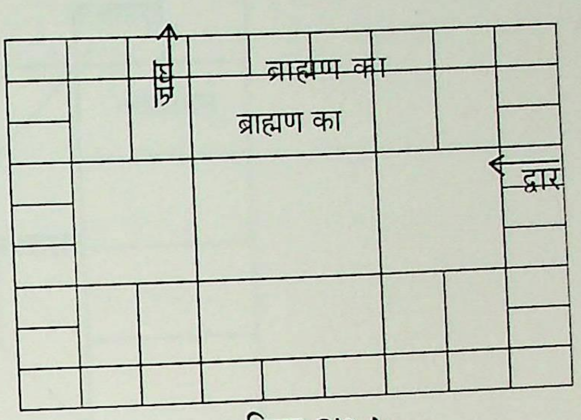
द्वार
ब्राह्मण का
ब्राह्मण का
द्वार

चित्र २७.५

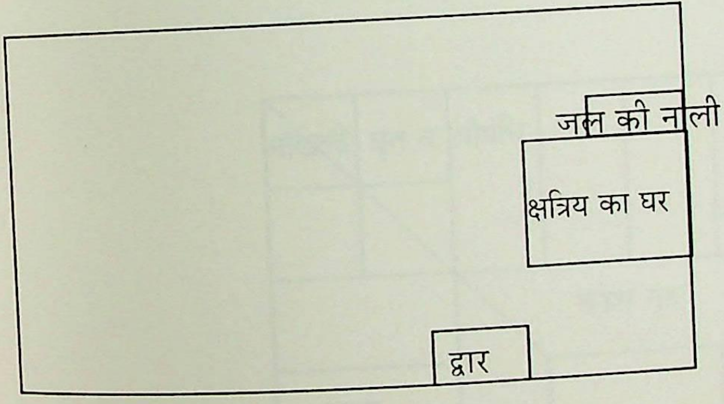
जल की नाली
क्षत्रिय का घर
द्वार

चित्र २७.६ अन्नालय

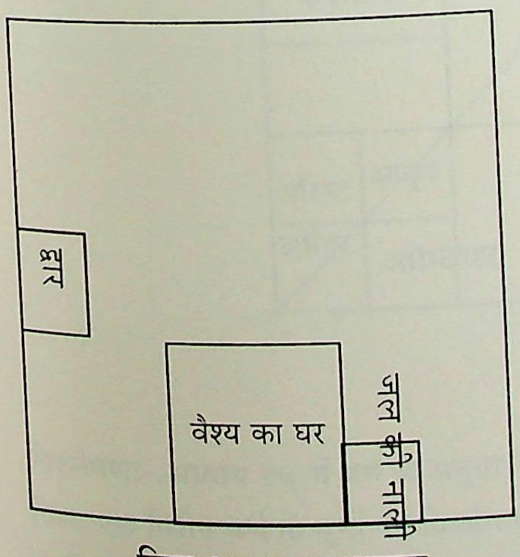
द्वार
वैश्य का घर
जल की नाली

चित्र २७.७ धान्यालय

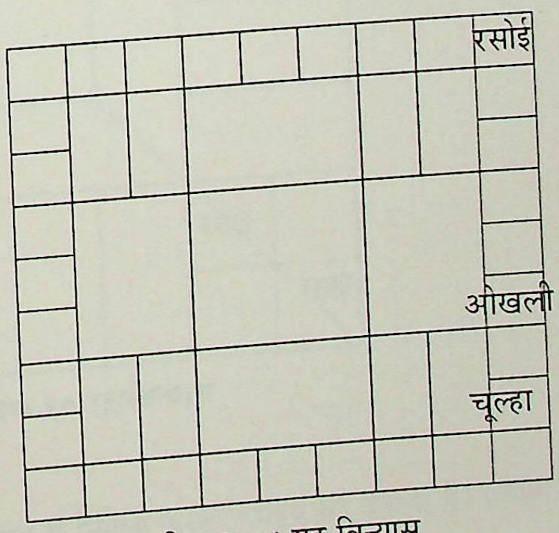

चित्र २७.८ गृह-विन्यास

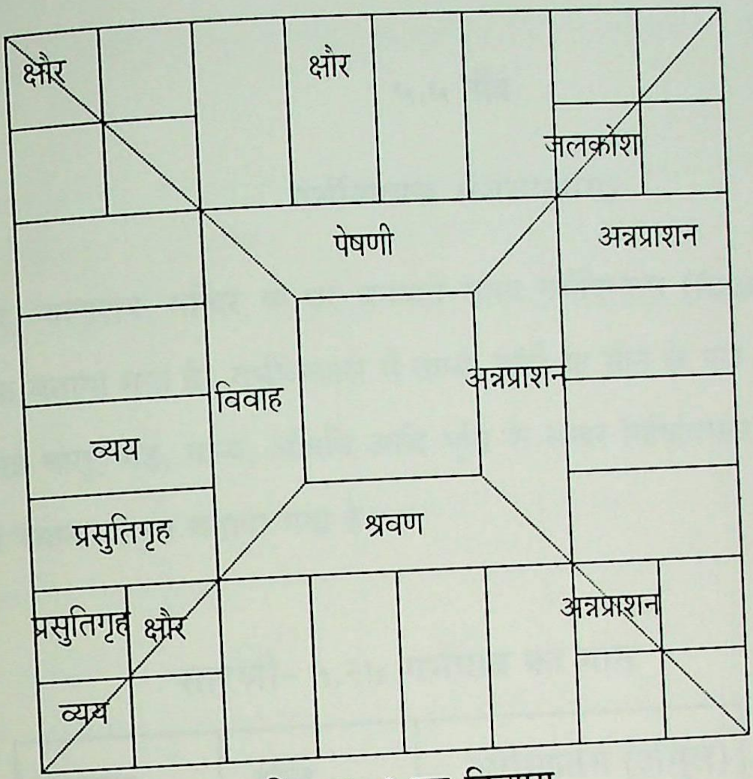
क्षौर
क्षौर
जलक्रोश
पेषणी
अन्नप्राशन
विवाह
अन्नप्राशन
व्यय
प्रसुतिगृह
श्रवण
अन्नप्राशन
प्रसुतिगृह
क्षौर
व्यय

चित्र २७.९ गृह-विन्यास

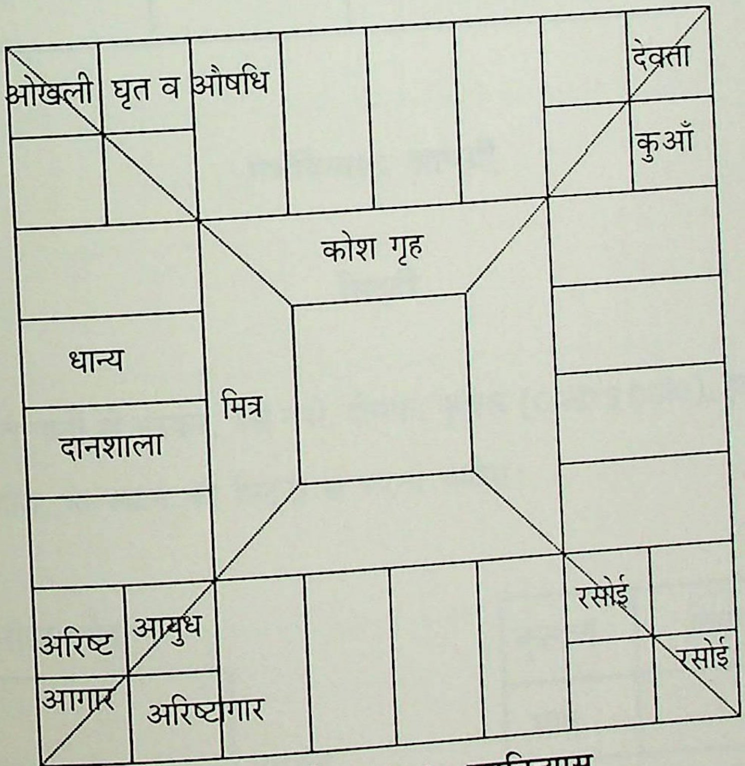
ओखली
घृत व औषधि
देवता
कुआँ
कोश गृह
धान्य
मित्र
दानशाला
रसोई
अरिष्ट
आयुध
रसोई
आगार
अरिष्टागार

चित्र २७.१० गृहविन्यास

विश्लेषणः- अध्याय २७ में वर्ण के अनुसार किस दिशा में निवास करना चाहिए यह बताया है। प्रत्येक मुख्य दिशा एक विशेष वर्ण के गुणों को विकसित करने में सहायक होती है। इसमें बताया गया है कि जब ब्राह्मणों के लिए निवास उत्तर दिशा में बनाया जाता है तो उसका द्वार पूर्व दिशा में महेन्द्र के पद में होता है। उसके पश्चात् प्रत्यक्षबाहु प्रवेश शुभ कहा है। इसी प्रकार क्षत्रिय के लिए पूर्व दिशा में वास तथा गृहक्षत (राक्षस) से प्रवेश करने पर वह प्रत्यक्षबाहु प्रवेश कहा जाता है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में वैश्य तथा पश्चिम शूद्र का वास शुभ बताया है। इसके अतिरिक्त पदानुसार उसका उपयोग भी बताया है।

५.५ नींव

गर्भविन्यास (शिलान्यास)

ग्राम, नगर, जलाशय, मन्दिर या घर बनवाते समय गर्भविन्यास (foundation deposits) अत्यन्त आवश्यक बताया गया है। गर्भविन्यास में ताम्बे, चाँदी या सोने के पात्र में विभिन्न द्रव्य, सोना, चाँदी आदि, विभिन्न धातु, जड़, धान्य, औषधि आदि भूमि के अन्दर विधिविधान से पूजा कर रखे जाते हैं। गर्भ से रहित स्थान अशुभ बताया गया है।

सारणी- ५.२७ गर्भपात्र का मान

आरम्भ	वृद्धि	अधिकतम (अंगुल)
३ (४)	२-२	२५ (२६)

गर्भविन्यास सामग्री

मिट्टी

इसके पश्चात पानी से भरकर, इसे नदी, दीमक, कुलिर (crab's hole), हल स्थान, समुद्र, बैल के सींग, हाथी के दाँत, के स्थान की मिट्टी से भरना चाहिए।

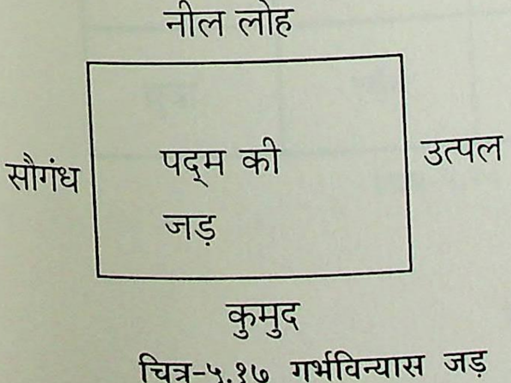

चित्र-५.१७ गर्भविन्यास जड़

कुलत्थ	तिल	शाली
माष		ब्रीहि
मुद्ग	कंकु	कोद्रव

चित्र-५.१८ गर्भविन्यास धान्य

यह उपपीठ (२५ कोष्ठ) के (पद विन्यास) के अनुसार होता है व उसमें २५ देवता स्थापित करते हैं।

लोह-कोद्रव	अंजन	पारा-तिल	दरद	सोना-शालि
गैरिक	महानील	मरकत	मोती	जातिहिंगुल्य
लोह-मूंग	इन्द्रनील	पद्मराग	विद्रुम	चाँदी-व्रीहि
राजावर्त	हीरा	वैडूर्य	पुष्पराग	हरिताल
सीसे-माष	माक्षिक	रांगा-कंकु	मनःशिला	ताम्बे-कुलत्थ

चित्र-५.१९ गर्भविन्यास (धान्य)

अपामार्ग	तक्कोल	एकपत्राब्ज	इना	विष्णुकांता
लताफल				चंदन
भृंगक				त्रिशूला
इलायची				अगर
ध्रुवा	लौंग	सहा	कपूर	श्री

चित्र-५.२० गर्भविन्यास वनस्पति

गर्भ स्थापना

शास्त्रविद स्थपति, सूत्रग्राही के साथ दूध (शुद्ध जल) पीकर व उपवास कर रात्रि वास करें। अगले दिन स्थपति मंजूषा में विभिन्न धान्यादि द्रव्य रखें। जैसा कार्य संपन्न करना हो, वैसा गर्भ विन्यास करना चाहिए। अपने चिह्न से युक्त गर्भ का न्यास करें।

गर्भविन्यास

देवता	गर्भ पदार्थ
सभी देवता	सोने, लोहा, ताँबे व चाँदी का बना स्वस्तिक
शिव	कपाल, शूल, खट्वांग, परशु, वृषभ, पिनाक (धनुष), हरिण व पाश
विष्णु	चक्र, शंख, कार्मुक (धनुष), दंड व तलवार
ब्रह्म	यज्ञोपवीत, ॐ, स्वस्तिक, व अग्नि, पद्म, कमंडल, अक्षसूत्र
षण्मुख	स्वस्तिक, अक्षमाला, शक्ति, चक्र, कुक्कुट, मयूर
सावित्र	कमल, अंकुश, पाश व सिंह
वज्रिण	वज्र, गज़, चक्र व चामर
पावक	जम्बू, स्वर्ण, मेष व शक्ति
नैॠति	लोह की तलवार
वरुण	मकर, पाश,
वायु	कृष्ण मृग,
तारापति	व्याल (चीता)
नरवाह	नर,
मदनालय	मकर,
विघ्नेश	टँक, अक्षमाला
आर्यक	ओम, वक्रदण्ड

वापी (जलस्थल) आदि के लिए गर्भ

कुआँ, बावड़ी, तालाब व सेतुबंध (bridge) के लिए पूर्व या उत्तर दिशा में, पुरुष अंजलि गहरा गड्ढा खोदकर, उसमें सोने से बनी मछली, केकड़ा, मेढक, साँप व मकर रखना चाहिए।

न्यास विधि

पूर्व कहे अनुसार स्थपति नवीन वस्त्र धारण कर युक्ति पूर्वक न्यास करें।

सारणी-२८ देवता एवं उनके अस्त्र-शस्त्र

देवता	अस्त्र-शस्त्र
सुगत	अश्वत्थ, कुंभ, सिंह, छत्र अश्वत्थ छत्र, कुंभ, सिंह
जिन	श्रीवत्स, अशोक, सिंह, कमंडल, अक्षमाला, मयूर पंख त्रिछत्र, कुंभ
दुर्गा	तोता, चक्र, सिंह, शंख, मृग, तलवार
क्षेत्रपाल	खट्वांग, तलवार व शक्ति
लक्ष्मी	पद्म,
सरस्वती	ॐ (तीन वर्ण का),
ज्येष्ठा	झंडा जिसमें कौआ बना हो तथा उत्पल
काली	प्रेत व कंकाल, त्रिशूल, व घंटा
सप्त मातृका	सोने के बने हुए हंस, बैल, मयूर, गरुड़, सिंह, हाथी व प्रेत
रोहिणी	कमल, अक्षमाला, व दीपक का न्यास करना चाहिए।
पार्वती	दर्पण व अक्षमाला,
मोहिनी	अक्षमाला व पूर्ण कुंभ

सारणी-५.२९ मनुष्य के लिए गर्भविन्यास

ब्राह्मण	यज्ञाग्नि,यज्ञोपवीत, बरतन, बाईं ओर कुंभ (कलश) व दंत काष्ठ, स्वस्तिक
क्षत्रिय	चक्र, शंख, धनुष, दंड, खड्ग, हाथी, सोने, लोह, ताँबे व चाँदी
वैश्य	हल जिह्वा व शंख, केकड़ा, आयुध, माष, घोड़ा, हाथी, बैल, व सिंह, गाय,
शूद्र	बीज पात्र, सोने का हल, चाँदी की गाय, बैल, हल, बीज पात्र में, सोने के बीज

विश्लेषण

वास्तुशास्त्र के लगभग सभी ग्रन्थों में गर्भविन्यास का वर्णन मिलता है। ग्राम, नगर, जलाशय, मन्दिर या घर बनवाते समय गर्भविन्यास अत्यन्त आवश्यक बताया गया है। इसके द्वारा पूरे क्षेत्र को सकारात्मक ऊर्जा से चार्ज किया जाता है। उन पदों की ऊर्जा को boost up किया जाता है। जो प्रापर्टी या गुण हमें जिस क्षेत्र में प्रकट करना हो उसके अनुसार गर्भविन्यास किया जाता है। गर्भ विन्यास आकृति, धातु, खनिज, रंग सबका महत्व प्रतिपादित होता है या का उपयोग किया जाता है। गर्भविन्यास में ताम्बे, चाँदी या सोने के पात्र में विभिन्न द्रव्य, सोना, चाँदी आदि, विभिन्न धातु, जड़, धान्य, औषधि आदि भूमि के अन्दर विधिविधान से पूजा कर रखें, जाते हैं। गर्भ से रहित स्थान अशुभ बताया गया है।

५.६ उपपीठ (Pedestal)

भवन के सबसे निचला भाग जो भूमि के ऊपर होता है, वह **अधिष्ठान** कहलाता है। इस अधिष्ठान की सुन्दरता बढ़ाने के लिए या उसे मजबूती प्रदान करने के लिए इसके नीचे **उपपीठ** (socle) बनाई जाती है।

उपपीठ के विभिन्न प्रकार तथा उनकी mouldings का वर्णन **अध्याय १३** में किया गया है।

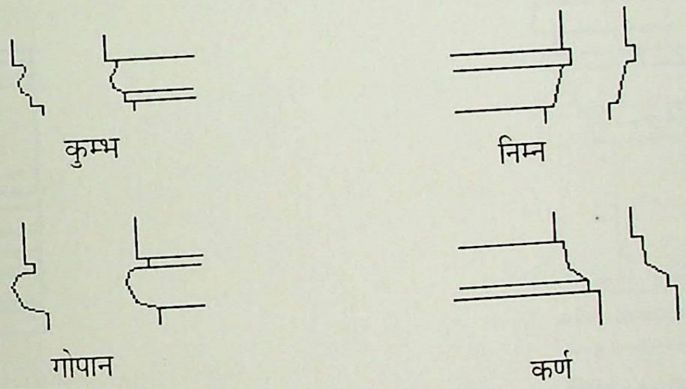
कुम्भ
निम्न
गोपान
कर्ण

चित्र-५.२१ नक्काशी (मोल्डिंग)

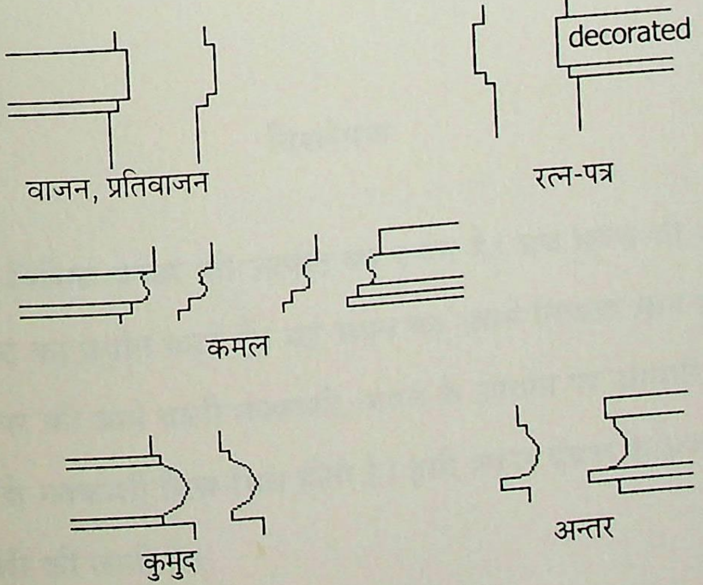
decorated
वाजन, प्रतिवाजन
रत्न-पत्र
कमल
अन्तर
कुमुद

चित्र-५.२२ नक्काशी (मोल्डिंग)

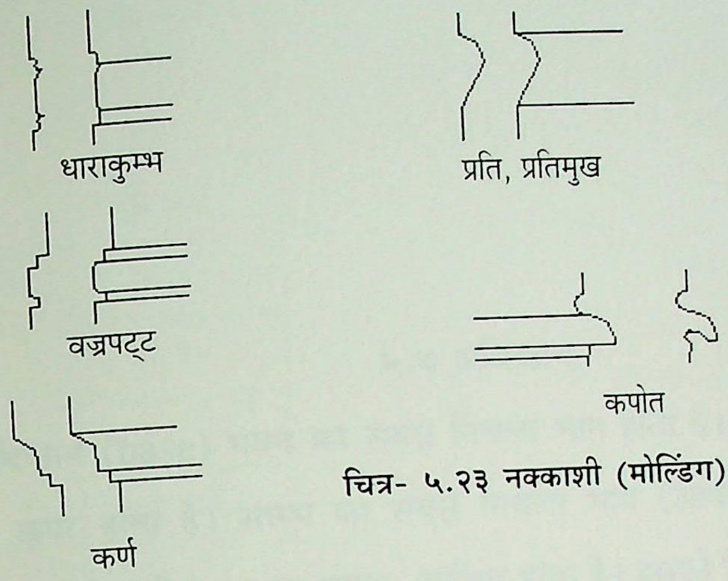

चित्र- ५.२३ नक्काशी (मोल्डिंग)

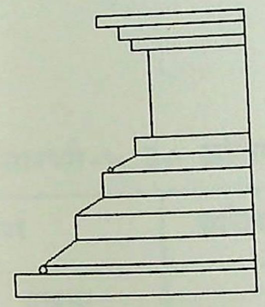

चित्र- ५.२५
उपपीठ- सुभद्र

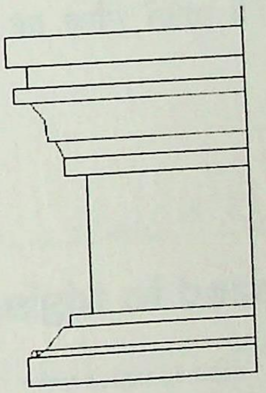

चित्र- ५.२४
उपपीठ- प्रतिभद्र

विश्लेषण

इस अध्याय में विभिन्न प्रकार की उपपीठ का वर्णन है। जब भवन की सुन्दरता बढ़ाना हो तो पीठ के नीचे उपपीठ का प्रयोग करते हैं। यह भवन का सबसे निचला भाग होता है जो भूमि के ऊपर दिखता है। इस पर की जाने वाली नक्काशी, भवन के उपयोग पर आधारित होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य भवनों के नक्काशी भिन्न-भिन्न होती है। इसी प्रकार देवता के आधार पर उनके मंदिर में उपपीठ की नक्काशी की जाती है।

५.७ अधिष्ठान

अधिष्ठान (base) भवन का सबसे निचला भाग होता है। यदि उपपीठ भी हो तो यह उपपीठ के ऊपर होता है। स्तम्भ का सबसे निचला भाग (उपपीठ के अतिरिक्त) अधिष्ठान कहलाता है। इस पर ही भवन या स्तम्भ, आश्रित होता है। इसकी विभिन्न moulding होती है। उसके अनुसार ही अधिष्ठान का नाम होता है। जैसा भवन या मंदिर हो, उसके अनुसार ही उसका अधिष्ठान बनाया जाता है। अध्याय १४ में अधिष्ठान का वर्णन किया है।

मंज़िल के अनुसार

सारणी-५.३० अधिष्ठान की ऊँचाई

वर्ण	अधिष्ठान ऊँचाई (हस्त)
१. देवता	४
२. ब्राह्मणों	३.५
३. राजाओं	३
४. राजकुमार	२.५
५. वैश्य	२
६. शूद्र	१

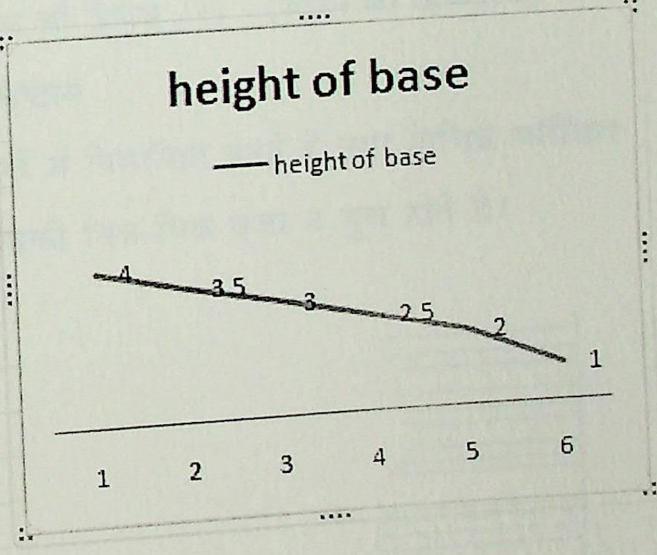

बारह मंज़िला भवन के लिए, अधिष्ठान (base) की ऊँचाई, एक दंड होती है। इसमें से छह-छह अंगुल कम करने से (प्रत्येक मंज़िल के लिए) क्रमशः तीसरी मंज़िल तक के भवन के लिए अधिष्ठान (base) की ऊँचाई होती है।

सारणी-५.३१ अधिष्ठान ऊँचाई-मंजिलानुसार

मंजिल	हस्त
१२	४
११	३.७५
१०	३.५
९	३.२५
८	३
७	२.७५
६	२.५
५	२.२५
४	२
३	१.७५

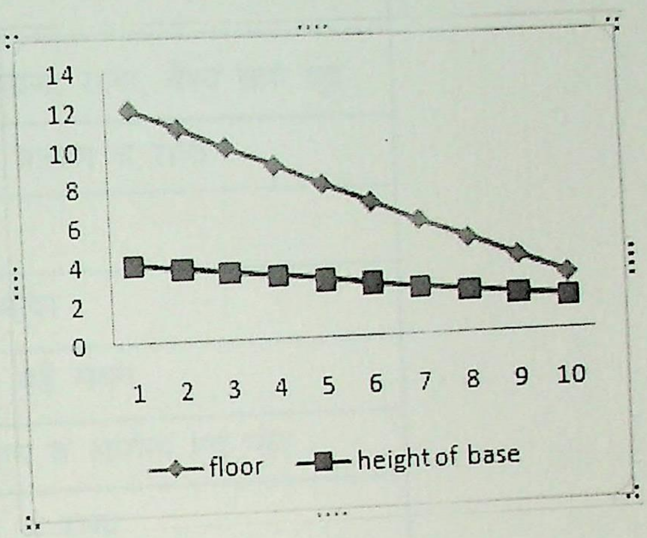

स्तंभ की ऊँचाई के अनुसार

अधिष्ठान (base) की ऊँचाई = (स्तम्भ की ऊँचाई /२) - (स्तम्भ की ऊँचाई/६)

अधिष्ठान

अधिष्ठान की ऊँचाई को विभिन्न भागों में विभाजित करते हैं तथा विभिन्न मोल्डिंग को विभिन्न अनुपात में बनाते हैं, जिससे उसकी भिन्न-भिन्न संज्ञा व गुण होते हैं।

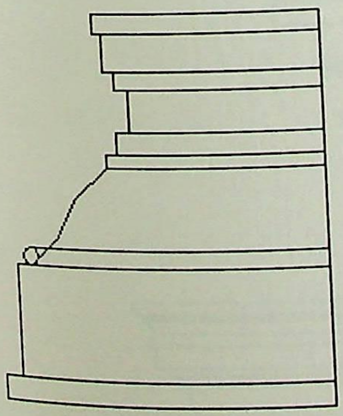

चित्र-५.२६ पादबन्ध

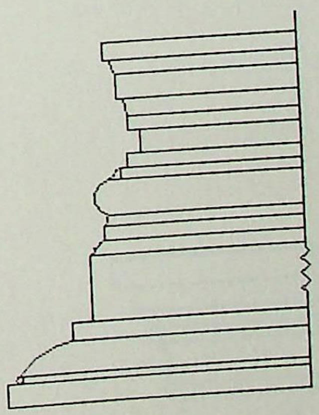

चित्र-५.२७ पद्मकेसर

सारणी- ५.३२ अधिष्ठान एवं उसके उपयोग

अधिष्ठान	उपयोग
पादबन्ध	देवता, ब्राह्मण, राजा, वैश्य तथा शूद्र
उरग बन्ध	देवताओं, ब्राह्मण व राजा
प्रतिक्रम	मंदिर
पद्मकेसर	शंभु के मंदिर
पुष्प पुष्कल	मध्यम व बड़े भवन
श्रीबन्ध	श्री सौभाग्य व आरोग्य एवं भोग
मञ्च बन्ध	देवताओं व राजा
श्रीकान्त	आकाशमार्गी
श्रेणीबन्ध	देवता
पद्मबन्ध	देवताओं के ईश्वर

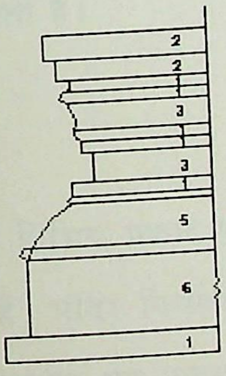
2
2
1
1
3
1
1
3
1
5
6
1

चित्र-५.३०

मंचबन्ध

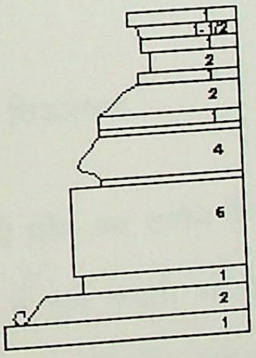
1
1-1/2
1
2
1
2
1
4
6
1
2
1

श्रेणीबन्ध

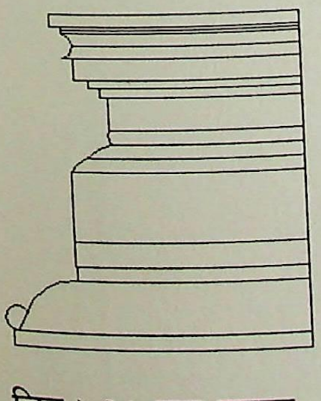

चित्र-५.२८ पुष्प-पुष्कल

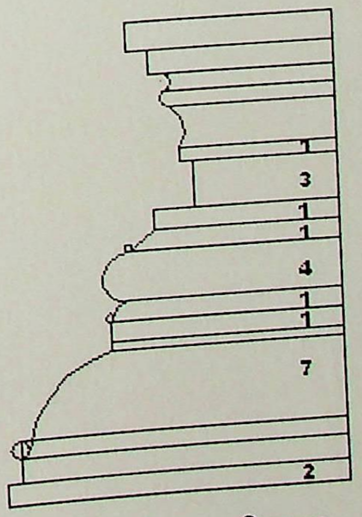

चित्र-५.२९ श्रीबन्ध अधिष्ठान

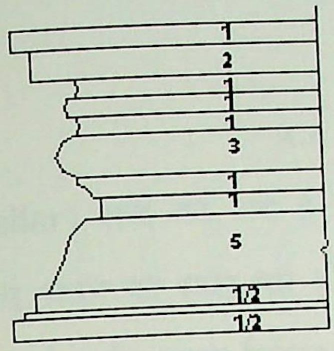

चित्र-५.३१ पद्‌मबन्ध

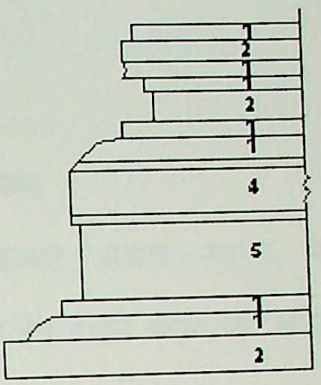

वप्रबन्ध

अधिष्ठान (base) के पर्यायवाची

मसूरक, अधिष्ठान (base), वस्त्वाधार, धरातल, कुट्टिम तथा अद्याङ्ग (ये अधिष्ठान (base) के) पर्यायवाची हैं।

अधिष्ठान की ऊँचाई

अधिष्ठान (base) की ऊँचाई, स्तंभ की ऊँचाई की आधी या आधे में १/६, १/७, १/८ घटाने पर प्राप्त होती है।

विश्लेषण

इस अध्याय में विभिन्न प्रकार की पीठ का वर्णन है। यह स्वतन्त्र रुप से या उपपीठ के ऊपर बनाई जाती है। मंदिर निर्माण में इसे जगती भी कहते हैं। इस पर की जाने वाली नक्काशी, भवन के उपयोग पर आधारित होती है। अधिष्ठान के भिन्न-भिन्न प्रकार तथा उनके उपयोग को भी जाना। अधिष्ठान के पर्यायवाची तथा उसके मान ऊँचाई आदि को जाना।

५.८ स्तम्भ

स्तम्भ (खम्बा, pillar) शब्द का अर्थ है रुकावट, अचल। स्तम्भ, भवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। इस पर भवन का सारा भार होता है। इससे भवन का सारा भार, पृथ्वी पर स्थानान्तरित (transfer) होता है। इसके विभिन्न आकार (cross-section) हांते हैं। इसी के आधार पर उसका (स्तम्भ का) नाम या संज्ञा होती है। विभिन्न देवता के मन्दिर में अलग-अलग प्रकार के स्तम्भ का प्रयोग किया जाता है, जो कि उस देवता की प्रतिमा के लिए उपयुक्त होता है, उसी प्रकार की ऊर्जा के अनुकूल होता है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में यह बताया गया है कि स्तम्भ के लिए उपयुक्त लकड़ी शुभ मुहूर्त में निश्चित दिशा से लाना चाहिए तथा लकड़ी लेने जाते व आते समय शकुन का ध्यान रखना चाहिए।

सारणी-५.३३ स्तम्भ की ऊँचाई

मंजिल	स्तम्भ की ऊँचाई		
	(हस्त में)	अंगुल	फीट
१	साढ़े आठ	२०४	१७
२	आठ	१९२	१६
३	साढ़े सात	१८०	१५
४	सात	१६८	१४
५	साढ़े छह	१५६	१३
६	छह	१४४	१२
७	साढ़े पाँच	१३२	११
८	पाँच	१२०	१०
९	साढ़े चार	१०८	९
१०	चार	९६	८
११	साढ़े तीन	८४	७
१२	तीन	७२	६

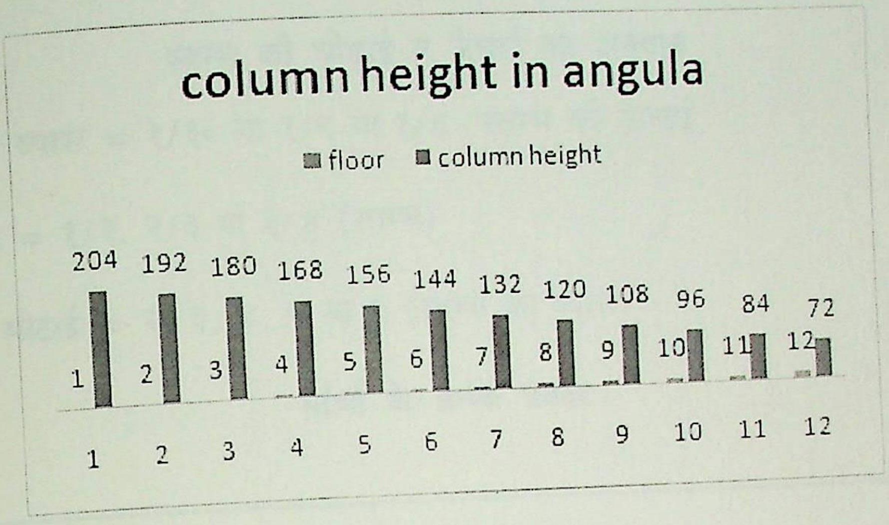

पर्यायवाची

स्थाणु, स्थूण, पाद, जंघा, चरण, अंघ्रिक, स्तंभ, तलिप और कम्प

स्तंभों का नाप

स्तम्भ की ऊँचाई = २ (अधिष्ठान) या दोगुने से अधिक

मंजिल के अनुसार स्तम्भ का व्यास

सारणी-५.३४ मंजिल के अनुसार स्तम्भ का व्यास

मंजिल	स्तम्भ का व्यास
१	२८
२	२६
३	२४
४	२२
५	२०
६	१८
७	१६
८	१४
९	१२
१०	१०
११	८
१२	६

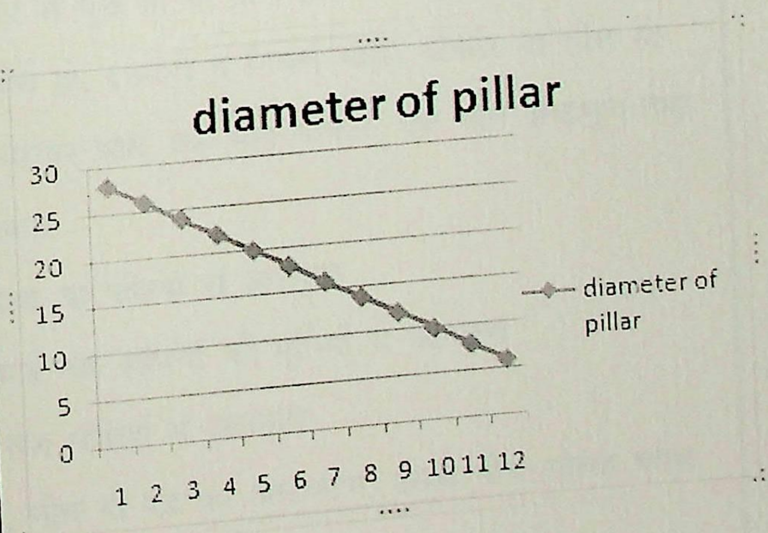

स्तम्भ की चौड़ाई व ऊँचाई का अनुपात

स्तम्भ का व्यास = १/१० या १/९ या १/८ स्तम्भ की ऊँचाई

कुड्यस्तम्भ = १/२, २/३ या ३/४ (स्तम्भ)

दीवार की मोटाई = २, ३, ४, ५ या ६ (स्तम्भ का व्यास)

स्तंभों के अनेक प्रकार

स्तम्भ	लक्षण
प्रति-स्तम्भ	प्रति से उत्तर तक
निखात-स्तम्भ	पादुका से उत्तर के अंत तक
झषाल-स्तम्भ	अधिष्ठान से उत्तर तक
ब्रह्मकान्त	अग्र चौकोर
विष्णुकान्त	अष्टभुज
इन्द्रकान्त	षट्भुज
सौम्य	सोलह भुजा
पूर्वास्र	स्तम्भ के दो खंड, नीचे चौकोर तथा ऊपर से अष्टभुज, सोलह भुज या वृत्ताकार हो
रुद्रकान्त	कुम्भ व फलिका से युक्त हो या ग़ोल हो
अष्टाश्र	मध्य में अष्टकोण हो, (ऊपरी व निचले भाग) चौकोर या ग़ोल हो
रुद्रछन्द	स्तम्भ में तीन बराबर भाग, एक भाग चौकोर, एक भाग अष्टभुज तथा एक भाग वृत्ताकार
भद्रक स्तम्भ	फलिका चक्रवाक या पक्षियों से अलंकृत
शुण्डपाद	स्तम्भ की ऊँचाई तक हाथियों की मूर्तियों से अलंकृत
पिंडिपाद	नीचे से ऊपर तक मोतियों से अलंकृत
श्रीखंड	स्तम्भ चौकोर, नीचे दो दंड का अष्टकोण, उसके नीचे सोलह कोण
श्री वज्र	सोलह भुजाएँ
क्षेपण स्तम्भ	ऊपरी हिस्सा चौकोर हो, उसके तीनों भाग को पत्तियों से अंलकृत

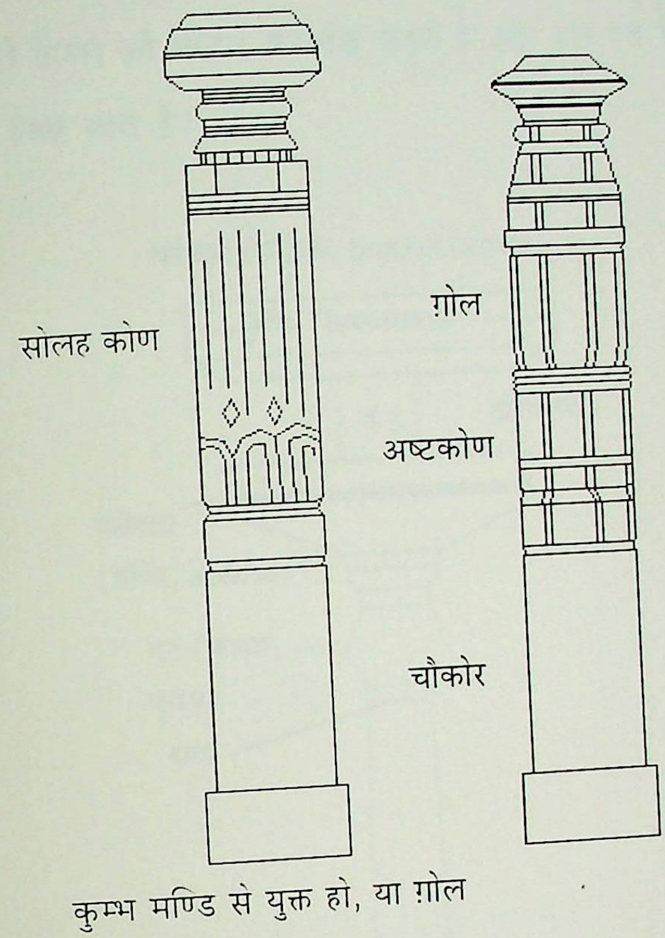
सोलह कोण
ग़ोल
अष्टकोण
चौकोर
कुम्भ मण्डि से युक्त हो, या ग़ोल

चित्र-५.३४ रुद्रकान्त रुद्रछन्द

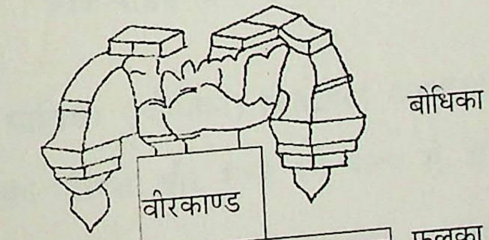
बोधिका
वीरकाण्ड
फलका
कमल
मुख
कण्ठ
कलश

चित्र ५.३५ प्रियदर्शन घट

दंड की परिभाषा

स्तम्भ के ऊपरी हिस्से की चौड़ाई को **दंड** कहते है और इस दंड के अनुसार भवन की सभी वस्तुओं के मान लिए जाते हैं।

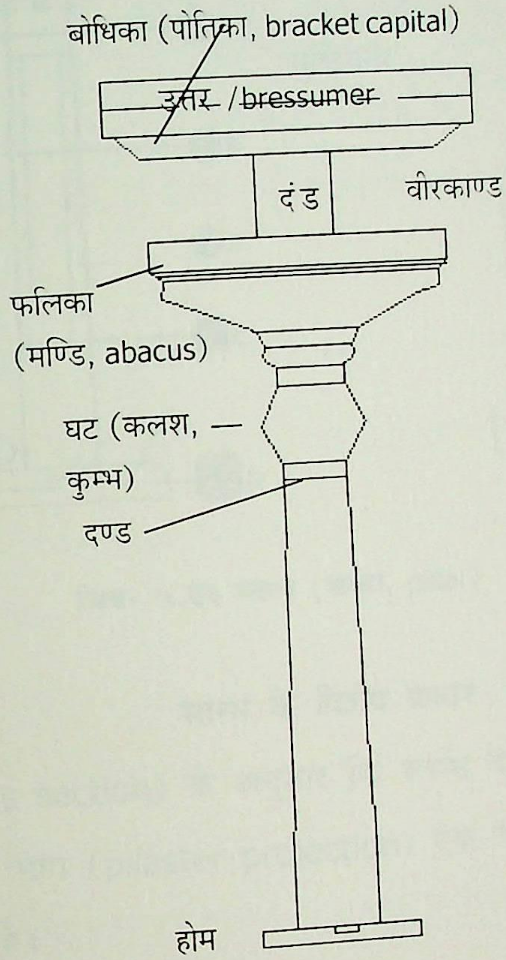
बोधिका (पोतिका, bracket capital)
उत्तर /bressumer
दंड
वीरकाण्ड
फलिका
(मण्डि, abacus)
घट (कलश,
कुम्भ)
दण्ड
होम

चित्र-५.३२ स्तम्भ (खम्बा, pillar)

पोतिका (बोधिका)(bracket capital)

चित्र पोतिका	पोतिका पत्तियों और रत्नों की माला से अलंकृत
पत्रपोतिका	ऊपर की पंक्ति का भाग अनेक रंगों व पत्तियों द्वारा अलंकृत
तरंगिनी	सागर की तरंगों की तरह अलंकृत

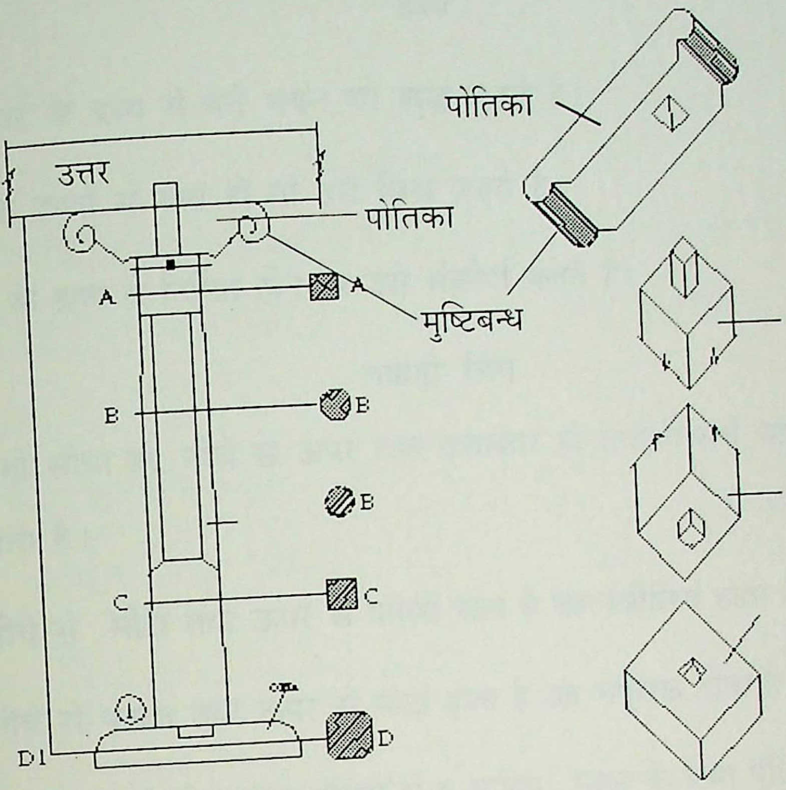

चित्र- ५.३३ स्तम्भ (खम्बा, pillar)

स्तम्भ के विशेष प्रकार

उसके आकार (its section) के अनुसार कि स्तम्भ चौकोर, अष्टभुज, या ग़ोल है, स्तम्भ का निकला हुआ भाग (pilaster projection) एक चौथाई, आधा या तीन चौथाई उसकी चौड़ाई का होता है।

दो स्तंभों के बीच का अंतर (intercolumniation) = दो से चार हस्त होता है।

स्तम्भ के बीच का अन्तर = २, २.२५, २.५, २.७५, ३, ३.२५, ३.५, ३.७५, ४ (हस्त)

पत्थर के स्तम्भ का व्यास, लकड़ी के स्तम्भ के समान होता है या डेढ़ गुना, दोगुना या तीन गुना हो सकता है।

इस तरह के स्तम्भ का उपयोग देवता के लिए बनाए गए भवनों (मंदिरों) में किया जा सकता है, परंतु मनुष्यों के लिए भवनों में नहीं होता है।

प्राचीन काल के अनुसार स्तम्भ ईंट, पत्थर या लकड़ी के बने हो सकते हैं, लेकिन किसी भी एक भवन में ये एक समान होने चाहिए (एक ही पदार्थ का होना चाहिए।) उनकी संख्या देवता के भवन (मंदिर) के लिए सम या विषम हो सकती है तथा मनुष्यों के लिए यह विषम संख्या में होना चाहिए।

द्रव्य

एक ही प्रकार के द्रव्य से बने भवन को **शुद्ध** कहते है।

दो प्रकार के द्रव्यों से बना हो तो उसे **मिश्र** कहते है।

तीन प्रकार के द्रव्य से निर्मित होने पर उसे **संकीर्ण** कहते है।

लकड़ी लिंग

एक वृक्ष जो सीधा हो, नीचे से ऊपर तक वृत्ताकार हो तथा जिसमें बहुत सारी शाखाएँ हो वह **पुंलिंग** होता है।

जो वृक्ष नीचे से मोटा तथा ऊपर से पतला होता है वह **स्त्रीलिंग** होता है।

जो वृक्ष नीचे से पतला तथा ऊपर से मोटा होता है वह **नपुंसक** होता है।

मुहूर्त स्तम्भ बनाने के लिए वृक्ष पुंलिंग होना चाहिए। भवन के लिए पुंलिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक वृक्ष उपयुक्त होते हैं।

विश्लेषणः- इस प्रकार से हमने देखा कि मयमत ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार के स्तम्भ का वर्णन किया गया है। स्तम्भ के मान, आकार, पदार्थ तथा विभिन्न अवयव को देखा। विभिन्न चार्ट आदि के माध्यम से हमने यह जाना कि जब हम मंजिलानुसार स्तम्भ के मान निर्धारण करते हैं तो वह एक क्रम (अनुपात) से प्रत्येक मंजिल पर कम होता जाता है। इसी प्रकार स्तम्भ की लम्बाई का मान भी प्रत्येक मंजिल पर एक निश्चित अनुपात में कम होता है। यह अभियान्त्रिक पक्ष को मजबूती से व्यक्त करता है। इसके अतिरिक्त स्तम्भ हेतु विभिन्न पदार्थ का चयन भी इस प्रकार किया जाता है कि वह सशक्त हों, जिससे भवन का भार भूमि पर स्थानान्तरित कर सकें। लकड़ी, शिला आदि को भी पुलिंग, स्त्रीलिंग व नपुसंक लिंग में विभाजित कर उसके गुण के अनुसार मंदिर या गृह में प्रयोग करते हैं। इस अध्याय १५ में यह भी बताया है कि जिन वृक्षों की भार वहन क्षमता (काम्प्रेसिव स्ट्रेन्थ) अधिक है, उनका प्रयोग स्तम्भ बनाने में किया जाता है। जिनकी शियरींग स्ट्रेन्थ अधिक है उनका प्रयोग तुला आदि बनवाने में किया जाता है। इस प्रकार से प्राचीन समय में लकड़ी, शिला आदि के लक्षण व गुण-धर्म के आधार पर उनका उपयोग किया जाता था।

५.९ द्वार

द्वार विधान नामक अध्याय ३० में द्वार के विभिन्न अवयव व उसके मान को बताया गया है। शुभ-अशुभ द्वार के साथ द्वार-वेध, शुभद्वार स्थान बताया गया है। इस अध्याय में गोपुर का वर्णन भी मिलता है।

टेबल ३०.१ द्वारमान-अंगुल

	चौड़ाई	**ऊँचाई**
शयन कक्ष	३६	८४
घर	४२-१०८	९६-२२८
नगर	११४-१८०	२४०-३७२

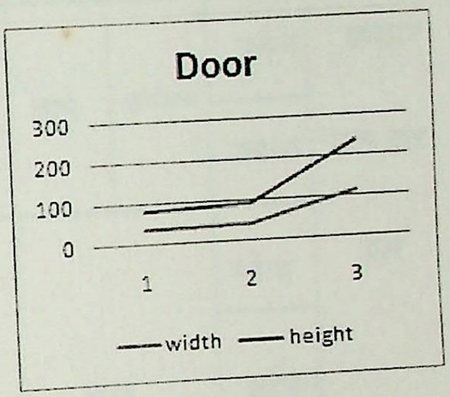

टेबल ३०.२ द्वार का मान
स्तम्भ की ऊँचाई की तुलना में

घर	स्तम्भ की ऊँचाई	द्वार की ऊँचाई
	८	६.५
	९.५	८.५
मंदिर	८	७
	९	८
	१०	९

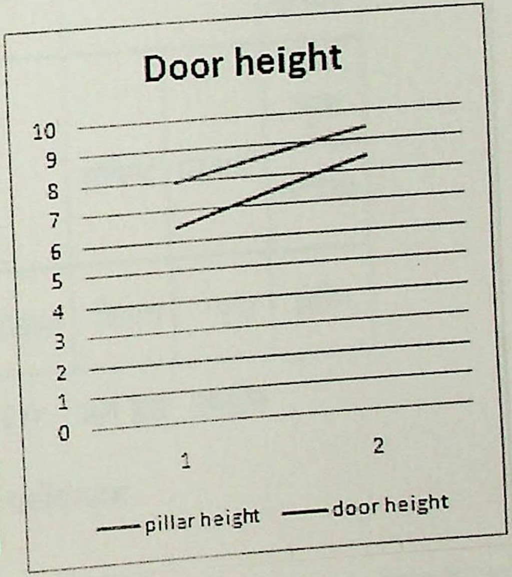

दरवाज़े के मान

द्वार की चौड़ाई = २ X द्वार की ऊँचाई

द्वार स्थान

(परमशायिक पद विन्यास में) बाहर के बत्तीस देवता के पद में महेन्द्र, राक्षस (गृहक्षत), पुष्पदन्त व

भल्लाट इन चार पद में **द्वार** होता है।

जल द्वार (drain) जयंत, वितथ, सुग्रीव तथा मुख्य के पद में होना चाहिए। अन्य पद में वर्जित है।

<table>
<tr><td></td><td></td><td>उपद्वार</td><td>जल द्वार</td><td>द्वार</td><td></td><td></td><td>उपद्वार</td><td></td><td></td><td></td></tr>
<tr><td></td><td>वायु</td><td>नाग</td><td>मुख्य</td><td>भल्लाट</td><td>सोम</td><td>मृग</td><td>अदिति</td><td>उदिति</td><td>ईश</td><td></td></tr>
<tr><td></td><td>रोग</td><td rowspan="2">रुद्र</td><td rowspan="2">रुद्रजय</td><td colspan="3" rowspan="2">भूधर</td><td rowspan="2">आप</td><td rowspan="2">आपवत्स</td><td>पर्जन्य</td><td>उपद्वार</td></tr>
<tr><td>उपद्वार</td><td>शोष</td><td>जयन्त</td><td>जल द्वार</td></tr>
<tr><td></td><td>असुर</td><td colspan="2" rowspan="3">मित्र</td><td colspan="3" rowspan="3">ब्रह्मा</td><td colspan="2" rowspan="3">आर्य</td><td>महेन्द्र</td><td>द्वार</td></tr>
<tr><td></td><td>वरुण</td><td>आदित्य</td><td></td></tr>
<tr><td>द्वार</td><td>पुष्पदन्त</td><td>सत्यक</td><td></td></tr>
<tr><td>जल द्वार</td><td>सुग्रीव</td><td rowspan="2">इन्द्रराज</td><td rowspan="2">इन्द्र</td><td colspan="3" rowspan="2">विवस्वान</td><td rowspan="2">सविन्द्र</td><td rowspan="2">सावित्र</td><td>भृश</td><td></td></tr>
<tr><td>उपद्वार</td><td>दौवारिक</td><td>अन्तरिक्ष</td><td></td></tr>
<tr><td></td><td>पितृ</td><td>मृष</td><td>भृङ्ग</td><td>गन्धर्व</td><td>यम</td><td>राक्षस</td><td>वितथ</td><td>पूषा</td><td>अग्नि</td><td></td></tr>
<tr><td></td><td></td><td></td><td>उपद्वार</td><td></td><td></td><td>द्वार</td><td>जल द्वार</td><td>उपद्वार</td><td></td><td></td></tr>
</table>

चित्र-५.६ परमशायिक पदविन्यास

पर्जन्य, भृश, पूषा, भृंग, दौवारिक, शोष, नाग व अदिति के पद में **उपद्वार** कहा गया है, इसे **सुरंग** कहते हैं।

विश्लेषण

वास्तुशास्त्र में मुख्य द्वार के स्थान को अत्यधिक महत्व दिया गया है। मुख्य द्वार प्लाट का हो या बने हुए हिस्से (भवन) का दोनों ही बहुत महत्वपूर्ण हैं। मनुष्य के शरीर में जो महत्व नाक का है, वास्तु में वही महत्व द्वार का है। नाक का स्थान इस प्रकार बना है कि वह फेफड़े आदि अवयव से जुड़ी हुई होकर प्राणवायु का संचार करती है, उसी प्रकार द्वार शुभ स्थान हो तो पूरे भवन में प्राणवायु का संचार करते हैं। जिस प्रकार नासिका के सामने कोई अवरोध नहीं

होना चाहिए, उसी प्रकार द्वार के सामने कोई रुकावट नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार नाक में शुद्ध, स्वच्छ वायु ही प्रवेश करना चाहिए, उसी प्रकरा द्वार से शुद्ध ऊर्जा ही प्रवेश करना चाहिए, द्वार के सामने कचरा, कीचड़, गन्दगी, जूठा नहीं होना चाहिए।

मयमत ग्रन्थ में द्वार के विभिन्न मान का वर्णन किया है, गृह तथा मंदिर के लिए स्तम्भ की तुलना में अलग अनुपात बताएँ हैं। द्वार का मान स्तम्भ के एक निश्चित अनुपात में होता है, जिससे पूरा भवन छन्दबद्ध रहता है, एक लय में रहता है। द्वार, जलद्वार तथा जब भवन विशाल हो तो उपद्वार के स्थान को बताया है। द्वार स्थान का निर्धारण पद की ऊर्जा के अनुरुप किया जाता है। जलद्वार तथा उपद्वार के स्थान का निर्धारण सुविधा तथा पद की ऊर्जा को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाता है।

५.१० लेप व मसाले

कराल, मुद्‌गी, गुल्माष, कल्क, चिक्कण इन पांच को चूने के साथ मिलाए। इस प्रकार का पदार्थ सभी कार्यो के लिए उपयुक्त है।

कराल बड़ा पत्थर होता है, जिसका आकार अभय या रुद्राक्ष के बीजों के बराबर होता है।

मुद्‌गी एक बड़ा पत्थर होता है, जो फली के बीज के समान होता है।

गुल्माष, रेत के दानों के ३/२ भाग, कमल के रेशे ७/४ या दो भाग तथा चूना, बड़े पत्थर (कंकर) (के चूर्ण से युक्त) एक-एक भाग मिलकर बना होता है। कराल व मुद्‌गी भी इसी प्रकार बनते हैं।

कल्क बनाने के लिए, रेत के दानों को उसके माप (पूर्व बताए अनुसार) अनुसार चूने को चिक्कण से पीसे। चिक्कण, समरूप तरल होना चाहिए।

ये पाँचों उत्पादों को ईंट जोड़ने के लिए, अलग-अलग स्थान पर प्रयोग करते हैं।

प्रत्येक के उपयोग के आधार पर उचित का चयन उपयुक्त कार्य के लिए किया जाता है।

उपरोक्त पदार्थों को उपयोग करने व पीसने से पहले, साफ पानी से धोना चाहिए। बारीक मिश्रण करने के लिए पाँच फल क्षीरद्रुम, कदम्ब, आम, अभय व अक्ष का सार, इसके साथ ही त्रिफला, फलों का रस व सेम फली का पानी लेना चाहिए। इसके बाद कंकड़, पत्थर, छिलके व चूने को कुएँ के पानी के साथ मिलाया जाता है। इस मसाले को अच्छी तरह घोड़े के टापों के द्वारा (खुरों के नीचे) मिश्रित करवा कर, बारीक कपड़े (छलनीदार) से छाना जाता है। इस प्रकार यहाँ कल्क व चिक्कण को लसलसा बनाने की सलाह दी गई है।

जिसे **बन्धोधक** कहते है, उसे मिस्त्रियों के द्वारा दही, दूध, सेम के पानी, गुड़, घी, केलों, नारियल का दूध व आम के रस का प्रयोग करके बनाया जाता है।

दीवार को शुद्ध पानी से अच्छी तरह धोने के बाद, बन्धोधक को परत चढ़ाने के लिए प्रयोग करते हैं। यदि किसी प्रकार की कोई छाया वहाँ पर रखी जाने वाली हो (या लगाई जाने वाली हो।)

उपरोक्त वर्णन के अनुसार, कंगुरों के ऊपर अच्छे से सलाह दिए हुए लोग टाइल्स (चाहे वह पक्की हो या कच्ची) या धातु की हो, लगाते हैं व उसे (परत से) ढकते हैं। कराल की परत एक अंगुल मोटी, जैसी की मुद्‌गी व गुल्माष की होती है। कल्क की मोटाई आधी और चिक्कण की मोटाई कल्क से आधी होती है।

परनालों ~~(gutter)~~ के बारे में मोटाई को विशेष परिस्थिति के अनुसार चयनित किया जाता है।

सही परिणाम आने में छह महिने लगते हैं व चार माह मध्यम परिणाम के लिए, दो महिने अधम परिणाम के लिए लगते हैं। तब सभी पदार्थ बंधोधक के साथ गीलाकर लिए जाते हैं। यह पूरी विधि वैसी ही हो, जैसी की ऊपर बताई गई है।

ईंटों की एक तह को लुपा के ऊपर रखकर, फिर चूना रखा जाता है। इसे ईंटों की छत (कन्ध) भी कह सकते हैं। इस छत को पूरी तरह से परत से ढका जाता है। इसकी मोटाई, ऊपर कहे अनुसार रखी जाती है।

चित्रकर्म

प्रासादों में व ब्राह्मणों के घरों की दीवालों पर, अन्दर व बाहर वे चित्र लगाना चाहिए, जो उनके लिए उपयोगी (योग्य) हो।

ब्राह्मणों के घरों के लिए चित्र इस प्रकार के हों, की उसको खुशी मिले। धार्मिक प्रतिमा, ब्राह्मणों के लिए उचित है। अन्य जातियों के लिए भी ऐसे चित्र हों, जो उन्हें सफलता दे।

वहाँ लड़ाई के दृश्य वाले, मौत के दृश्य वाले, शव वाले, दुर्भाग्य वाले चित्र नहीं होना चाहिए। न ही देवता, राक्षस, युद्ध, नग्न, भिक्षुक, तपस्वी, लीलाओं, दुखी के चित्र होना चाहिए।

इस प्रकार के चित्र अन्य जातियों के लिए कहे गए हैं। दूसरे लोग अपनी इच्छा के अनुसार कर सकते हैं।

अच्छे मसाले को बनाने के लिएः-

- ५ भाग सेम का पानी,
- ९ भाग गुड़,
- ८ भाग दही,
- ९ भाग घी,
- ७ भाग फलों का रस,

- ६ भाग चर्म,
- १० त्रिफला का रस,
- ४ भाग नारियल का दूध,
- १ भाग शहद तथा
- ३ भाग केलों को, इस प्रकार,
- इन सभी तत्वों को १०० भाग चूने के साथ मिलाया जाता है।
- यह कहा गया है कि यहाँ पर गुड़, शहद व दूध का हिस्सा दूसरे भागों से अधिक

होना चाहिए।

मसालाः-

- चूने के १०० भागों में २ भाग मसाले को,
- २ भाग चूना,
- कराल,
- शहद,
- घी,
- केलों,
- नारियल का दूध,
- फली का पानी,
- इमली का पानी,
- दूध,
- दही,
- गुड़ व
- त्रिफला का रस लेकर बनाए हुए मसाले को, निपुण, पत्थर के समान कहते हैं।

मूर्ध्नेष्टकादिस्थापनम् (पवित्रीकरण संस्कार)

मुकुट (शिखर) की ईंटों के स्थान पर

ईष्टिका को शुद्ध करके स्थापन के लिए तैयार करें।

वह (स्थपति) पवित्र व नवीन वस्त्र धारण कर शुभ मुहूर्त में विधि विधान से ईंट की स्थापना करें।

ईंट की स्थापनाः-

- शिखर के आधे
- विमान के आधे
- अग्र व पत्र के बीच में
- १/३, १/४ (शिखर की ऊँचाई)
- या कमल के नीचे, ईंट को स्थापित करें।

ईंटों के छिद्रों को भरते हुए, इस प्रकार से व्यवस्थित करें कि वे सब ओर से एक समान दिखें। उनके मध्य में, नव रत्न को इस प्रकार क्रम से रखें।

धातु, खनिज, बीज, धान्य व औषधि भी रखें।

ऊपर स्थूपिका कील को इस प्रकार स्थापित करें कि वह सम व अचल हो। वहाँ से (~~from the axis of the finial~~) भूमि तक, महाध्वज लटकता है।

दक्षिणा दान

गर्भस्थान

- प्रासाद में मूर्ध्नि में,
- भवनों में नेत्रभित्ति (दीवार) व तल के अन्तर में,
- मण्डप में मध्य में,
- सभा आदि में कमल के नीचे,
- गोपुर में मूर्ध्नि में

दक्षिणा-दान

सम्प्रोक्षण की आवश्यकता

स्थपति पवित्र मन से नए वस्त्र पहनकर, उत्तरीय धारण कर, सभी मंगल घोष के बीच जल से प्रोक्षण करें।

सम्प्रोक्षण काल

शुभ मुहूर्त में सम्प्रोक्षण करना चाहिए। भवन पूरा होने पर तीन या एक रात अधिवास करें, इस प्रकार करने पर धन का लाभ व बहुत (शुभ) फल मिलता है।

विश्लेषण

भवन के निर्माण सम्बन्धी प्रक्रिया में अध्याय १८ अपना अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें भवन निर्माण के अनेकानेक पहलू पर प्रकाश डाला है। भवन को दूर से ही देखकर हमें बहुत कुछ ज्ञात हो जाता है जैसे भवन का शिखर या गुम्बद काफी दूर से ही दिखाई देता है इससे हमें भवन की शैली का ज्ञान हो जाता है। भवन के अवयव स्थूपिका आदि, निर्माण में प्रयुक्त सामग्री जैसे ईंट या पत्थर जोड़ने के मसाले, दीवार का लेप जिस कोटिंग कहते हैं, निर्माण की तकनीक या विधि, आन्तरिक सज्जा, निर्माण कार्य पूर्ण होने पर कार्य की पूर्णता का उत्सव, भवन को संस्कारित करना, उसे पॉजिटिव चार्ज करना, यदि मंदिर है तो नयनोन्मीलन अर्थात प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा, घर है तो गृह-प्रवेश की विधि आदि सारे विषयों को इस अध्याय में विस्तार से बताया गया है।

६ समराङ्गण सूत्रधार तथा मयमत का तुलनात्मक अध्ययन

(अभियान्त्रिकी विश्लेषण)

६ समराङ्गण सूत्रधार तथा मयमत का तुलनात्मक अध्ययन

(अभियान्त्रिकी विश्लेषण)

अध्याय ६ समराङ्गण सूत्रधार तथा मयमत का तुलनात्मक अध्ययन

(अभियान्त्रिकी विश्लेषण)

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
६.१	अध्यायों की संख्या व उनके विषय	५
६.२	वर्णाश्रम व्यवस्था	७
६.२.१	वर्णाश्रम का निर्धारण	८
६.२.२	रंग	१०
६.२.३	स्वाद	१२
६.३	भूमि	१७
६.३.१	समरांगण-सूत्रधार	१७
६.३.१.१	सोलह प्रकार की भूमि एवं विशेषता	१७
६.३.१.२	देश	१७
६.३.१.३	देश हेतु शुभ भूमि	१८
६.३.१.४	पुर (नगर) हेतु उपयुक्त भूमि	१९
६.३.१.५	शुभ भूमि	२०
६.३.१.६	भूमि परीक्षा	२२
६.३.२	मयमत	२३
६.३.२.१	वास्तु का मुख्य आधार- भूमि	२३
६.३.२.२	भूमि परीक्षा	२४
६.३.२.३	भूमि को पॉजिटिव चार्ज करने की विधि	२६
६.३.३	विश्लेषण	२७
६.३.३.१	भूमि चयन का महत्व	२७
६.३.३.२	अशुभ स्थान	२८
६.३.३.३	परिवेश	२९
६.३.३.४	भूमि में निम्न दोष न हों	३२
६.३.३.५	अन्य अशुभ भूमि	३३
६.३.३.६	अन्य पक्ष	३३

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
६.४	पदविन्यास	३४
६.४.२	वास्तुपुरुष	३५
६.४.३	सिरा, वंश, अनुवंश, संधि, अनुसंधि, मर्म तथा महावंश	३५
६.४.४	सिरा	३६
६.४.५	पीड़न व परिणाम	३७
६.४.५	वास्तुपदविन्यास व उपयोग	३८
६.४.६	सिरा व मर्म	३९
६.४.७	मर्म-वेध (पीड़न) व परिणाम	४०
६.५.	नगर नियोजन	४९
६.५.१	नगर नियोजन के विभिन्न आधार	४९
६.५.३	नगर के आकार तथा उसके गुण	४९
६.५.४	आठ प्रकार के ग्राम	५१
६.५.५	ग्राम व मार्ग संख्या	५४
६.५.६	मान के अनुसार नगर के भेद (दण्ड में)	५५
६.५.७	दुर्ग	५५
६.५.८	विश्लेषण	५५
६.६	द्रव्य तथा द्रव्य प्रमाण	५७
६.६.१	गृहद्रव्यप्रमाणानि	५७
६.६.१.१	द्वार का मान	५७
६.६.१.२	घर की ऊँचाई	५८
६.६.१.३	स्तम्भ का मान	५८
६.६.१.४	उत्कालक आदि अंग	५८
६.६.१.५	लेप व मसाले	५९
६.६.१.६	चित्रकर्म	६१

क्रमांक	विषय	पृष्ठ क्रमांक
६.७	वास्तुशास्त्र के अनुसार नियोजन के नियम	६३
६.७.१	आयादि	६५
६.७.२	ड्राईंग रुम	६९
६.७.३	बेडरुम या शयन कक्ष	७१
६.७.	रसोई घर	७३
६.७.४	पूजा घर	७६
६.७.५	जल विचार	७६
६.७.६	अध्ययन कक्ष	७९
६.७.७	शौचालय	८०
६.७.८	सेप्टीक टेंक	८१
६.७.९	बाथरुम	८२
६.८	आन्तरिक सज्जा	८३
६.९	द्वार	८९
६.९.१	पुरद्वार	८९
६.९.३	द्वार के गुण व दोष	९१
६.९.२	वर्णानुसार शुभ पद तथा द्वार	९१
६.९.४	पद द्वार परिणाम	९३
६.९.५	चार प्रकार का प्रवेश	९४
६.९.६	शुभ-अशुभ द्वार	९५

६.१ अध्यायों की संख्या व उनके विषय

समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ में कुल ८३ अध्याय हैं। इसमें ८००० से अधिक श्लोक हैं। राजा भोज द्वारा रचित इस ग्रन्थ में वास्तुशास्त्र के सभी पक्षों को विस्तार से बताया गया है। इसमें राजनिवेश, भवन-निवेश, नगर-निवेश सभी विषय शामिल हैं।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही सृष्टि के निर्माण, तत्वों की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है, विभिन्न ग्रह-नक्षत्र, पृथ्वी, द्वीप, द्वीप-वासी, उनके भोजन तथा पृथ्वी के मान एवं भारत वर्ष का वर्णन मिलता है। जिससे पता चलता है कि वास्तु विद्या एक देशीय न होकर सार्वभौमिक विद्या है। यह कालातीत विद्या है। इसके सिद्धान्त सभी देशों में वहाँ की परिस्थिति के अनुसार लागू होते हैं। उसके पश्चात् विभिन्न प्रकार की भूमि चयन, परीक्षण, माप की इकाई आदि का वर्णन करते हुए नगर-नियोजन, कक्ष-नियोजन, आयादि, विभिन्न प्रकार के शाल-भवन, द्वार, पदार्थ आदि को विस्तार दिया गया है। जैसा कि हम देख चुके हैं इस ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार की शैली से बने भवनों का वर्णन है। इस ग्रन्थ में भवन में की जाने वाली साज-सज्जा (आन्तरिक सज्जा) का वर्णन किया है। यह बताया है कि घरों की आन्तरिक सज्जा में किन-किन चित्र आदि का प्रयोग करना चाहिए तथा किन चित्र आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

इस ग्रन्थ में मंदिर निर्माण की विधि, जगती तथा लिंग लक्षण को भी विस्तार दिया है। इस ग्रन्थ में प्रतिमाओं की विभिन्न मुद्रा, लेप कर्म विधि आदि का वर्णन किया गया है।

ऐसा माना जाता है,कि राजा भोज ने लगभग ८४ ग्रन्थों की रचना की। राजा भोज बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे, अतः उनके ग्रन्थ भी बहुआयामी हैं, इसलिए समरांगण-सूत्रधार में हम भवनों का विस्तृत वर्णन पाते हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। राजा भोज ने युक्ति कल्पतरु नामक ग्रन्थ की रचना भी की है, जिसमें उन्होंने अनेक प्रकार के यन्त्रों का प्रयोग किया है। समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ में भी राजा भोज ने यन्त्र विधान नामक अध्याय में विभिन्न प्रकार के यान का वर्णन किया है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि समरांगण-सूत्रधार वास्तव में वास्तुशास्त्र का एक ऐसा ग्रन्थ है, जो वास्तु के सभी पक्षों को उद्घाटित करता है।

विभिन्न प्रकार की भूमि, विभिन्न प्रकार के पद्विन्यास, सभी पद्विन्यास में वृत्त पद्विन्यास का प्रयोग, मर्म, वास्तु के विभिन्न दोष, उन दोषों को दूर करने के उपाय, इन्द्रध्वज का महत्व आदि कुछ ऐसी विशेषताएँ इस ग्रन्थ में है जिसके फलस्वरुप यह ग्रन्थ वास्तुशास्त्र के जगत में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

मयमत

मय मुनि द्वारा रचित मयमत ग्रन्थ में ३६ अध्याय तथा ३३०० श्लोक हैं। दक्षिण भारतीय परंपरा में यह ग्रन्थ अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस ग्रन्थ में हमें ३२ प्रकार के पद्विन्यास का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ में विभिन्न प्रकार के नगर उनके भेद वर्ण, संख्या, मार्ग, उपयोग आदि के अनुसार बताए हैं। गर्भ विन्यास विधि जिसे उत्तर भारत में शिलान्यास के नाम से जानते हैं का विस्तार से वर्णन किया गया है। एक मंजिला भवन से लेकर सोलह मंजिल भवनों के अधिष्ठान, स्तंभ तथा शिखर के मान का वर्णन किया है। वास्तुशास्त्र के अन्य ग्रन्थ मानसार के समान इस ग्रन्थ में भवन के विभिन्न अंग उपपीठ, अधिष्ठान, स्तंभ, प्रस्तर, शिखर आदि के आनुपातिक मान को बताया है। शिला चयन की विधि का वर्णन किया है उचित-अनुचित शिला को बताया गया है। भवन निर्माण में प्रयुक्त होने वाले पदार्थ लकड़ी, ईंट तथा पत्थर के चयन हेतु उन्हें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग तीन श्रेणियों में विभाजित किया है, जो इसके अभियांत्रिकी पक्ष की विशिष्टता का द्योतक है। इसी ग्रन्थ में अनुकर्म विधि नामक अध्याय में जीर्णोद्धार के विभिन्न रहस्यों को उद्घाटित किया। इन नियमों का आज के समय में पालन कर अनेक प्रकार की कठिनाइयों से बचा जा सकता है।

६.२ वर्णाश्रम व्यवस्था

समरांगण-सूत्रधार ग्रंथ के आधार पर वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार चार वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बताए गए हैं।

(राजा पृथु ने) उसके बाद चार वर्ण व चार आश्रम का विभाग किया। जो लोग वेद में निरत (रूचि रखने वाले) थे, अच्छे आचरण वाले थे, जिनकी इन्द्रियाँ नियन्त्रण में थी, विद्वान थे, पवित्र थे, **ब्राह्मण** बनाए गए।।९.५।।[१]

जो शूरवीर थे, बड़े उत्साही थे, शरण में आने वाले की रक्षा कर सकते थे, शरीर से मजबूत व लम्बे-चौड़े थे, **क्षत्रिय** कहलाए।।११.५।।[२]

जिन लोगों में स्वाभाविक रूप से निपुणता पाई जाती है, जिनका धन उत्पन्न करने के प्रति सहज अनुराग है, (प्रेम है), जो श्रद्धालु, कुशल, दयावान है उन्हें **वैश्य** बनाया गया।।१३.५।।[३]

वे लोग जिनका न अधिक आदर था, न पवित्र थे, पिशुन (क्रूर, नीच) थे, न ही धर्म में रत थे, **शूद्र** कहलाए।।१५.५।।[४]

जैसा कि हम जानते है कि प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति अलग होती है। हर एक व्यक्ति के स्वभाव में दूसरे से भिन्नता पाई जाती है। उसकी रुचि दूसरे से भिन्न होती है। एक व्यक्ति को एक वस्तु पसंद है, तो वही वस्तु दूसरे का पसंद नहीं है। किसी को क्रीम कलर अच्छा लगता है तो दूसरे को लाल रंग अच्छा लगता है। किसी को अचार पसंद है तो दूसरे को मिठाई। वास्तुशास्त्र में व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार नियम बनाए गए है कि किस प्रकार की प्रकृति वाले व्यक्ति के लिए वास्तुशास्त्र के कौन से नियम लागू होगें।

वास्तुशास्त्र में व्यक्तियों को चार श्रेणी या वर्गों या वर्णों में विभाजित किया गया है। यही व्यवस्था वर्णाश्रम व्यवस्था कहलाती है। ये चार श्रेणियाँ इस प्रकार हैं-

(१) जिन व्यक्ति की प्रकृति अध्ययन, अध्यापन, मनन, चिन्तन प्रधान है, जो परोपकारी हैं, सेवाभाव से कार्य करते हैं। इन्हें शास्त्र में ब्राह्मण कहा गया है।

(२) जो प्रशासनिक कार्यों में रत हैं, लगे हैं। ये क्षत्रिय कहलाते हैं।

(३) जो व्यापार-व्यवसाय करते हैं। इन्हें वैश्य कहते हैं।

(४) जो चतुर्थ श्रेणी में आते हैं, अन्य तीन श्रेणी में लगे हुए लोगों की सेवा करते हैं। ये शूद्र कहलाते हैं।

आज भी हम देखते हैं कि कर्मचारी की भी चार श्रेणियाँ होती है, प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, तृतीय श्रेणी तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी।

आयुर्वेद की दृष्टि से भी देखें तो हम पाते हैं कि जब कोई रोगी वैद्य के पास जाता है, तब वैद्य, रोग के साथ-साथ उस व्यक्ति की मुख्य प्रकृति क्या है, उसमें अग्नि (पित्त) तत्व प्रधान है, या जल (कफ़) या वायु (वात) तत्व प्रधान है, उसके आधार पर वह उस व्यक्ति को औषधि देता है। साथ ही कहता है, कि भई इस औषधि को आप जल के साथ लेना। दूसरे व्यक्ति (जिसे यही रोग हो) की प्रकृति भिन्न हो तो उसे कहेगा कि इस औषधि को शहद के साथ लेना, किसी अन्य को कह सकता है कि तुम घी के साथ लेना, किसी को दूध के साथ औषधि लेने को कह सकता है। यह निर्धारण, रोगी की प्रकृति के अनुसार होता है।

ठीक इसी प्रकार वास्तुशास्त्र में भी व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार, नियम बताए गए हैं। उसके अनुसार निर्धारित करते हैं कि इस व्यक्ति के लिए उत्तर मुखी घर लेना ठीक है, तो दूसरे की प्रकृति के अनुसार दक्षिण या अन्य के लिए पश्चिम मुखी प्लॉट लेना उचित है।

एक व्यक्ति के लिए सफेद रंग शुभ है, दूसरे के लिए लाल तो अन्य के लिए सुनहरा रंग शुभ है।

किस व्यक्ति का कौन सा कक्ष किस दिशा में हो, इसका निर्धारण भी व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार किया जाता है। पूजा कक्ष, शयन कक्ष, आदि सभी कक्षों की दिशा का निर्धारण भी व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार ही होता हैं।

६.२.१ वर्णाश्रम का निर्धारण

ब्राह्मण- जैसा कि हमने देखा कि जिनका कार्य अध्ययन, अध्यापन, मनन व चिन्तन का है, जो परोपकारी प्रकृति के हैं, उनको ब्राह्मण कहा गया है। आज के समय में जो सेवा कार्य में रत है, परोपकार की भावना से कार्य करते हैं, जिनका उद्देश्य लोगों का भलाई करना है वे सभी ब्राह्मण के अन्तर्गत आते हैं।

क्षत्रिय- जो प्रशासनिक कार्यों में लगे है। प्रशासनिक कार्य चाहे वो शासकीय हो या अशासकीय सभी क्षत्रिय के अन्तर्गत आते हैं। उदाहरण के लिए शासकीय कार्यरत कलेक्टर, कमीशनर, पुलिस अधीक्षक आदि। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति आदि। मन्त्री, सचिव, कुलपति, आदि। हास्पिटल का अधीक्षक, डीन, डायरेक्टर आदि। जिस भी ऑफिस का वास्तु करना हो उसका प्रमुख व्यक्ति जो प्रशासन का कार्य कर रहा है, उसका वास्तु हम क्षत्रिय के लिए दिए गए नियमों के आधार पर करेंगे।

अशासकीय क्षेत्र में लें तो किसी कम्पनी या फेक्टरी का डायरेक्टर, मेनेजर, आदि। दुकान, वर्कशॉप, आदि का प्रमुख व्यक्ति। जो भी कार्यक्षेत्र हो उसके प्रमुख व्यक्ति के लिए वास्तु करना हो, उसके ऑफिस का वास्तु करना हो तो उसे वास्तुशास्त्र में बताए गए क्षत्रिय वर्ण के अनुसार वास्तुशास्त्र के नियम लागू किए जाएँगें।

वैश्य- वैश्य वर्ण के व्यक्ति की प्रकृति मुख्य रुप से व्यापार-व्यवसाय की है। इनका कार्य मुख्य से शास्त्रोक्त विधि से धन का अर्जन करना है। फिर चाहे वह व्यापार, व्यवसाय, विपणन, मार्केटिंग का कार्य करता हो, या शिक्षण का कार्य करता हो या डॉक्टर हो। यदि मुख्य ध्येय धन का अर्जन है तो वह व्यक्ति वैश्य की ही केटगरी (श्रेणी) में आएगा।

शूद्र-यह चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी है। आज के समय में हम नौकर आदि को इस श्रेणी रख सकते हैं। यह चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी है। वह चाहे ऑफिस में कार्य करने वाला लड़का हो या घर में कार्य करने वाले नौकर (सेवक) हो। सभी इसी श्रेणी में आएँगें।

यह चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी का वास्तु का उपयोग तब ही करना है तब हमारा क्लायन्ट उसका आफिसर है, उसका मालिक है। जब हम मालिक के घर या ऑफिस का वास्तु सुधार करेंगे तब उसके नौकर के लिए शूद्र के लिए बताए गए नियम लागू किए जाएंगे।

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ में बताया है कि वर्णाश्रम व्यवस्था कार्य के क्षेत्र पर आधारित है। उसके विस्तार में जब हम जाते हैं, तो पाते हैं कि जो व्यक्ति है, जातक है उसके कार्य का क्या क्षेत्र है उससे उसका वर्ण निर्धारित करते हैं।

एक उदाहरण लेकर देखने का प्रयास करेंगे।- एक व्यक्ति चिकित्सक है, डॉक्टर है, वह एक संस्थान में कार्यरत है, अधीक्षक भी है, अपनी डिस्पेन्सरी भी चलाता है। अब उसके चेम्बर का वास्तु या आन्तरिक सज्जा करना है। तो जो उसके अस्पताल का चेम्बर है, जहाँ वो अधीक्षक भी है, उसमें वह प्रशासन का कार्य करता है तो उसके लिए चिकित्सक तथा क्षत्रियोचित गुण से मिला हुआ वास्तु करना होगा।

जब वह किसी मरीज को उसी अस्पताल में देख रहा है, तो उसे ब्राह्मणोचित गुण का वास्तु करना होगा, सेवाकार्य का। उसी डॉक्टर के क्लिनिक का वास्तु में ब्राह्मणोचित गुण के साथ-साथ वैश्योचित गुण का वास्तु करना होगा, जिससे सेवा के साथ-साथ उसका व्यवसाय भी चले आर्थिक रूप से भी वो सम्पन्न हो। जैसा जिसका स्वभाव, प्रकृति एंव आचरण हो उसी के अनुरूप उसका वर्ण जानना।

इस प्रकार से व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण किया जाता है।

६.२.२ रंग

अब हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि ब्राह्मण आदि चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) व्यक्ति के लिए कौन-कौन से रंग शुभ हैं?

ब्राह्मण के लिए सफेद रंग शुभ बताया है। क्षत्रिय के लिए लाल, वैश्य के लिए सुनहरा तथा शूद्र के लिए काला रंग शुभ कहा है।

ब्राह्मण वर्ण के अन्तर्गत कौन-कौन से व्यक्ति आते हैं यह हम देख चुके हैं।

सफेद रंग ज्ञान, कीर्ति, मोक्ष, शान्ति, श्री, सौभाग्य व पवित्रता को प्रदर्शित करता है। इस रंग का प्रयोग करने से इस प्रकार के गुण विकसित होते है।

इस रंग का प्रयोग पर्दे, जमीन (फ्लोरिंग), वस्त्र, आदि के रुप में किया जा सकता है। इस रंग का प्रयोग कमरे की दीवार, आन्तरिक सज्जा व घर के बाहर (रंग) कर सकते हैं। इस रंग के वाहन का प्रयोग करना भी इन्हीं गुणों को विकसित करता है।

जैसा कि हम जानते हैं कि सात रंग की चकरी बनाकर घुमाने से सफेद रंग दिखता है या प्रिज्म से सफेद रंग की किरण का अपवर्तन कराने पर वह सात रंग में दिखती है। इसका तात्पर्य यह है कि सफेद रंग सातों रंग से मिलकर बनता है। इससे हम यह पाते हैं कि सफेद रंग में सातों रंग के गुणों का समावेश है। हम जो भी गुण विकसित करना चाहे सफेद रंग से विकसित किया जा सकता है। इसीलिए वास्तुशास्त्र में यह भी कहा गया है कि सफेद रंग सभी के लिए शुभ है।

इस बात को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि सफेद रंग में कोई अन्य रंग मिलाने पर वही रंग रहता है, अन्य तीसरा रंग नहीं बनता है। दूसरे रंग के गुण ही प्रकट होते हैं। सफेद रंग के साथ जो गुण विकसित करना चाहे कर सकते हैं।

वास्तु परामर्श में सफेद रंग का प्रयोग

किसी घर या स्थान का वास्तु परामर्श (सलाह) करने जाएं, वहां समस्या यह हो कि वहॅा अशान्ति रहती है तो आप दीवार आदि पर सफेद करने का सुझाव दे सकते हैं। ध्यान आदि का स्थल बनवाना हो, अध्ययन कक्ष बनवाना हो तो सफेद रंग का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए।

लाल रंग

वास्तुशास्त्र में चार वर्ण बताए हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र। हम यह देख चुके हैं कि सफेद रंग ब्राह्मण वर्ण के लिए शुभ है।

वास्तुशास्त्र में क्षत्रिय के लिए लाल (ताम्बे के समान) रंग शुभ बताया है।

लाल रंग वश्य, आकर्षण, श्री, सौभाग्य, विजय, क्रियाशीलता, क्रोध, प्रदर्शित करता है।

देवी के उपासक, शक्ति के उपासक लाल रंग का प्रयोग करते हैं।

लाल रंग जैसा हमने जाना कि क्रियाशीलता को अभिव्यक्त करता है, प्रदर्शित करता है, ऊर्जा प्रदान करता है, ऊर्जा देता है। अब लाल रंग का प्रयोग करने पर ऊर्जा तो प्राप्त हो गई परन्तु वही ऊर्जा का उपयोग न हो, व्यक्ति उस ऊर्जा को कार्य रुप में परिणत न करें तो वही ऊर्जा क्रोध के रूप में अभिव्यक्त होने लगती है।

आइए एक उदाहरण से देखें कि जब ऊर्जा अधिक हो और कार्य रुप में परिणत न हो तो कैसे वह क्रोध के रूप में बाहर आती है- सामान्य रुप से भी हम देखें तो एक युवा है, उसमें बहुत ऊर्जा है, अब उस युवा को कार्य न दिया जाए, कार्य करने में बारबार रोका जाए तो क्रोध के रूप में वही ऊर्जा अभिव्यक्त होने लगती है, तो लाल रंग ऊर्जा प्रदान करता है, क्रियाशीलता बढ़ाता है।

क्षत्रिय व्यक्ति जो कि प्रशासनिक कार्य करता है, इस कार्य में क्रियाशीलता की अधिक आवश्यकता बनी रहती है। अतः वास्तुशास्त्र में कहा गया है कि उसके लिए लाल रंग शुभ है।

लाल रंग का प्रयोग

लाल रंग के प्रयोग से यह तात्पर्य कदापि नहीं लेना चाहिए कि पूरा कमरे का रंग लाल कर दिया जाए, सारे पर्दे आदि लाल रंग के कर दिए जाए। इस रंग का प्रयोग अत्यन्त सावधानी पूर्वक करना चाहिए।

जब हम किसी आफिस (प्रशासनिक अधिकार प्राप्त व्यक्ति) का वास्तु करें और वहाँ क्षत्रिय या प्रशासनिक गुण बढ़ाना हों, विकसित करना हो, तो लाल रंग का प्रयोग उस कमरे की बनी हुई किनार, बार्डर, पेलमेट आदि की लीपिंग, फर्नीचर आदि की बार्डर, फोटो फ्रेम आदि में कर सकते हैं। उस कमरे में छोटी आइटम (सामान) लाल रंग का रख सकते हैं।

वास्तु परामर्श करते समय ध्यान देने योग्य विषय

वास्तु परामर्श करते समय यदि क्लायन्ट यह कहे कि हमारे यहाँ वाद-विवाद या आपस में झगड़े अधिक होते है, छोटी-छोटी सी बात पर ही वाद-विवाद हो जाता है, तो हमें यह देखना चाहिए कि क्या उनके घर में दीवारों पर लाल रंग का प्रयोग किया गया है यदि हाँ तो ऐसा सुझाव देना चाहिए कि आप दीवारों का रंग बदल दें (सफेद या क्रीम कलर करने का सुझाव दिया जा सकता है।) (आपस में झगड़े आदि होने के कई कारण हैं, उनमें से एक कारण लाल रंग भी है। पाठ्यक्रम में यथास्थान अन्य कारण भी बताए जाएँगें।)

पीला (सुनहरा) रंग

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में वैश्य प्रकृति के व्यक्ति के लिए पीला (सुनहरा) रंग शुभ बताया है।

इस रंग का प्रयोग करने से वैश्योचित गुण विकसित होते हैं। हमारे वास्तु परामर्श में इसी रंग का प्रयोग सर्वाधिक किया जाता है।

आज हमारे पास जो क्लायन्ट का वर्ग है, उनसे से अधिकांश व्यक्ति धन चाहता है। धन प्राप्त करना चाहता है या धन की अभिवृद्धि करना चाहता है।

इस रंग का प्रयोग उनके ऑफिस की दीवार, सफेद रंग के प्रयोग के साथ सुनहरे रंग बार्डर, लीपिंग आदि पर सफलता पूर्वक किया जा सकता है। दरवाजे में लगाए जाने वाले कब्जे, हेन्डल आदि भी इसी रंग के लगाए जा सकते हैं।

सोफे, पर्दे आदि का रंग सुनहरा हो सकता है। कुछ बहुत ही सुन्दर वस्तुएँ जो सुनहरे रंग की हो तथा क्लायन्ट को दिखाई दें (कुर्सी पर बैठने के बाद, क्लायन्ट के सामने की ओर, उसकी टेबल पर) इस प्रकार रखी जा सकती हैं।

इस रंग का प्रयोग व्यक्ति अपने पहनने के वस्त्र आदि में किनार पर कर सकता है। इस प्रकार का प्रिन्ट भी शुभ है।

काला रंग

काला रंग शोक, अपकीर्ति, दुःख आदि को प्रकट करता है। अतः सामान्य रुप में वास्तु में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

एक-एक रंग का अपना महत्व है, रंगों के बारे में अधिक जानकारी के लिए निघण्टु ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए।

६.२.३ स्वाद

जैसा कि हम जानते हैं कि हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। आँख, नाक, कान, जीभ व त्वचा।

आँख से हम आकार व रंग देखते हैं। वास्तुशास्त्र के अनुसार या वास्तुशास्त्र में बताए अनुसार हमने आकार व रंग का अध्ययन तो कर लिया, आइए अब स्वाद (जीभ ज्ञानेन्द्रिय के विषय) का अध्ययन करें तथा यह देखें कि स्वाद का मानव के मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है। स्वाद किस प्रकार उसकी मनोवृत्ति को प्रभावित करते हैं।

स्वाद के प्रभाव के अध्ययन के लिए आधुनिक फिजियोलॉजी का ज्ञान हो तो बहुत अच्छा है, परन्तु हम यहाँ सामान्य तरीके से, रुप से विषय का प्रतिपादन करेंगे।

वास्तुशास्त्र में बताया गया है कि ब्राह्मण प्रकृति के व्यक्ति के लिए मीठा स्वाद उचित है या उसका भोजन मीठा होना चाहिए। इससे ब्राह्मणोचित गुण विकसित होते हैं। मीठा स्वाद जलीय तत्व को बढ़ाता है, सात्विकता को बढ़ाता है। प्रायोगिक रुप से भी हम देखते है कि पण्डित जी मीठा पंसद करते हैं, मथुरा के पेठे जगत में प्रसिद्ध हैं। इसके अलावा इस प्रकार भी देख सकते हैं कि ब्राह्मण प्रकृति के व्यक्ति सामान्य रुप से अधिक मिर्च या तीखे या कड़वे पदार्थ को पसंद नहीं करते हैं।

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि मीठा पदार्थ सात्विक गुणों को विकसित करने में सहायक होता है।

आगे हम देखेंगे कि मिर्च या तिक्त पदार्थ का भोजन करने से व्यक्ति में क्रियाशीलता बढ़ती है, स्थिरता में कमी आती है। अम्ल युक्त पदार्थ जैसे लवण, अचार, खटाई आदि का प्रयोग करने से वैश्योचित गुण विकसित होते हैं। आइए देखें कि वास्तु परामर्श में इसका उपयोग किस प्रकार किया जाता है।

वास्तु परामर्श में मीठे स्वाद का उपयोग

किसी ऐसे व्यक्ति को वास्तु परामर्श देना हो जिसका कार्य गम्भीर मनन, चिन्तन का हो, जिसके कार्य में धैर्य की अत्यन्त आवश्यकता हो, उसके कार्य में एकाग्रता आवश्यक हो तथा उसकी यह परेशानी हो कि उसका चित्त या मन एकाग्र नहीं हो जाता है, उसके कार्य करने की शीघ्रता रहती है। तब हम उस व्यक्ति के भोजन का अध्ययन करेंगे साथ ही यह भी देखेंगे कि वह व्यक्ति को किस प्रकार के पदार्थ पसंद हैं।

उसके भोजन में मिर्च की अधिकता होने पर, लहसुन, प्याज आदि का प्रयोग करने पर चित्त की एकाग्रता प्रभावित होती है। इन पदार्थों के भोजन से क्रियाशीलता बढ़ती है। यदि इस प्रकार के पदार्थ को भोजन में वह व्यक्ति करता हो तो उसे सुझाव देंगे कि आप इन पदार्थों का भोजन क्रमशः कम करें या बन्द ही कर दें तथा आपके भोजन मीठा स्वाद लिए हुए हो।

जब वास्तु परामर्श की गहराई में जाएगें तब व्यक्ति की रुचि के भोजन के अनुसार आप उस व्यक्ति की प्रकृति बता पाएँगे। जिस प्रकार का भोजन व्यक्ति करता है उसकी प्रकृति उसी प्रकार की बनने लगती है। यदि वह प्रकृति उसके व्यवसाय से मेच न करती है, सामञ्जस्य न रखती हो तो व्यक्ति या तो व्यवसाय बदले या अपनी प्रकृति बदले। या तो व्यवसाय के अनुसार अपनी प्रकृति बना ले या अपनी प्रकृति के अनुसार व्यवसाय करें।

व्यक्ति अपनी प्रकृति अपने भोजन से बदल सकता है। (प्रकृति-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र)

क्षत्रिय के लिए भोजन

जैसा कि हम देख चुके है कि क्षत्रिय को क्रियाशीलता की अधिक आवश्यकता होती है। क्रियाशील रहने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। खाने-पीने के जितने भी भोज्य पदार्थ हैं, वे सामान्य रुप से तीन प्रकृति या मिश्रित प्रकृति की होती है- वात, पित्त व कफ।

पित्त प्रकृति के भोजन में अग्नि तत्व प्रधान रुप से रहता है। कफ प्रकृति के भोजन में प्रधान रुप से जल तत्व रहता है। जो पदार्थ पित्त प्रकृति कारक हैं, वे अग्नि को बढ़ाते हैं, क्रियाशीलता बढ़ाते हैं जो कि क्षत्रिय व्यक्ति के लिए आवश्यक है।

उदाहरण के लिए अग्नि का कार्य करने वाले, धोबी, होटल व्यवसायी, ट्रक-ड्रायवर या ड्रायवर, बॉयलर के सामने कार्य करने वाले श्रमिक या इंजीनियर, सुनार, आदि ये सभी अग्नि का कार्य करते हैं तो इन्हें पित्त कारक भोजन दिया जाना चाहिए।

वास्तु परामर्श व पित्त युक्त भोजन

अब मान लो किसी ऐसे व्यक्ति का वास्तु परामर्श हमें करना है जिसे शारीरिक श्रम अधिक करना रहता है, जिसे शारीरिक व मानसिक रुप से क्रियाशीलता की अधिक आवश्यकता रहती है तथा उसका भोजन कफ युक्त है, मीठा भोजन पसंद करता है तो वह व्यक्ति में हम शारीरिक से बहुत अधिक क्रियाशील नहीं रह पाता है, कार्य करते समय सुस्ती या आलस्य का अनुभव करता है।

एक उदाहरण के माध्यम से इस विषय को देखें-एक परिस्थिति है जिसमें एक व्यक्ति है, कुछ व्यापार करता है, कोई दुकान चलाता है, उदाहरण के लिए जनरल स्टोर्स है, कोई महिला उसके पास दुकान पर आकर कोई वस्तु (उदाहरण के लिए लिपिस्टिक) माँगती है, दिखाने के लिए कहती है, तो वो या तो नौकर से कहता है कि भई इन्हें लिपिस्टिक दिखाओं या यह कह सकता है कि आपको कौन से रंग की लिपिस्टक चाहिए. किस ब्राण्ड का लिपिस्टिक चाहिए। आदि-आदि।

दूसरी परिस्थिति-उपरोक्त परिस्थिति में ही कोई दूसरा दुकानदार है, महिला उसके लिपिस्टिक माँगती है, दिखाने के लिए कहती है तो वह स्वयं उठकर, अलग-अलग रंग व ब्राण्ड के लिपिस्टिक दिखाता है, परिस्थिति अनुसार सुझाव भी दे देता है कि यह विशेष ब्राण्ड बहुत अच्छा है, देखा परखा है, गारण्डेट है, अन्य रंग व ब्राण्ड दिखाने में भी आलस्य नहीं करता, झुंझलता नहीं है तथा अन्य सामान भी बताता है कि आप नेल-पॉलिश या अन्य सामान भी लें।

उपरोक्त परिस्थिति का जब हम गहराई से अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि दूसरा व्यक्ति अधिक क्रियाशील है, शारीरिक रुप से एक्टिव है, आलस्य से रहित है। इस प्रकार रहने में अन्य बातों के अलावा उसके भोजन का बहुत बड़ा योगदान है। पहली परिस्थिति में इस बात की बहुत अधिक संभावना है कि वह दुकानदार कफ युक्त भोजन करता हो।

इस प्रकार से हमने देखा कि स्वाद के व्यक्ति के नेचर पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

वैश्य व्यक्ति के लिए स्वाद

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ में वैश्य या व्यापारी व्यक्ति के लिए अम्ल युक्त भोजन करने का विधान बताया है।

अम्ल युक्त भोजन का तात्पर्य है उसमें भोजन में खटाई हो, नीम्बू का प्रयोग हो, वह अचार आदि का प्रयोग करें, अमचूर, कैरी आदि का प्रयोग करें।

वैश्य प्रकृति के व्यक्ति में बहुत हद (सीमा) तक धैर्य, वाक्पटुता, क्रियाशीलता, निर्णय में कुशलता की आवश्यकता होती है।

वास्तु में प्रयोग

एक व्यापारी को क्रोधी, आलसी व अकर्मण्य नहीं होना चाहिए। अब यदि उसका भोजन ऐसा हो जो पित्त प्रकृति वाला हो तो यह संभव है कि वह ग्राहक को सामान दिखाते समय झुंझला जाए, उससे कहे कि यही है लेना हो तो लो या यह कहे कि आपको कैसा

चाहिए स्पष्ट रूप से बताएँ या इतना सब तो दिखा दिया आदि-आदि। कभी-कभी देखते हैं कि ग्राहक से वाद-विवाद भी हो जाता है। ऐसा होने की आशंका मिर्च युक्त भोजन करने पर अधिक होती है।

ऐसे व्यक्ति को सुझाव दिया जाना चाहिए कि आपका भोजन अम्ल युक्त हो।

शूद्र प्रकृति के लिए भोजन

यहाँ हम इस विषय को इस प्रकार देखेंगे कि किसी व्यक्ति को कड़वे स्वाद वाला भोजन पसंद हो तो उसकी इस प्रकार की प्रकृति होती है। इसमें सुधार कर जिस प्रकृति को विकसित करना हो (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) वैसा भोजन करने का सुझाव देना चाहिए।

व्यक्ति के स्वाद के अनुसार उसकी प्रकृति बताए।

व्यक्ति की पसंद के रंग के अनुसार उसकी प्रकृति बताए।

वास्तु परामर्श के लिए इसे हमने ही अपना एक प्रमुख आधार बनाया है। अर्थात वास्तु परामर्श देते समय हम इस बात को अधिक महत्व देते है कि उस व्यक्ति का फिलहाल व्यवसाय कौन सा है। हम उसके यहाँ किस प्रकार का वास्तु करें कि वह उस व्यवसाय में उत्तरोत्तर वृद्धि व विकास को प्राप्त करें।

इस प्रकार से हमने देखा कि किसी भी व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण कई प्रकार से किया जा सकता है। हमारा सारा परामर्श उसके वर्ण निर्धारण करने के बाद ही शुरू होता है। अतः वर्ण का निर्धारण बड़ी सतर्कता व सावधानी से करना चाहिए।

इससे स्पष्ट होता है कि वर्ण-व्यवस्था जाति पर आधारित न होकर, व्यक्ति के स्वभाव पर आधारित है।

भूमि के रंग, गन्ध, स्वाद, आकार आदि के माध्यम से रंग, गन्ध, स्वाद, आकार आदि के गुण बताए गए हैं।

६.३ भूमि

समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ में भूमि को स्थान, गुण आदि के आधार पर सोलह प्रकार में विभाजित किया है।

६.३.१ समरांगण-सूत्रधार

६.३.१.१ सोलह प्रकार की भूमि एवं विशेषता

भूमि	लक्षण
बालिशस्वामिनी	बालिश (बालक) राजा, सज्जन प्रजा
भोग्या	सुन्दर पुरुष, पैदावार के अधिक भाग का उपयोग, भोग
सीता-गोचर-रक्षिणी	पर्वतों के बीच, सीमा व क्षेत्र विभक्त हो
अपाश्रयवती	नदियों, पर्वतों, व वन में बड़े भय से प्रवेश, जनाश्रय के अयोग्य
कान्ता	मनोहर, मनुष्य रहने के लिए लालायित हो
खनिमती	सोना, चाँदी आदि धातुएँ, नमक युक्त
आत्मधारिणी	दण्ड, कोश, आसन आदि से वश में न हों, कम लोग
प्रसाधिता	बाजार में क्रय-विक्रय के लिए प्रसिद्ध, व्यापारियों से अलङ्कृत
वणिक्प्रसाधिता	बाजार में क्रय-विक्रय के लिए प्रसिद्ध, व्यापारियों से अलङ्कृत
द्रव्यवती	वेत्र (बेंत), शर आदि वृक्ष से युक्त
अमित्र-घातिनी	जनपद ठीक प्रकार से बंटे हुए हो, लोग मित्रवत
आश्रेणी-पुरुषा	कैदी भी न हो, विनीत पुरुषों से भरी हो,
शक्यसामन्ता	सामन्त राजा, मन्त्र व उत्साह से विमुख
देव-मातृका	बारिश की प्रतीक्षा न कर, नदी आदि के जल से खेती कर
धान्या	बिना प्रयत्न के बोए हुए बीज अधिक मात्रा में उपजते हैं
हस्तिवनोपेता	हाथी युक्त जंगल जिससे राजा की सेना की वृद्धि करने में सक्षम
सुरक्षा	विषम होने के कारण शत्रुओं के द्वारा नियन्त्रण में न लाई सके

६.३.१.२ देश

देश तीन प्रकार के कहे गए हैं- **जाङ्गल, आनूप** व **साधारण**।

जाङ्गल

जिस भूमि में पानी दूर हो, जहाँ रेत अधिक पाई जाती है (रेगिस्तान), छोटे-छोटे काँटेवाली झाड़ियाँ हो, जो स्थान रूखा हो, गर्म हो, जहाँ तेज हवाएँ चलती हो तथा जहाँ की मिट्टी काली हो, उसे जाङ्गल देश मानते हैं।

आनूप

जिस भूमि में जल पास ही हो, जो स्निग्ध (चिकनी) हो, जहाँ बहुत मछली व मांस हो, जो शीतल हो, जहाँ नदियाँ हों, जहाँ बहुत सङ्ख्या में चिकने व ऊँचे वृक्ष हों, वह भूमि (देश) **आनूप** कहलाती है।

साधारण

जो स्थान न तो अधिक ठण्डा हो, न ही बहुत गर्म हो, उस देश को देशविशारदों (विशारद-कुशल, चतुर, बुद्धिमान) ने **साधारण** कहा है।

६.३.१.३ देश हेतु शुभ भूमि

- जो भूमियाँ धातुओं के स्पन्दन (कम्पन) से शोभित हो
- कुंज, झाड़ियों, वृक्षों, लताओं आदि से आवृत्त
- बड़ी-बड़ी शिलाओं वाले पर्वतों से घिरी
- जहाँ तीर्थ के अवतार नहाने योग्य सुन्दर मीठे जल वाली नदियाँ अधिक पाई जाती हों
- नदियों के किनारे चित्र-विचित्र पेड़ों से शोभित हों
- जिन भूमियों के वनों में कोयल के मधुर आवाज से गूंज रही हो,
- जहाँ पर मधुमत्त भौंरे गुंजार कर रहे हों,
- जो भूमि चित्र-विचित्र फूल व फल से भरी हो,
- इस प्रकार से वन सुशोभित हो,
- जिस देश में पानी का आधिक्य हो,
- भरे-पूरे तालाब,
- देवखात आदि जलागार हों, जिनमें कमलों पर भौंरों की श्रेणी गुंजार करती हुई शोभा दे रही हो,
- जो बराबर, सुगन्धयुक्त, सुन्दर, शीतल तथा अभंगुर तथा अक्षत सीमा वाले धान्य को उत्पादन करने वाले क्षेत्रों से ढकी हुई हो।
- जो काँटे वाले वृक्ष, पत्थर व दीमक (वल्मीकैः) के बिना हो

- जहाँ बहुत मात्रा में धान्य व ईंधन हो
- जिनकी सीमाएँ विभक्त हो, चरागाहों से सुशोभित हो
- घास व समुद्र के बीच में मीठे व शीतल जल हो, ऐसी पृथ्वी प्रशस्त (शुभ, उत्तम) मानी गई है।
- जो भूमि दुष्टों के द्वारा सताई नहीं जाती,
- जहाँ पर अनेक प्रकार के घर बनाए गए हैं,
- जहाँ पर भय व व्याकुलता (घबराहट) न हो, जहाँ मन रमता हो
- इस प्रकार के गुणों से युक्त भूमि पर यथा स्थान जनपद, खेट, ग्राम, पुर आदि का विनिवेश करना चाहिए।

किले हेतु उचित भूमि

अब किले के लिए उचित भूमि का वर्णन करते हैं। किले के लिए चार प्रकार की भूमि उत्तम बताई गई है- **पर्वत, वन, जल** व **प्राकार**।

गिरि (पर्वत) दुर्ग वाली भूमि वह है जिस पर चढ़ना दुर्गम होता है। जो छेनी (पत्थर, धातु आदि का अस्त्र) से काट-काटकर (चट्टानों को) समतल बनाई जाती है, जल से युक्त हो।

जहाँ काँटेवाले वृक्ष हों, जहाँ जलाशय हों, वन हो, उसमें प्रवेश के लिए गुप्त मार्ग हों, ऐसी भूमि को **मूल दुर्ग** के लिए कहा है।

जलदुर्ग हेतु उपयुक्त भूमि

जिस भूमि पर, मीठे जल वाले द्वीपों में अगाध (बहुत अधिक) जल भरा हो, उसके बाहर सुन्दर स्थान दिखाई देता हो, ऐसी भूमि **जलदुर्ग** के लिए उपयुक्त होती है।

६.३.१.४ पुर (नगर) हेतु उपयुक्त भूमि

- स्निग्ध, सारभूत, शुद्ध, प्रदक्षिण जलाशय से युक्त हो, बहुत पानी वाली, वृक्षों से सघन ढकी हुई हो,
- पूर्व-उत्तर दिशा में जिसका झुकाव हो
- दूब, औषधि, मुञ्ज, कुरुन्द, कुश, वल्कल जिसके चारों ओर हो।
- जहाँ मीठे और साफ पानी के जलाशय हो।

- वास्तु, यज्ञ, मन्दिर, आराम उद्यान, आदि की सामग्री पाई जाती हो।
- जहाँ तालाब व वापी के स्थान हों।
- जहाँ पर वाहन आराम से चल सकें,
- जहाँ मिथुन (संभोग) करने के लिए रतिप्रद स्थान हों,
- ऐसी भूमियों पर पुर (नगर) के लिए उत्तम होती है।

६.३.१.५ शुभ भूमि

गन्धानुसार

- जिस भूमि पर कुङ्कुम, अगरु, कपूर, इलायची, चन्दन आदि की अलग-अलग या मिश्रित सुगन्ध हो।
- कल्हार, गुलाब, कमल, मालती, चम्पक, नीलकमल से सुगन्धित हो या
- जल में पैदा होने वाले अन्य फूलों से सुगन्धित हो
- गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, शहद, घी, के समान गन्ध हो
- शराब, माध्वी (महुए की शराब, अंगूर की शराब) गजमद, आसव (शराब) के समान गन्ध वाली हो
- शालिपिष्टक (शालि-एक प्रकार का चावल के पीसने से तैयार आटा) के समान गन्ध,
- धान्य के समान गन्ध वाली इस प्रकार की भूमि सभी वर्ण के लिए उत्तम है।

वर्णानुसार (रंगानुसार)

सफेद, लाल, पीली व काले रंग की भूमि क्रम से ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए अथवा सबके लिए शुभ है।

स्वादानुसार

मीठी, कषाय (हरड़ के समान स्वाद), तिक्त (निम्ब के समान स्वाद) व कटु (कड़वी) स्वाद वाली भूमि ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए क्रम से शुभ है या सभी के लिए मीठे स्वाद वाली भूमि शुभ है।

स्पर्शानुसार

- जो भूमि गर्मी में ठण्डी व ठण्ड में गर्म मालूम पड़े,
- वर्षा में ठंडी व गर्म दोनों मालूम हो, वह भूमि उत्तम कही गई है।
- मृदङ्ग, वल्लकी (वीणा), वेणु (बांसुरी), दुन्दुभि (नगाड़ा) समान ध्वनि करने

वाली

- हाथी, घोड़े, समुद्र के समान ध्वनि वाली भूमि शुभ होती है।

अशुभ भूमि

- राख, कोयला, कपाल (खोपड़ी), हड्डी, भूसी, बाल, विष, पत्थर, चूहों के बिल,

दीमक के घर, बालू आदि से भरी हुई

- रुखी, नीची उपजाऊ, नीची, कटी-फटी, ऊसर (बंजर)
- जिसमें पानी वामावर्त (anticlockwise) बहता हो
- कम वर्षा वाली, ऊँची-नीची
- कड़वे, काँटे वाले, निःसार, सूखे, बिना फल वाले वृक्षों से युक्त भूमि
- हिंसक पक्षियों से भरी हुई भूमि
- जिस भूमि पर नदियाँ पूर्ववहा (पहले) बहती थी
- चर्बी, खून, मज्जा, मल, मूत्र के समान गन्ध वाली
- तैल व शव के समान गन्ध वाली
- जो भूमि हमेशा धूम्र (धुएँ के समान) रंग की हो या मिश्र-वर्ण की हो
- विवर्ण हो, रुखी हो
- जिस भूमि का स्वाद तिक्त, अम्ल, लवण के समान हो
- जो भूमि रुखे व तीखे स्पर्श वाली हो
- जो हमेशा गर्म या ठंडी हो
- जिसे छूने में सुख न हो, को छोड़ देना चाहिए।

गीदड़, ऊँट, कुत्ता, गदहा के आवाज के समान, झरने के समान आवाज वाली, टूटे बर्तन के समान आवाज वाली, क्रूर आवाज वाली भूमि शुभ नहीं होती है।

६.३.१.६ भूमि परीक्षा

घनत्व परीक्षण

स्नान कर पवित्र हो, सफेद वस्त्र व माला को पहन कर, ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाकर, वास्तुदेव की पूजा कर, भूमि के बीच में एक हाथ का गड्ढा करना चाहिए।

टेबल २.१ वर्णानुसार शुभ भूमि

वर्ण	चौ : ल	रंग	वृक्ष से युक्त	झुकाव	स्वाद
ब्राह्मण	१:१	सफ़ेद	गूलर	उत्तर	कषाय व मधुर
क्षत्रिय	१:(१+१/८)	लाल	पीपल	पूर्व	तिक्त
वैश्य	१:(१+१/६)	पीला	पाखर	पूर्व	अम्ल
शूद्र	१:(१+१/४)	काला	वट	पूर्व	कटु

उस मिट्टी को निकाल कर उस गड्ढे को उसी मिट्टी से भर दें। यदि गड्ढा भरने के बाद मिट्टी बच जाए तो भूमि श्रेष्ठ, बराबर रहने पर मध्यम होती है। मिट्टी कम पड़ जाए तो भूमि अधम कहलाती है, यह मनुष्यों के लिए शुभ नहीं है।

विश्लेषण-जो भूमि ठोस हो, जिसका घनत्व अधिक हो वह शुभ है।

गड्ढा खोदने पर उस मिट्टी के अन्दर यदि मणि, शङ्ख, मूँगा आदि मिले तो वह भूमि उत्तम बताई गई है।

जिस भूमि में खुदाई करने पर थोड़ा-सी भी भूसी, बाल, कोयला, पत्थर, राख, हड्डी न निकले वह भूमि शुभ होती है।

आर्द्रता परीक्षण

भूमि में खुदे हुए गड्ढे को पानी से भर दें, (किसी दिशा में) सौ कदम जाए, पुनः वापस आकर पानी का स्तर देखें, यदि उतना ही जल भरा हो तो वह भूमि सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली होती है। कम हो जाए तो मध्यम तथा खाली हो जाए तो भूमि अधम कही गई है।

विश्लेषण-जिस भूमि में नमी का स्तर ठीक हो वह शुभ है। अन्यथा होने पर भवन बनाते समय वह कॉलम, ईंट की जुड़ाई आदि की नमी को सोख सकती है, जिससे निर्माण कमजोर रहने की आशंका होती है।

विकिरण परीक्षण

गड्ढे में वर्ण के अनुसार (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र), सफेद आदि (सफेद, लाल, पीले व काले) रंग की मालाएँ रखी जाए, जिस रंग की माला न सूखे, उस वर्ण के लिए वह भूमि शुभ होती है।

विश्लेषण-इस परीक्षण से उस भूमि पर किस प्रकार का विकिरण स्वाभाविक रूप से उपलब्ध है, यह ज्ञात होता है। जिस भूमि पर सफेद रंग का स्वाभाविक रूप से अधिक होगा तो सफेद रंग का फूल या माला अधिक समय तक खिली रहेगी, अर्थात् ऐसी भूमि ब्राह्मण वर्ण के लिए शुभ है, इसी प्रकार अन्य रंग से अन्य वर्ण को जानें।

विकिरण परीक्षण प्रकार-२

गड्ढे में उत्तर आदि दिशा के क्रम से दीपों को जलाकर रखें, जिस दिशा का दीपक चिर समय (सबसे अधिक समय) तक जलता रहे, उस दिशा के वर्ण के लिए भूमि शुभ होती है।

हमने देखा कि भूमि १६ प्रकार की होती है। स्थान विशेष के अनुसार भूमि के गुण परिवर्तित होते हैं। नगर व दुर्ग के लिए किस प्रकार की भूमि है। दुर्ग के निर्माण के समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि दुर्ग किस प्रकार से अजेय रहे। उसमें निवास करने वाले व्यक्ति सुरक्षित रहें। इसके साथ हमने यह भी देखा कि रंग, गन्ध, स्वाद तथा स्पर्श के आधार पर किस प्रकार की भूमि शुभ है। वर्ण के अनुकूल भूमि को भी जाना। भूमि परीक्षण की विभिन्न विधियों के माध्यम से हमने यह जाना कि किस प्रकार की भूमि निर्माण हेतु उपयुक्त है।

६.३.२ मयमत

६.३.२.१ वास्तु का मुख्य आधार- भूमि

अन्य अर्थात प्रासाद, यान तथा शयन (फ़र्नीचर, पलंग इत्यादि) आदि का आश्रय, भूमि होने के कारण पुरातन ने इसे **मुख्य** कहा है।

भूमि परीक्षा के लिए आधार

- वर्ण
- गन्ध
- रस

- आकार
- दिशा
- शब्द
- स्पर्श
- संवेदना

भूमि के प्रकार

५ यह क्रम से दो प्रकार की होती है-मुख्य व गौण।

६ ग्राम आदि के लिए **गौण** (secondary) तथा भवन के लिए **मुख्य** भूमि, शुभ कही गई है।

६.३.२.२ भूमि परीक्षा

१ देवताओं व ब्राह्मणों के लिए (चौकोर के साथ-साथ) आयताकार भूमि (भी) शुभ है, ऐसा कहा गया है। भूमि की आकृति अनिन्दित (शुभ) होना चाहिए तथा वह पश्चिम या दक्षिण में ऊँची होना चाहिए।

शुभ भूमि

- भूमि घोड़े, हाथी, बाँसुरी, वीणा, जल, नगाड़ा की ध्वनि से युक्त
- नागकेसर, चमेली, कमल, धान्य व पाटल की गन्ध से युक्त
- सभी बीजों को उपजाने वाली,
- एक वर्ण की, घनी, स्निग्ध
- स्पर्श में सुख देने वाली भूमि श्रेष्ठ कही गई है।
- बिल्ब, नीम, निर्गुण्डी, पिण्डित, सप्तपर्ण, आम इन छह वृक्षों से युक्त भूमि
- समतल
- श्वेत, लाल, पीली, कृष्ण, कपोत (कबूतर के समान) के समान आभा (रंग) वाली भूमि
- तिक्त, कटु, कषाय, लवण, अम्ल, मधुर ये छह रस वाली भूमि
- प्रदक्षिण क्रम से जल वाली

- अञ्जली में लेने पर दिखने में वह मनोरम हो ऐसी भूमि

अशुभ भूमि

- कपाल, पत्थर, कीड़े, दीमक, हड्डी, छिद्र युक्त
- भूमि कोयला, वृक्ष मूल (जड़), शूल (काँटे) तथा कीचड़ (sludge) से युक्त
- कंकर, छिद्र, लकड़ी व लोष्ट (ढेला), बालू, तुषा (भूसा) तथा राख से युक्त
- दही, घी, शहद, तेल, रक्त, शव, मछली, पक्षी की गन्ध के समान गन्ध वाली भूमि
- सभा, चैत्य (आराधना स्थल) के समीप की,
- राजा के महल के पास में लगी हुई, देवालय के समीप की,
- काँटे वाले वृक्षों से युक्त,
- गोल, त्रिकोण, विषम, वज्र के समान आभा (आकार) वाली,
- कछुआ के समान ऊँची भूमि
- चांडाल के निवास की छाया वाली (पास में स्थित),
- चर्मकार के घर के पास वाली भूमि
- एक (?), दो, तीन या चार रास्तों पर स्थित,
- लहसुन की गंध वाले मार्ग के पास की,
- मध्य में झुकी हुई,
- पणव (एक प्रकार का बाजा) के आकार की,
- पक्षी व मुरज (एक प्रकार का बाजा) के आकार की,
- मछली के समान आकार वाली,
- चारों कोण में महा वृक्षों से युक्त,
- चैत्यवृक्ष (देवालय के वृक्ष) से युक्त,
- चारों कोण में साल वृक्ष से युक्त,
- सर्प के घर वाली,
- वर्णसंकर के निवास,
- आराम घर (pleasure garden) से मिली हुई भूमि

- श्मशान, आश्रम, बन्दर, सुअर के समान आकार वाली,
- वन प्रदेश, सर्प के समान आकार वाली,
- टँक (एक प्रकार का अस्त्र), सूपड़ा, ओखली, शंख, शंकु, बिल्ली,
- कृकलास (गिरगिट) के समान आकार वाली तथा बंजर,
- कीड़ों से युक्त, गृहगौलि (छिपकली) के समान आकृति वाली,
- जिस भूमि में बहुत से प्रवेश (entry) हो, जो मार्ग से विद्ध (obstruct) हो ऐसी भूमि

उर्वरता (fertility, सर्वबीज) परीक्षण

भूमि को जोतकर, स्थपति, सर्व बीज (मूंग, गेहूँ, सरसों, तिल, जौ, ब्रीहि (चावल का एक प्रकार), शालि (चावल का एक प्रकार)) को गोबर के साथ बोएं। इसके बाद, स्थपति को, अंकुरण आदि का परीक्षण कर .उसके अनुसार परिणाम जानना चाहिए, फिर बैल, बछड़ों के साथ गाय को, वहाँ लाना चाहिए।

(**टिप्पणी**-तीन रात्रि में अंकुरण होने पर उत्तम, पाँच में मध्यम तथा सात या अधिक रात्रि में अंकुरण होने में अधम प्रकार की भूमि कही गई है।)

६.३.२.३ भूमि को पॉजिटिव चार्ज करने की विधि

इस भूमि को गाय के पैर से कुचलवाएँ। उनकी श्वांसोच्छवास से, वृष (बैल) के नाद (आवाज) से, बछड़ों के मुख से निकलने वाले झाग से भूमि शुद्ध व पवित्र होती है। इसी तरह भूमि को गोमूत्र से स्नान कराकर, गोबर से लीपना चाहिए। इस तरह गौ के पददलन व उनकी जुगाली से निकला फेन भूमि के लिए पवित्र व उपजाऊ होता है। इस तरह भूमि में गोगन्ध समाविष्ट होती है, फिर उसकी जल से शुद्धि करते हैं। इसके बाद विद्वान के द्वारा बताए गए पुण्य या शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र, करण, लग्न, मुहूर्त में अक्षत (साबुत चावल) व सफेद फूल की बलि देना चाहिए, साथ ही ब्राह्मणों से यथाशक्ति स्वस्तिवाचन कराना चाहिए।

भूमि परीक्षण

आर्द्रता परीक्षण

इसके बाद भूमि के मध्य में, भूमि की भुजाओं व दिशाओं के समानांतर एक वर्गाकार गड्ढा अरत्नि (१ हस्त = लगभग २४ इंच) माप का खोदना चाहिए। इसे सावधानी पूर्वक बिना त्रुटि के अर्थात न ज़्यादा संकरा, न अधिक गहरां होना चाहिए। इसके बाद यथा ध्यान अर्चना कर, चंदन, अक्षत व सर्वरत्न मिश्रित जल से गड्ढे को रात्रि में भरना चाहिए। इसके बाद शुद्ध होकर ध्यान कर, पूर्वाभिमुख होकर गड्ढे के समीप भूमि पर लेटकर, मन्त्रोच्चारण करते हुए प्रार्थना करना चाहिए- हे मेदनि, इस स्थल पर धन-धान्य की वृद्धि करें। इस तरह उपवास रखते हुए इस मन्त्र का जाप करना चाहिए।

सुबह कुशल स्थपति को गड्ढे का परीक्षण करना चाहिए, यदि कुछ जल शेष रहता है तो वह सर्व संपत्ति को देने वाली भूमि होती है। यदि गड्ढा नम रहता है, तो वास्तु विनाश तथा शुष्क रहता है तो धन-धान्य का क्षय (क्रमशः कमी) होता है।

घनत्व परीक्षण

जब गड्ढा उसी खुदी हुई मिट्टी से पूरा भर जाता है तो भूमि **मध्यम,** यदि पूरा गड्ढा भर जाने के उपरांत भी मिट्टी शेष रहती है तो **उत्तम** भूमि और यदि पूरी मिट्टी भरने के उपरांत भी गड्ढा ख़ाली रह जाता है तो वह भूमि **अधम** कही जाती है।

६.३.३ विश्लेषण

६.३.३.१ भूमि चयन का महत्व

पातंजल योगसूत्र में कहा गया है कि हेयं दुःखं अनागतम् आने वाला (प्रत्येक) दुःख त्यागने योग्य है। इस बात से स्पष्ट होता है कि जीवन में जो भी दुःख, तकलीफ, बाधा इत्यादि आने वाली है, उन्हें यदि हम पहले से ही जान लें तो उनका त्याग किया जा सकता है।

यह बात वास्तु शास्त्र में बड़ी सटीक बैठती है। जब भी हम किसी प्लाट या भूमि का चयन करते हैं तो कुछ बातें या सावधानी लेने से हम भविष्य में आने वाली अनेकानेक कठिनाइयों से बच सकते हैं। जैसे प्लाट शहर के भीड़भाड़ वाले क्षेत्र में स्थित है या एकान्त में, क्या प्लाट के आसपास कोई सार्वजनिक स्थल जैसे मन्दिर, होटल, क्लब इत्यादि है- यदि ऐसे

प्लाट का हम त्याग कर दें, छोड़ दें, तो भविष्य में आने वाली अनेकानेक परेशानियों से बच सकते हैं।

आसपास की लोकेलिटी कैसी है। प्लाट का आकार क्या है। आसपास से कोई दुर्गन्ध आदि तो नहीं आती है, इत्यादि बातों को ध्यान में रखने से आने वाले दुःख का परिहार (निराकरण) पहले से ही हो जाता है। अतःभूमि चयन करते समय अत्यन्त सावधानी रखना चाहिए।

६.३.३.२ अशुभ स्थान

आइए हम सबसे पहले यह देखें कि किसी निवास के आसपास किस प्रकार का परिवेश या लोकेलिटी नहीं होना चाहिएः-

अर्थात, जब रहने के लिए, निवास के लिए किसी स्थान का, प्लाट का चयन करते हैं तो किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, आसपास में किस प्रकार का परिवेश या लोकेलिटी नहीं होना चाहिए।

शहर से दूर एवं एकान्त में न हो

शहर से दूर या एकान्त स्थान पर प्लाट होने से, जब उस प्लाट पर व्यक्ति घर बनवाए तो उस पर घर बनाते समय ख़र्च भी अधिक आएगा, क्योंकि सारा सामान शहर से ले जाना होगा।

ऐसे घर में निवास करने से गृहस्वामी के कार्य पर जाने पर (घर के बाहर जाने पर) घर की महिलाएं, परिवार के अन्य सदस्य सुरक्षा का अभाव महसूस कर सकते हैं।

उस स्थान पर यदि सार्वजनिक वाहन आदि की सुविधा न हो तो परिवार के सदस्यों को अकस्मात आवश्यकता होने पर (अस्पताल, स्कूल आदि) जाने में असुविधा हो सकती है।

किसी बाहर के शहर से यात्रा कर वापस आते समय यदि रेल का समय रात्री का हो तो घर पहुँचने में असुविधा या असुरक्षा का अनुभव हो सकता है।

इसके अतिरिक्त परिवार के सभी सदस्य एक साथ जब किसी कार्यक्रम में घर के बाहर जाते हों, शहर से बाहर जाते हों तो चोरी आदि का भय बना रहता है। आदि-आदि

अर्थात प्लाट या परिवेश स्थान ऐसी जगह बनवाएं, जहाँ-

- आसपास लगभग उसी वर्ग के व्यक्ति रहते हों।

. आवागमन के साधन उपलब्ध हों।

. व्यापार आदि (या सर्विस के स्थान) से अधिक दूर न हों।

. रात्रि में सुरक्षित आना-जाना हो सके।

. व्यक्ति के शहर से बाहर जाने पर घर सुरक्षित हो।

अतः प्लाट शहर से बहुत अधिक दूर नहीं होना चाहिए।

६.३.३.३ परिवेश

निम्न स्थान पास में न हों-

होटल

घर के पास होटल इत्यादि होने पर उसमें अलग-अलग प्रकार के लोगों का आना-जाना बना रहता है, अतः घर के पास होटल का होना उचित नहीं है। होटल में अधिकतर प्रोग्राम, पार्टी इत्यादि होती रहती हैं, जिसके कारण भी असुविधा होती है।

सार्वजनिक स्थान

किसी भी सार्वजनिक स्थान पर कई अवसरों पर अत्यधिक भीड़ होती है, जिससे उस स्थान के पास रहने पर कई प्रकार की असुविधाओं का सामना करना पड़ सकता है।

बड़ा मन्दिर

घर के पास बड़ा मन्दिर होने के कारण, विभिन्न अवसरों पर होने वाले कार्यक्रम के कारण आने-जाने में असुविधा, कई बार, कई कार्यक्रम के समय (शोरगुल आदि के कारण) बच्चों को पढ़ाई-लिखाई में असुविधा, वृद्ध या रोगी व्यक्ति के आराम इत्यादि में कठिनाइयाँ आती हैं।

मेरेज गार्डन

इसी प्रकार से घर के आस-पास मेरेज गार्डन होने से आवागमन में असुविधा, रात्रि में अत्यधिक शोरगुल का होना, बच्चों की पढ़ाई-लिखाई ठीक से न होना, परिवार के सदस्यों की नींद पूरी न होना, जिससे अगले दिन कार्य का ठीक से न हो पाना, इस प्रकार की कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।

मुख्य मार्ग

मुख्य मार्ग पर घर होने से विभिन्न अवसर पर होने वाले कार्यक्रम (जुलूस, यात्रा, प्रदर्शन, किसी वी.आई.पी. का आगमन, धार्मिक कार्यक्रम, रैली आदि) के कारण असुविधा होती है। इसके अतिरिक्त वाहनों का अत्यधिक आवागमन होता है, वाहन द्वारा घर से आते-जाते समय, रोड़ क्रास करते समय दुर्घटना की आशंका बनी रहती है।

चौराहा

विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ में लिखा है कि चौराहे पर घर स्थित होने पर कीर्ति का नाश होता है। चौराहे पर घर स्थित होने पर यदि वहाँ टेक्सी स्टेण्ड है, पान की दुकान है, चाय आदि की दुकान है या कोई भी दुकान है तो उस स्थान पर लोगों का आना-जाना लगा रहता है, घर की गतिविधि के बारे में चर्चा कर सकते हैं, जिससे परिवार की कीर्ति का नाश होने की आशंका बनी रहती है।

इस प्रकार से हम एक-एक बात का विश्लेषण करते जाएगें तो निम्न सारी बातें स्पष्ट हो जाएंगी।

निम्न स्थानों के पास भी घर बनवाना शुभ नहीं है-

शराबखाना

यहाँ अच्छे लोगों का आना-जाना नहीं होता है। शराब पीने के बाद नशे में व्यक्ति अशिष्ट व्यवहार कर सकता है, या करता है इत्यादि कारणों से शराबखानें के पास घर बनवाना उचित नहीं है। इसके अलावा वहाँ लोगों का जमघट लगा रहता है। आसपास दुर्गन्ध रहती है अतः शराबखानें के पास घर नहीं बनवाना चाहिए।

टॉकिज

यह एक सार्वजनिक स्थान है। इसके आसपास घर होने से अनेक कठिनाइयाँ जैसे शो छूटने के बाद, शो प्रारंभ होते समय, नई पिक्चर लगते समय, होने वाली भीड़भाड़ आदि के कारण इसके आसपास घर नहीं होना चाहिए।

एकदम सटी (लगी) हुई पान की दुकान आदि

यहाँ भी कई प्रकार के लोगों का आना-जाना लगा रहता है। उनके वाहन आदि पार्क रहते

हैं, खड़े रहते हैं, जिससे पास में रहने वालों को असुविधा होती है, इसके अलावा कई बार पान की दुकान पर रेडियो, टेप या गाने इत्यादि चलते रहते हैं जिससे भी शोरगुल होता है। अतः पान, चाय आदि की दुकान के एकदम पास में घर नहीं होना चाहिए।

स्टेण्ड

घर के पास में (एकदम लगा हुआ) ऑटोरिक्शा स्टेण्ड, बस स्टेण्ड, टेम्पो स्टेण्ड आदि नहीं होना चाहिए। इससे घर में प्रदूषण, आसपास भीड़ व अन्य कठिनाइयाँ होती है।

वर्कशॉप

सामान्यतः वर्कशॉप के आसपास ध्वनि व वायु प्रदूषण रहता है। अतः वर्कशॉप के एकदम पास भी घर नहीं होना चाहिए।

क्लब

क्लब में लोगों का आना-जाना लगा रहता है, यह एक सार्वजनिक स्थान है। पार्टी इत्यादि के समय शोरगुल, भीड़भाड़ होती रहती है। अतः क्लब से लगा हुआ घर नहीं होना चाहिए। इस प्रकार के वातावरण से घर के युवा सदस्य अधिक प्रभावित हो सकते है, जिससे वे अपने निर्धारित लक्ष्य से भटक सकते हैं। (भ्रमित हो सकते हैं।)

नाले के पास या किनारे

नाले के पास या किनारे घर होने से हमेशा दुर्गन्ध रहती है तथा बीमारियाँ होने की आशंका भी अधिक रहती है।

पोल्ट्री फार्म

पोल्ट्री फार्म (मुर्गी पालन केन्द्र) के आसपास सामान्य रुप से बदबू (दुर्गन्ध) आदि होने के कारण शुभ नहीं माना गया है।

श्मशान

यह नकारात्मक व अन्य प्रकार की ऊर्जा का क्षेत्र होने के कारण इसके आसपास रहवास होना शुभ नहीं है।

धूर्त

घर के आसपास (जालसाज आदि) का निवास होने से, इस प्रकार के लोग, व्यक्तियों को प्रलोभन में ले लेते हैं। अतः इनसे नुकसान होने की आशंका बनी रहती है अतः ऐसे लोगों के पास घर बनवाना उचित नहीं है। धूर्त के पास घर होने से पुत्र के अनिष्ट की आशंका रहती है।

चैत्य (बड़ा आराधना स्थल)

घर के आसपास में आराधना स्थल, प्रवचन स्थल जहाँ साधु आकर रहते हों उसके एकदम पास में घर बनवाना शुभ नहीं कहा गया है। क्योंकि इन स्थानों पर भीड़ इत्यादि रहती है, जिससे घर में आने-जाने में असुविधा होती है। इसके अतिरिक्त भी अन्य कारण हैं, इसलिए इनके एकदम पास, सटा हुआ, निवास या घर नहीं बनवाना चाहिए। इसके पास घर होने से गृहस्वामी को भय रहता है।

अन्त्यज- निम्न प्रवृति का प्रकोप

निवास स्थान बनवाते समय या घर लेते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि घर के आसपास में समान वर्ग के लोग रहते हो, आसपास निम्न प्रवृत्ति के लोग न रहते हों। आसपास ऐसे लोगों के रहने से हथियार भय अर्थात लड़ाई-झगड़ा होने की आशंका रहती है।

६.३.३.४ भूमि में निम्न दोष न हों

पत्थर

जिस भूमि में अत्यधिक पत्थर हों उस भूमि पर निवास नहीं करना चाहिए, ऐसी भूमि दरिद्रता देती है। निवास के लिए उपजाऊ भूमि को शुभ कहा गया है, बताया गया है।

छिद्र

प्लाट पोला या छेद से युक्त नहीं होना चाहिए। इससे एक तो मकान बनवाते समय आधार मजबूत नहीं हो पाएगा, दूसरा उस पोली जमीन में जीव-जन्तु जैसे सर्प या चूहे इत्यादि हो सकते हैं जिससे जीवन व धन की हानि हो सकती है।

६.३.३.५ अन्य अशुभ भूमि

ऐसी भूमि जिस पर आना-जाना कठिन हो तथा ऐसी भूमि (प्लाट) जो कि पापियों के वंशज (पुत्र-पौत्र आदि) की हो, उसे त्याग (छोड़) देना चाहिए, अर्थात नहीं खरीदना चाहिए।

ऐसी भूमि जिस पर नकारात्मक कार्य करने वाले व्यक्ति रहते हो उनके स्पन्दन से, उनकी गतिविधियों के कारण उस स्थान का प्रभाव खराब हो जाता है। इसके अतिरिक्त उस भूमि को कैसे लिया है, भविष्य में कोई परेशानी न हो इस हेतु यह कहा गया है कि ऐसी भूमि को छोड़ देना चाहिए।

भंयकर (भयानक) भूमि

ऐसी भूमि या जमीन जिस पर आने-जाने में डर लगता हो, भय उत्पन्न करती है।

दीमक

जिस भूमि में दीमक हो ऐसी भूमि पर भी निवास के लिए घर नहीं बनवाना चाहिए। क्योंकि ऐसी भूमि पर घर बनवाने से धन की हानि होती है।

हड्डी, कोयला, राख, आदि शल्य भी भूमि में नहीं होना चाहिए।

६.३.३.६ अन्य पक्ष

जिस भूमि पर हम घर बनवा रहे हों या खरीद रहे हों, ऐसी भूमि या भवन से सम्बन्धित समस्त कागजात एकदम स्पष्ट हों, कोई भी स्थानीय या अन्य संस्थान का बकाया (ड्यू) इत्यादि न हो।

नगर निगम, कलेक्टोरेट, विद्युत् विभाग, जल विभाग या कोई भी टेक्स या लोन इत्यादि भूमि पर न हो यदि हो तो उसकी जानकारी आपको होना चाहिए। इस संबंध में कानूनी सलाहकार (वकील) आदि की सहायता ली जा सकती है।

इस प्रकार से सावधानी पूर्वक देश, नगर, ग्राम या निवास हेतु भूमि का चयन करना चाहिए।

६.४ पदविन्यास

वास्तुशास्त्र में यह बताया गया है कि किसी भी भूखण्ड पर ४५ प्रकार की ऊर्जा होती है, यह अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा अलग-अलग देवता के नाम से व्यक्त या प्रदर्शित की गई है। भूखण्ड के जिस क्षेत्र या भाग में जिस प्रकार की ऊर्जा हो उसके अनुरुप ही निर्माण करना चाहिए। इस प्रकार का निर्माण करने से प्रकृति की पोषणकारी शक्ति प्राप्त होती है। यदि ऊर्जा के प्रतिकूल (विपरीत) निर्माण किया तो वह ऊर्जा प्रतिकूल परिणाम देती है। उदाहरण के लिए भूखण्ड के जिस भाग में क्रियाशीलता बहुत अधिक है वहाँ विश्राम करना चाहेंगे तो नींद पूरी नहीं होगी। इसके विपरीत जिस भाग में क्रियाशीलता बहुत कम हो वहाँ कार्य करेंगे तो नींद आएगी, आलस्य आएगा आदि, आदि।

सबसे पहले पूरे भूखण्ड को ९ गुणित ९ अर्थात ८१ भागों में विभाजित करते हैं। इसमें कुल ४५ अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा होती है जो की देवता के माध्यम से अभिव्यक्त की गई है। किसी भी भूखण्ड पर इन ४५ देवताओं की स्थापना को वास्तु पद विन्यास कहते हैं।

६.४.१ वृत्त-वास्तु

चौंसठ पद का वृत्त वास्तु

वृत्त की चौड़ाई को आठ भाग में विभाजित करें। विद्वान मध्य में दो भाग की परिधि बनाए। उसके बाहर अठाईस भाग का वृत्त बनाए। उसके अंदर के वलय (ग़ोल) आठ-आठ अंश के होते हैं। मध्य में चार पद का ब्रह्मा होता है। इस प्रकार से चौंसठ पद का वृत्त वास्तु होता है।

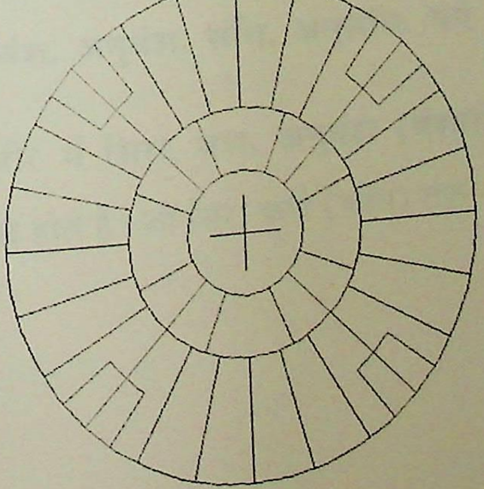

एक सौ पद का वास्तु

वृत्त के व्यास को दस भागों में विभाजित करे। मध्य में दो भाग के पाँच वृत्त बनाए। बाहरी वृत्त छत्तीस पद का होता है। शेष चौंसठ पद के समान होता है। यह एक सौ पद का वास्तु होता है।

वृत्त वास्तु का उपयोग

त्रिकोण (triangular), छह कोण (hexagonal), आठ कोण (octagonal), सोलह कोण, वृत्तायत, अर्धचंद्र वास्तु (half-lunar) का पद विभाजन **वृत्त वास्तु** के अनुसार करना चाहिए।

६.४.२ वास्तुपुरुष

एक ही पुरुष (वास्तु पुरुष) अनेक प्रकार से प्रकल्पित किया गया है। सभी संस्थानों (विन्यास, रूप, आकृति) में वैसा ही लक्ष्य करना चाहिए।

इस **वास्तु पुरुष** के शरीर की कल्पना करना चाहिए, जिसमें गुण व दोष दोनों ही होते हैं। उसके अंग क्रम से इस प्रकार होते हैं- मुख (face), मूर्धा (मस्तक, सिर) (crest) , दो कान, दो आँख, तालु (palate), दो ओष्ठ (होंठ, lips), और दाँत।

वक्ष (chest), कंठ (throat), दो स्तन, नाभि (navel), लिंग (penis), अण्डकोश, गुदा, दो बाहु (arm), दो प्रबाहु (forearms), दो हाथ, स्फिक (कूल्हा), उरु (जानु, जांघ), जंघा (thighs), दोनों पैर। इस प्रकार से देव को पुरुष की आकृति के समान बनवाना चाहिए।

६.४.३ सिरा, वंश, अनुवंश, संधि, अनुसंधि, मर्म तथा महावंश

वास्तु पुरुष के शरीर में **सिरा, वंश, अनुवंश (वंशतालिका), संधि** (joint), **अनुसंधि, मर्म** तथा **महावंश** होते हैं। जो सिरा कर्ण (कोने) तक गई हैं, वह **नाड़ी** कहलाती है।

प्रमाण

नाड़ी = 1/16 पद

महावंश = पूर्व-पश्चिम तथा दक्षिण-उत्तर (मध्य से जाने वाली सिराएँ)

महावंश = 1/5 पद

वंश = स्युर्मुखायत रेखाएँ

अनुवंश = तिरछी रेखाएँ

उपमर्म = पद का मध्य

वंश = 1/8 पद

अनुवंश = 1/10 पद

मर्म वंश व अनुवंश का संपात (मिलने के स्थान)

मर्म = 1/12 पद

उपमर्म = 1/16 पद

आठ वंशों = **संधि** कहलाती है।

वंशों के अंगों की संधियाँ = **अनुसंधि** कहलाती है।

संधि का प्रमाण = बाल(hair) के अग्र (point) भाग के समान होता है।

अनुसंधि (vertical meeting points) =1/2 बाल (hair) के अग्र

इन स्थानों का त्याग कर द्रव्य का निवेश करना चाहिए।

महा वंश को किसी भी द्रव्य (पदार्थ) से पीड़ित नहीं करना चाहिए।

मध्य वंश पर द्रव्य (पदार्थ, सामान, वस्तु) को योजित (रखना, स्थिर) नहीं करना चाहिए।

६.४.४ सिरा

प्रारम्भ **बाहरी सिरा**

अग्नि से पितृ से रोग

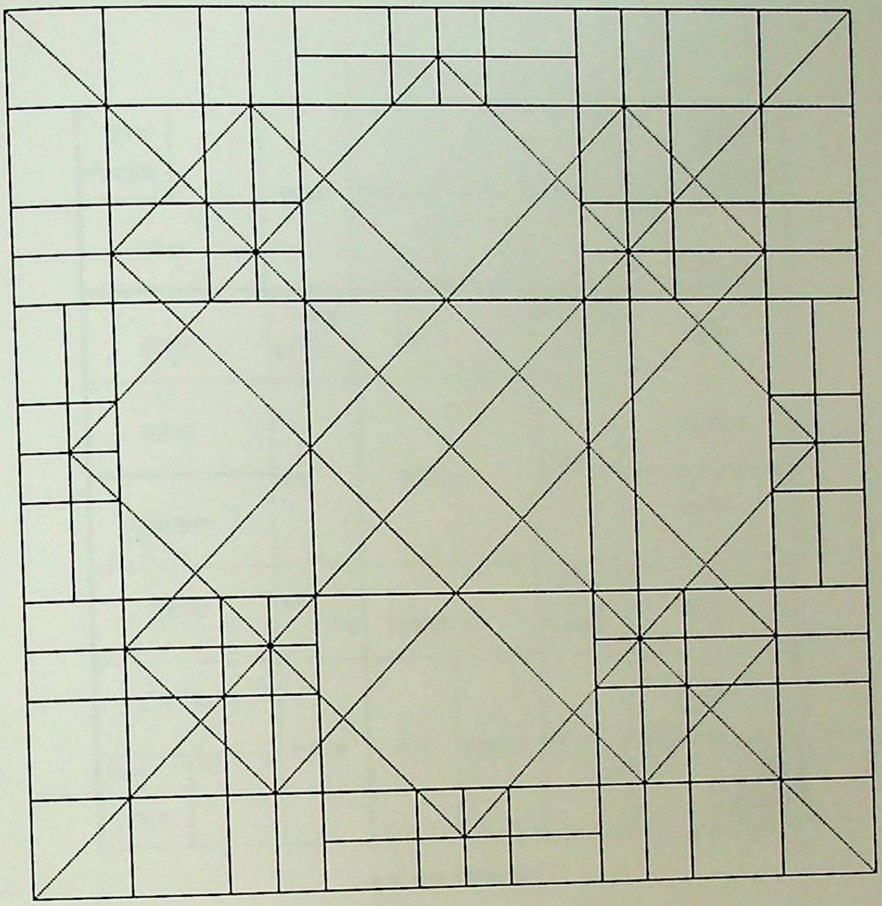

जयन्त से भृङ्ग से सुग्रीव से अदिति से जयन्त

सूर्य से यम से वरुण से सोम से सूर्य

भृश से वितथ से शोष से मुख्य से भृश

६.४.५ पीड़न व परिणाम

महा वंश	स्वामी का वध
वंश का पीड़न	वर्षा तथा गर्मी से भय
उपमर्म के **पीड़न**	रोग
मर्म का पीडन	कुलहानि
सिरा के पीडन	उद्वेग व अनर्थ
संधि व अनुसंधि के पीडन	कलह होता है।

६.४.५ वास्तुपदविन्यास व उपयोग

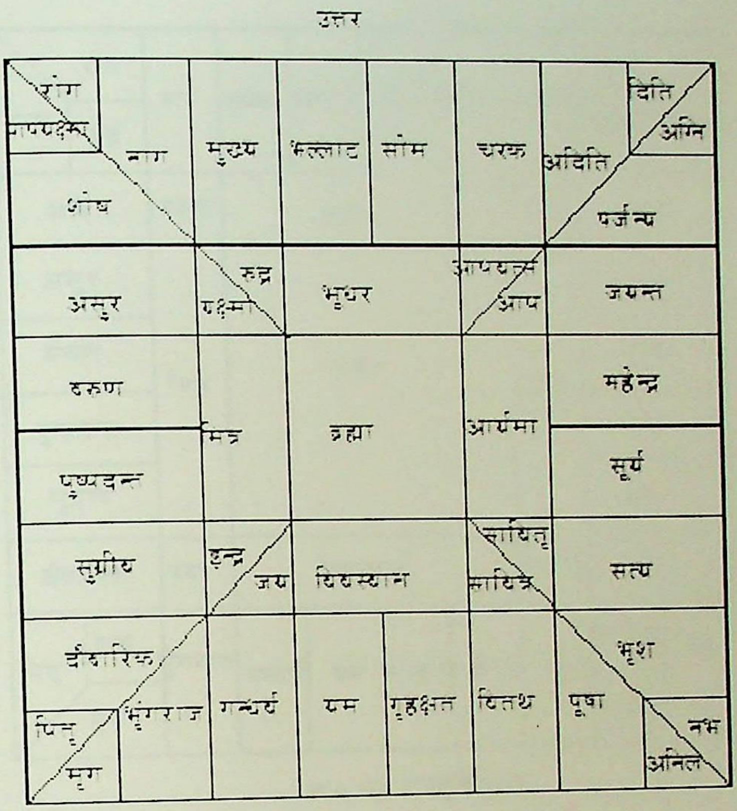
उत्तर
रोग
पापयक्ष्मा
नाग
मुख्य
भल्लाट
सोम
चरक
अदिति
दिति
अग्नि
शोष
पर्जन्य
असुर
रुद्र
यक्ष्मा
भूधर
आपवत्स
आप
जयन्त
वरुण
महेन्द्र
मित्र
ब्रह्मा
आर्यमा
सूर्य
पुष्पदन्त
सावित्
सुग्रीव
इन्द्र
जय
विवस्वान
सावित्र
सत्य
दौवारिक
भृश
पितृ
भृंगराज
गन्धर्व
यम
गृहक्षत
वितथ
पूषा
नभ
मृग
अनिल

६४ पद विन्यास

इक्यासी पद वास्तु

ब्राह्मण आदि वर्ण के घर, राजगृह, इन्द्रस्थान और मन्दिर

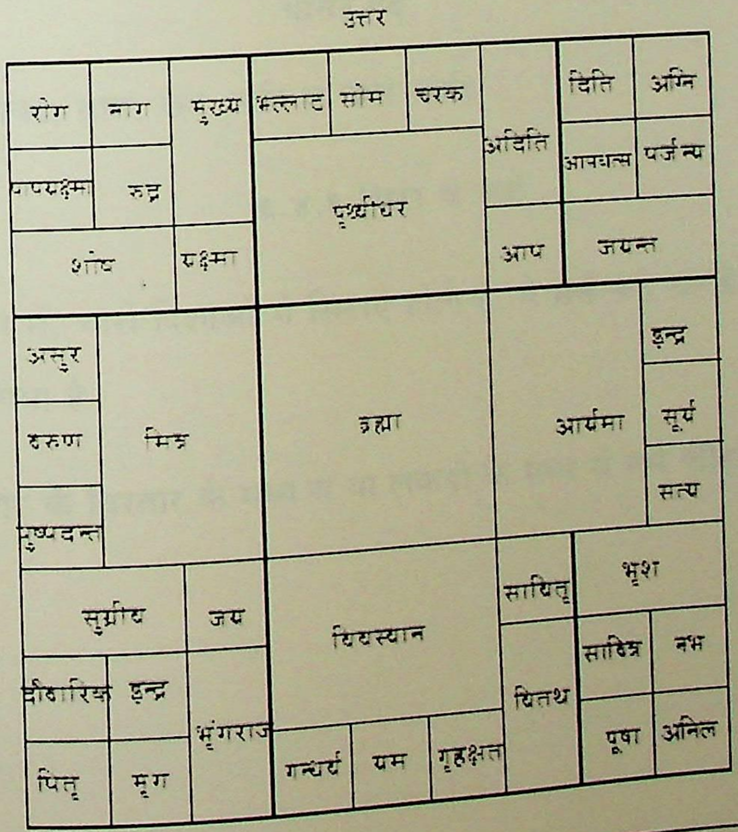
उत्तर
रोग
नाग
मुख्य
भल्लाट
सोम
चरक
अदिति
दिति
अग्नि
पापयक्ष्मा
रुद्र
पृथ्वीधर
आपवत्स
पर्जन्य
शोष
यक्ष्मा
आप
जयन्त
असुर
इन्द्र
वरुण
मित्र
ब्रह्मा
आर्यमा
सूर्य
सत्य
पुष्पदन्त
सुग्रीव
जय
विवस्वान
सावित्
भृश
सावित्र
नभ
दौवारिक
इन्द्र
भृंगराज
वितथ
पितृ
मृग
गन्धर्व
यम
गृहक्षत
पूषा
अनिल

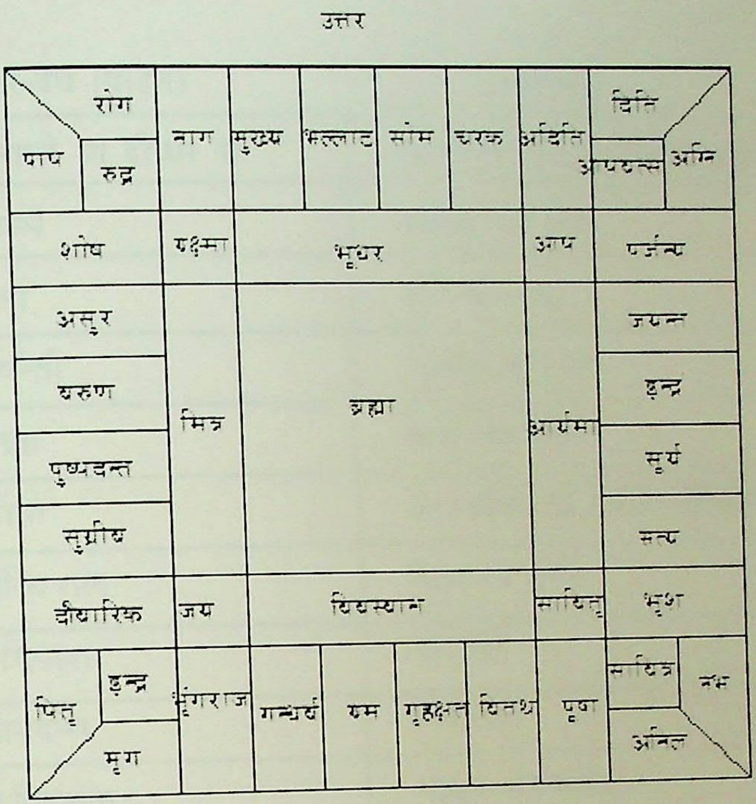
उत्तर
रोग
पाप
रुद्र
नाग
मुख्य
भल्लाट
सोम
चरक
अदिति
दिति
आपवत्स
अग्नि
शोष
यक्ष्मा
भूधर
आप
पर्जन्य
असुर
जयन्त
वरुण
इन्द्र
मित्र
ब्रह्मा
आर्यमा
पुष्पदन्त
सूर्य
सुग्रीव
सत्य
दौवारिक
जय
विवस्वान
सावित्र
भृश
पितृ
इन्द्र
भृंगराज
गन्धर्व
यम
गृहक्षत
वितथ
पूषा
सावित्र
नभ
अनिल
मृग

१०० पद वास्तुविन्यास

एक सौ पद वास्तु

प्रासाद, सभा-भवन, मण्डप, चित्र-विचित्र मण्डप

चौंसठ पद

राजा के शिबिर, ग्राम, खेट आदि व नगर आदि

६.४.६ सिरा व मर्म

चारों विभाग में, चारों दिशाओं में **सिराएँ** होती है, वे **मर्म** कहे गए हैं, द्वार के मध्य को भी मर्म कहा गया है।

गृह में, दीवार के विस्तार के मध्य से या लकड़ी के मध्य से मर्म पीड़ित होने के फल को कहते हैं।

६.४.७ मर्म-वेध (पीड़न) व परिणाम

मर्म-वेध (पीड़न)	परिणाम
दरवाजे या दीवार से	गृहस्वामी की दुर्गति या कुलहानि
स्तम्भ	स्वामी का नाश
तुला	स्त्री का नाश
जयन्ती	पुत्रवधू का वध
संग्रह	बन्धु का नाश
काया	गृहस्वामी का शरीर पीड़ित
सन्धिपाल	मित्र की हानि
नागपाश	धनहानि
नागदन्त	मित्रहानि
कपिच्छक	नौकर की हानि
षड्दारु, अनुशिराएँ, गवाक्ष	धन-क्षय
आलोकन	धन-क्षय

द्वार का मध्य पीड़ित

पीड़ित	परिणाम
द्वार, द्रव्य, तुला, स्तम्भ, नागदन्त व गवाक्ष	रोग, कुलपीड़ा, धन हानि
द्वार के मध्य व षड्दारु के मध्य के पीड़न	राज दण्ड, स्वामी का पीड़न
कर्णद्रव्य आदि से वेध	राज दण्ड, स्वामी का पीड़न
शय्या, अनुवंश से पीड़ित	घर के कुल का नाश
शय्या के वितान में नागदन्त	स्वामी का क्षय
नागदन्त, गवाक्ष, स्तम्भ से विद्ध	शस्त्र भय, चोर भय, द्रव्य व धान्य का विनाश, शोक व कलह
घर के मध्य में द्वार पर	स्त्री का दूषण
अन्य द्रव्य से महामर्म पीड़ित	सर्वनाश, स्वामी मरण

६.४.८ पद विन्यास विश्लेषण

जब भूखण्ड मध्यम आकार का हो जैसे ४० फीट गुणित ६० फीट या इससे भी बड़े आकार का हो। या हमें किसी नगर का नियोजन करना हो या कॉलोनी बनाना हो तब हम और अधिक सूक्ष्मता से वास्तु का विचार करते हैं। पूरे भूखण्ड को और अधिक भागों में विभाजित कर एक-एक भाग के गुण या प्रापर्टी का अध्ययन कर, उस गुण के अनुरुप निर्माण करते हैं। इससे आधार पर हम यह निर्धारित कर पाते हैं कि द्वार कहाँ होना चाहिए, पानी की टंकी या होद कहाँ हो, रसोई कक्ष में प्लेटफार्म कहाँ हो, तिजोरी कहाँ रखना चाहिए, आदि-आदि।

नगर नियोजन करना हो तो नगर की किस दिशा में किस प्रकार का निर्माण करवाए, तालाब किस दिशा में हों, स्कूल, आफिस, चिकित्सालय, रंगमंच, रेलवे स्टेशन, बस स्टेण्ड, विभिन्न बाजार आदि कहाँ हो इसका निर्धारण कर सकते हैं।

सैद्धान्तिक आधार

जैसा कि हम जानते हैं कि सूर्य, चन्द्र आदि ९ ग्रह एवं अश्विन आदि २७ नक्षत्र तथा पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर परिक्रमा लगाने सहित अपनी धूरी पर घूमने के कारण भूखण्ड पर ऊर्जा का अलग-अलग प्रभाव पड़ता है, ऊर्जा के क्षेत्र उत्पन्न होते हैं। अर्थात सामान्य शब्दों में कहें तो किसी भी प्लाट के अलग-अलग भाग की ऊर्जा अलग-अलग होती है। हम देखे चुकें हैं कि ईशान कोण की ऊर्जा अलग प्रकार की है तो आग्नेय कोण की ऊर्जा अलग प्रकार की है।

वास्तुशास्त्र में यह बताया गया है कि किसी भी भूखण्ड पर ४५ प्रकार की ऊर्जा होती है, यह अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा अलग-अलग देवता के नाम से व्यक्त या प्रदर्शित की गई है। भूखण्ड के जिस क्षेत्र या भाग में जिस प्रकार की ऊर्जा हो उसके अनुरुप ही निर्माण करना चाहिए। इस प्रकार का निर्माण करने से प्रकृति की पोषणकारी शक्ति प्राप्त होती है। यदि ऊर्जा के प्रतिकूल (विपरीत) निर्माण किया तो वह ऊर्जा प्रतिकूल परिणाम देती है। उदाहरण के लिए भूखण्ड के जिस भाग में क्रियाशीलता बहुत अधिक है वहाँ विश्राम करना चाहेंगे तो नींद पूरी नहीं होगी। इसके विपरीत जिस भाग में क्रियाशीलता बहुत कम हो वहाँ कार्य करेंगे तो नींद आएगी, आलस्य आएगा आदि, आदि।

सबसे पहले पूरे भूखण्ड को ९ गुणित ९ अर्थात ८१ भागों में विभाजित करते हैं। इसमें कुल ४५ अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा होती है जो की देवता के माध्यम से अभिव्यक्त की गई है। किसी भी भूखण्ड पर इन ४५ देवताओं की स्थापना को वास्तु पद विन्यास कहते हैं।

किसी भी क्षेत्र पर वास्तु पदविन्यास करने की विधि का अध्ययन करें-

चित्र क्रमांक १ में दिखाया गया है कि भूखण्ड को १० आड़ी तथा १० खड़ी रेखा के माध्यम से ८१ भागों में विभाजित करते हैं।

चित्र क्रमांक २ में मध्य के ९ भाग ब्रह्मा भाग कहलाते हैं। चित्र क्रमांक २ में ही सबसे बाहरी वीथि (भाग, घेरा) पैशाच वीथि कहलाता है। इन दोनों के बीच के हिस्से देव व मनुष्य भाग कहलाते हैं।

देव व मनुष्य भाग में ही निर्माण करते हैं। ब्रह्मा भाग (मध्य का स्थान) हवा, प्रकाश आदि के लिए खुला छोड़ देते हैं। पैशाच भाग भी खुला रहता है, इसमें निर्माण आदि नहीं करते हैं, यहाँ वाहन आदि रखने की व्यवस्था रहती है तथा इसी भाग से हवा व प्रकाश घर या कमरों में आता है।

सबसे पहले किसी भी प्लाट का ब्रह्मा भाग तथा पैशाच भाग ज्ञात करने (निकालने) की विधि का अध्ययन करें-

हमने चित्र क्रमांक १ व २ में देखा कि लम्बाई व चौड़ाई के ९-९ भाग करने पर ब्रह्मा के ३-३ (कुल ९ भाग) भाग होते है।

अतः ब्रह्मा भाग लम्बाई का एक तिहाई तथा चौड़ाई का भी एक तिहाई होता है।

चित्र क्रमांक ३ में प्लाट बनाया।

चित्र क्रमांक ४ में प्लाट की लम्बाई को तीन भागों में विभाजित किया, इसी प्रकार प्लाट की चौड़ाई के भी तीन भाग किए।

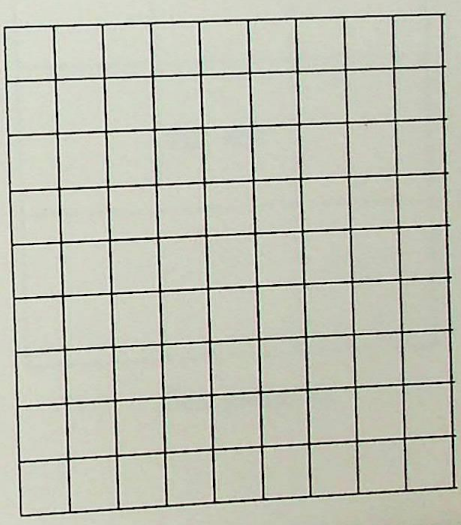

(चित्र क्रमांक १)

हमें मध्य में ब्रह्मा भाग प्राप्त हुआ।

उदाहरण- माना कि किसी वर्गाकार प्लाट की लम्बाई व चौड़ाई ६०-६० फीट है। तो लम्बाई व चौड़ाई का एक तिहाई करने पर मध्य में २० गुणित २० फीट का क्षेत्र ब्रह्मा भाग के रूप में प्राप्त हुआ।

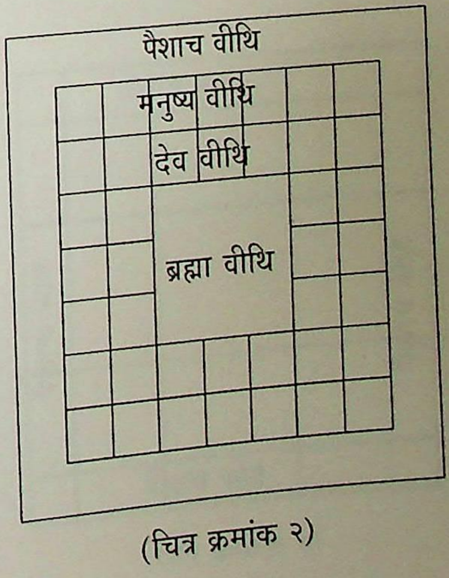

(चित्र क्रमांक २)

पैशाच भाग ज्ञात करना (निकालना)-

जैसा कि चित्र क्रमांक १ व २ को सूक्ष्मता से देखने पर हम पाते हैं कि पैशाच भाग कुल लम्बाई ९ भाग में से एक भाग, इसी प्रकार कुल चौड़ाई ९

में से १ भाग होता है।

अतः लम्बाई का नवाँ भाग तथा चौड़ाई का नवाँ भाग करने पर पैशाच भाग प्राप्त होता है। (चित्र क्रमांक देखें)

चित्र क्रमांक ६ में ब्रह्मा भाग तथा पैशाच भाग एक साथ देख सकते हैं। इन भागों में निर्माण नहीं करते हैं।

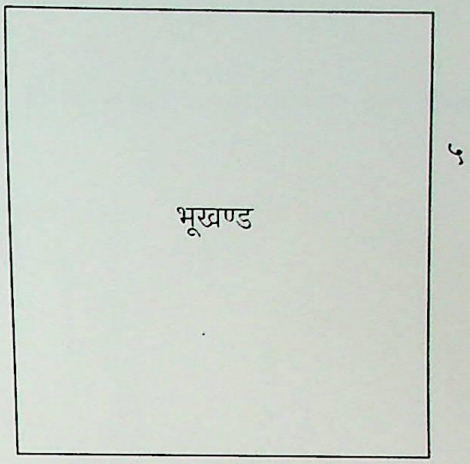

(चित्र क्रमांक ३)

परमशायिक पद विन्यास में बाहरी ओर ३२ पद होते है। ये बाहर के ३२ पद में बाहरी ओर जो ३२ देवता स्थित हैं।

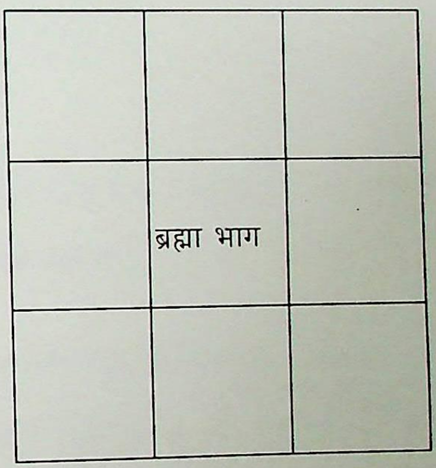

(चित्र क्रमांक ४)

अब इसको यदि हम सर्क्यूलर पद विन्यास की दृष्टि से देखें तो ये पूरे ३२ देवता ३६० डिग्री में स्थित है, अर्थात ईश से प्रारम्भ होकर ईश, पर्जन्य, जयन्त,.........,सोम, सर्प, अदिति, उदिति ये मिलाकर ३६० डिग्री का कोण बनाते हैं, तो ये एक देवता या एक पद कितने कोण या डिग्री का हुआ। ३६० डिग्री को ३२ से विभाजित करेंगे क्योंकि देवता ३२ है, तो ११.२५ डिग्री अर्थात एक देवता या एक पद ११.२५ डिग्री का हुआ।

एक ऐसा चक्र बनाया जो कि ३२ बराबर भागों में विभाजित है। इस चक्र का मध्य बिन्दु को प्लाट के मध्य बिन्दु पर मिलाकर रखा।

इससे हमें बाहरी (पैशाच) वीथि में बाहरी ३२ देवताओं के पद का ज्ञान चित्रानुसार हुआ।

बाहरी ३२ पद तथा ब्रह्म स्थान का निर्धारण तो हमने कर लिया। अब इनके बीच के जो पद है उनका निर्धारण करते है। इनमें

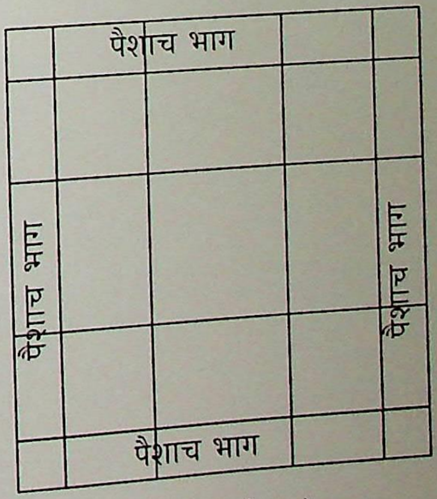

(चित्र क्रमांक ५)

जो बारह देवता हैं वे सब मिलकर ४० पदों में विराजमान हैं, अर्थात् स्थित हैं।

इनमें से अर्यमा, विवस्वान, मित्र तथा भूधर ये ४ देवता ६-६ पद के एवं अन्य देवता सवित्र-सावित्र, इन्द्र-इन्द्रजय, रुद्र-रुद्रजय तथा अपवत्स-आपवत्स ये ८ देवता २-२ पद के हैं। इस प्रकार ये १२ देवता ४० पदों में विराजमान हैं।

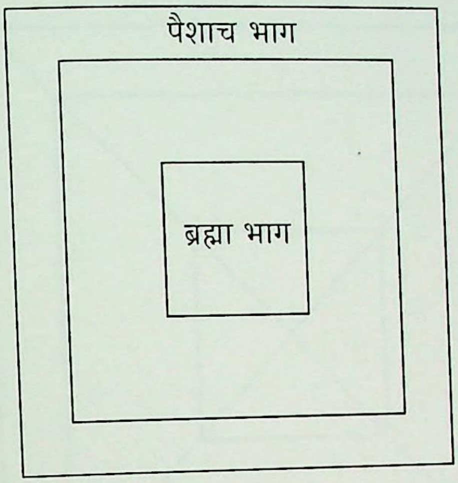

(चित्र क्रमांक ६)

ये सारे देवता कुल ३६० डिग्री का कोण बनाते हैं, चित्र में देखने पर आपको यह स्पष्ट हो जाएगा कि कौन सा देवता कितनी डिग्री की जगह लिए हुए है, ३६० डिग्री को विभाजित करेगें २० डिग्री से तो १८ डिग्री आएगा। अर्थात सवित्र-सावित्र, इन्द्र-इन्द्रजय, रुद्र-रुद्रजय तथा अपवत्स-आपवत्स ये आठ देवता १८-१८ डिग्री की जगह लिए हुए हैं, जबकि अर्यमा, विवस्वान, मित्र तथा भूधर ये ४ देवता ५४-५४ डिग्री की जगह लिए हुए हैं।

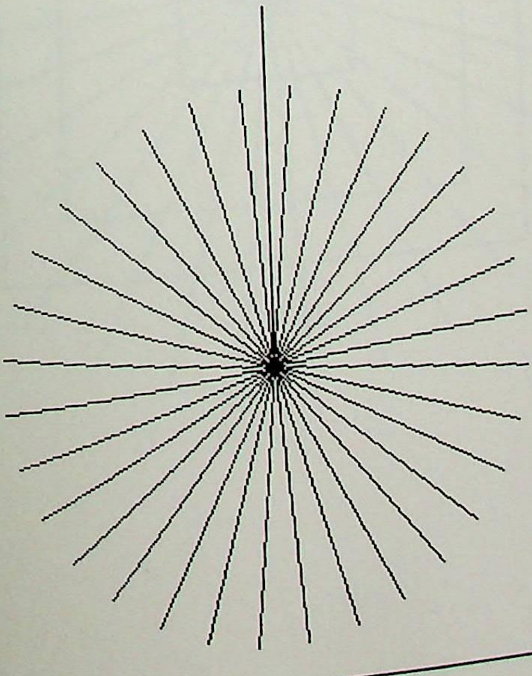

इसमें भी यह बात ध्यान देने योग्य है, कि जो भूधर है उसके मध्य से उत्तर रेखा जाती हैं, अर्थात् आधा भूधर उत्तर रेखा के बाईं ओर तथा आधा भूधर उत्तर रेखा के दाहिनी ओर स्थित है।

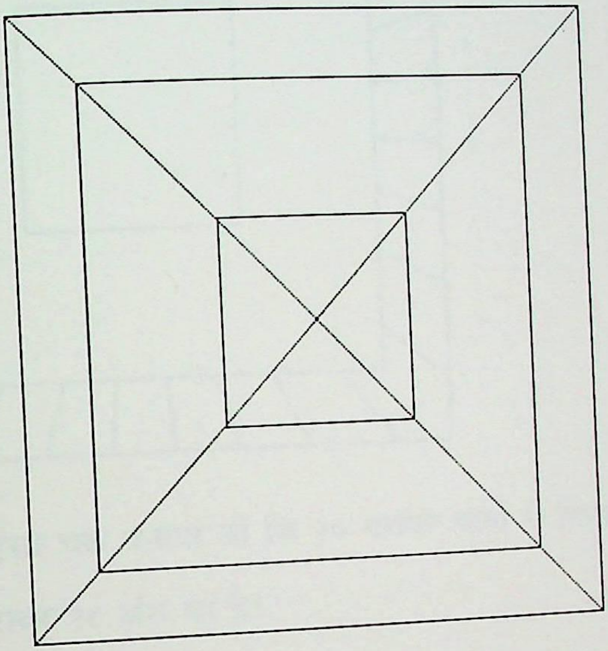

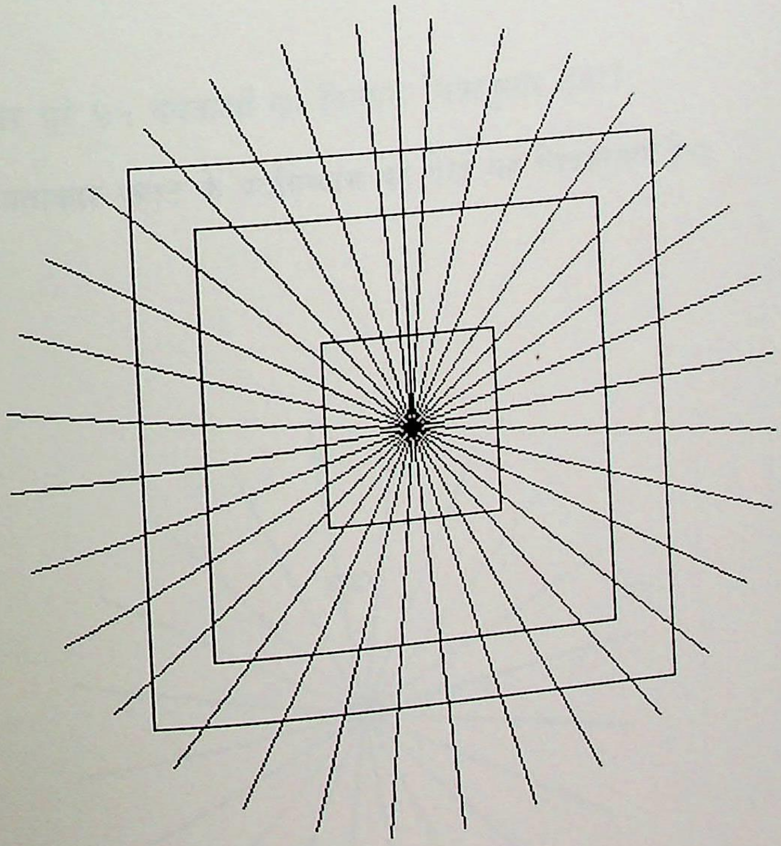

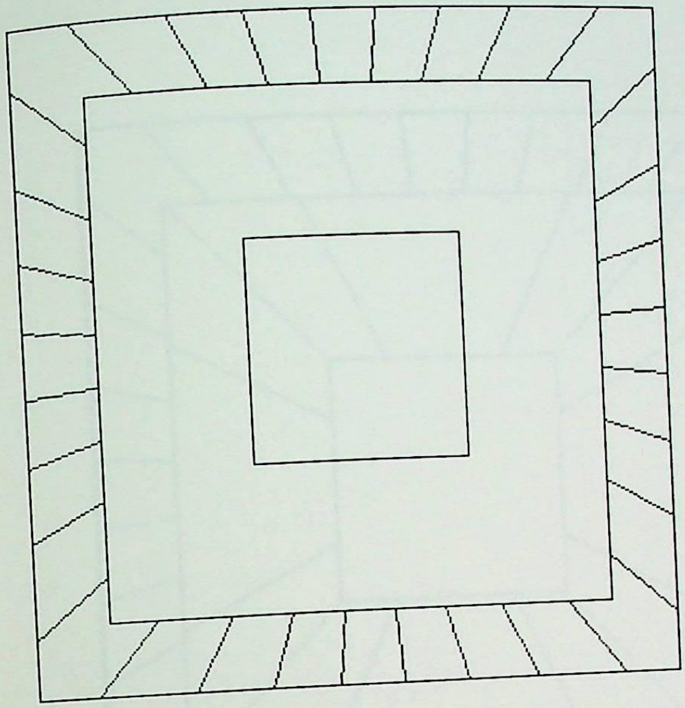

अब हमने एक ऐसा चक्र बनाया जो कि २० बराबर भागों में विभाजित है। अर्थात एक भाग ३२० भागित २० बराबर १८ अंश का है।

इस चक्र के मध्य बिन्दु को प्लाट के मध्य स्थान पर रखा। चित्रानुसार देवता का स्थान ज्ञात हुआ।

इस प्रकार पूरे ४५ देवताओं का विन्यास चित्रानुसार हुआ।

अब आयताकार प्लाट के पदविन्यास को देखें यह चित्रानुसार है-१

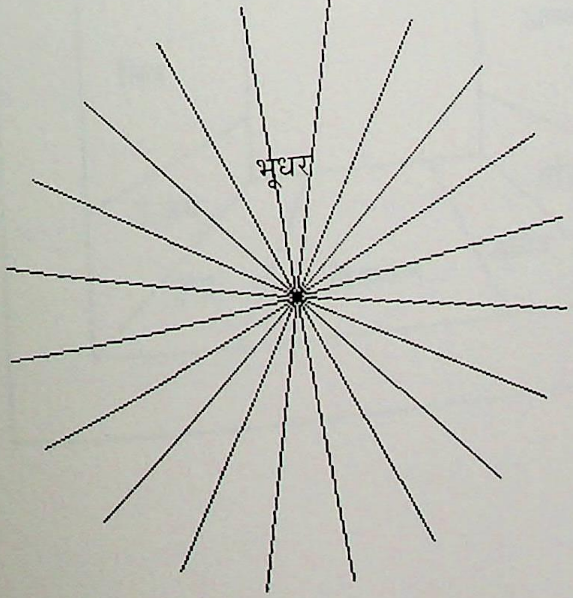

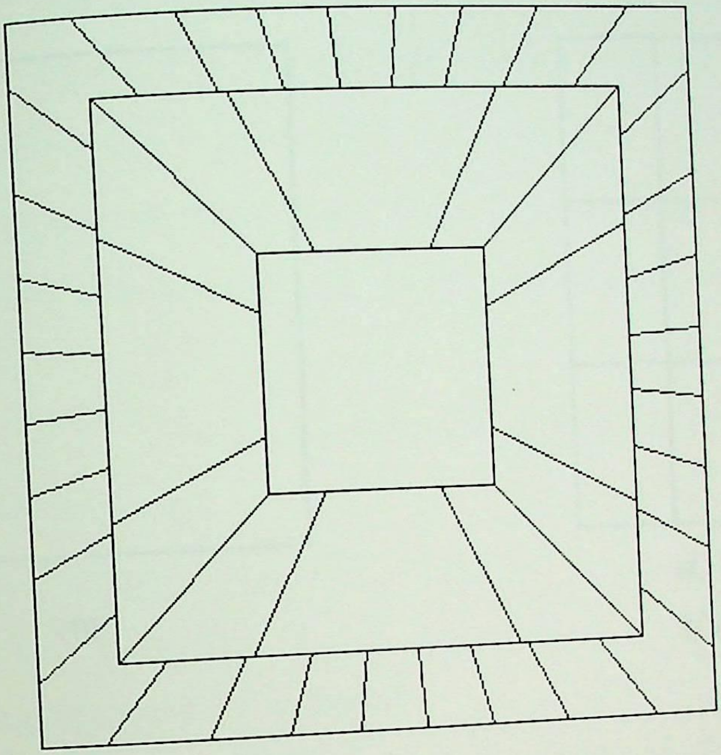

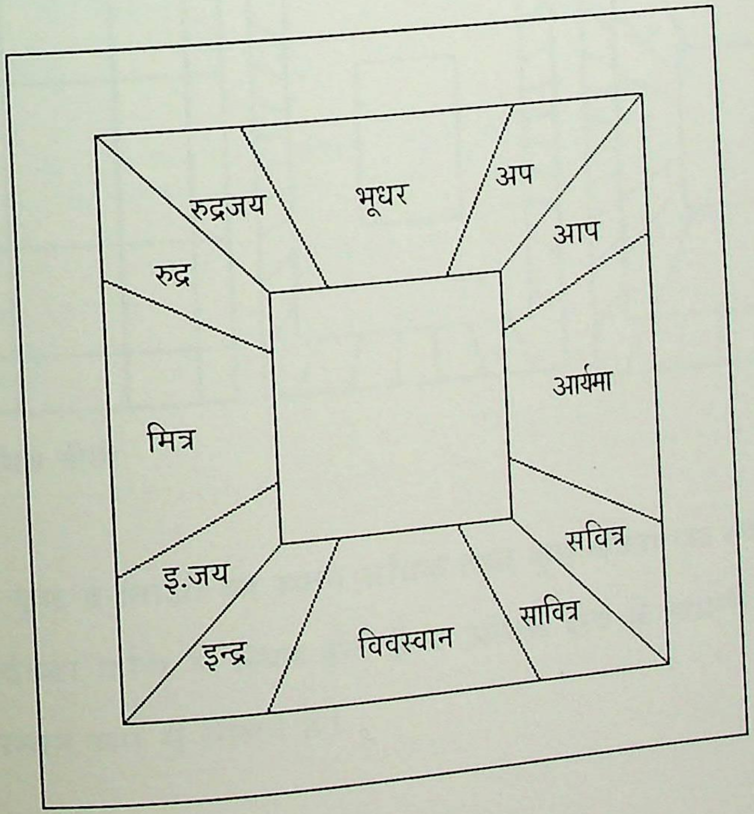
रुद्रजय
भूधर
अप
आप
रुद्र
आर्यमा
मित्र
सवित्र
इ.जय
सावित्र
इन्द्र
विवस्वान

इस प्रकार से हमने देखा कि प्लाट आयताकार होने पर अन्तर आ जाता है।

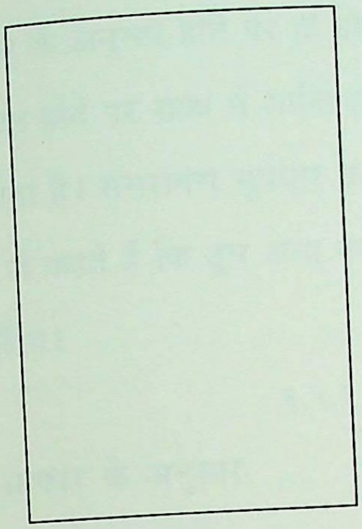

प्लाट

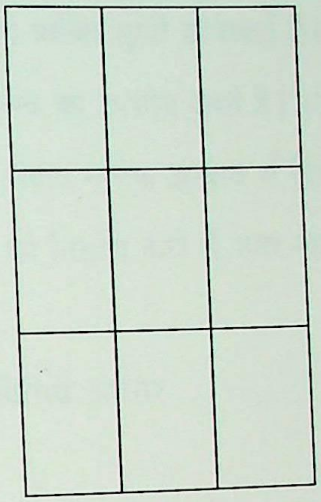

ल. व चौ. को
१/३ करना

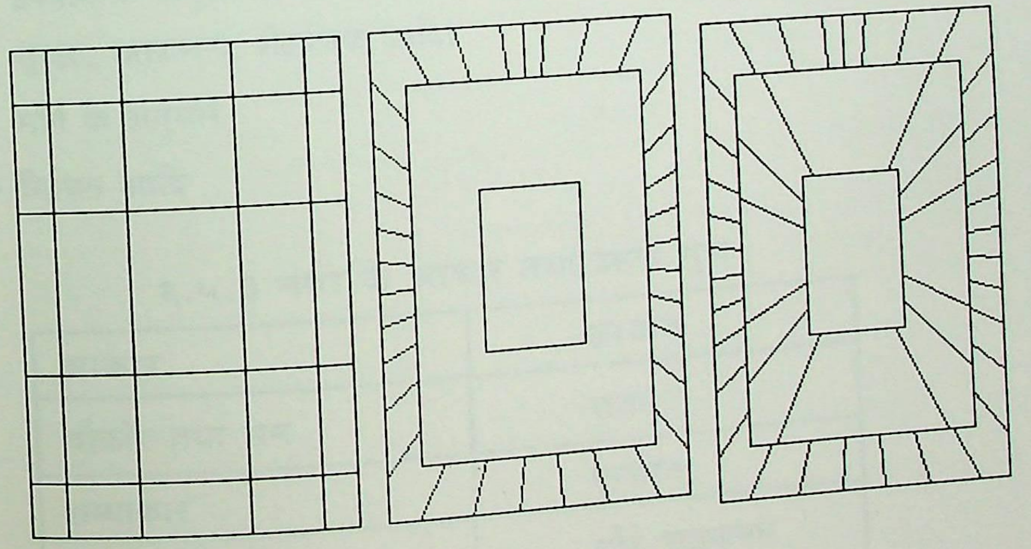

विभिन्न वीथी

आयताकार में कुछ देवताओं का स्थान अधिक तथा कुछ देवता का स्थान का क्षेत्र कम होता है। जो देवता कोण में स्थित होते हैं व अधिक क्षेत्र के स्वामी होते हैं। लेकिन सबको अंश समान रूप से मिलते हैं।

६.५. नगर नियोजन

किसी भी वास्तु के निर्माण में सर्वाधिक महत्व नगर नियोजन को दिया गया है। नगर का निर्माण वास्तु के अनुरुप होने पर ही उसमें निवास करने वाले व्यक्ति सुखी हो सकते हैं। नगर का निर्माण उचित होने पर राज्य में शान्ति रहती है, प्रजाजन आनन्द का उपभोग करते हैं। राष्ट्र समृद्धि को प्राप्त होता है। समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ के विश्वकर्मा-पुत्र संवाद नामक अध्याय में विश्वकर्मा जी अपने पुत्रों से कहते हैं कि तुम अन्य नगरों तथा घरों आदि का निर्माण करों मैं स्वयं राजधानी का निर्माण करूँगा।

६.५.१ नगर नियोजन के विभिन्न आधार

- आकार के अनुसार
- मान के अनुसार
- जनसंख्या के अनुसार
- निवास करने वाले वर्ण के अनुसार
- उपयोग के अनुसार (व्यापारिक, बन्दरगाह, राजधानी, दुर्ग, समुद्र किनारे, औद्योगिक, सुरक्षा, आक्रमण, शैक्षणिक आदि)
- मार्ग के अनुसार
- मिश्रित आदि

६.५.३ नगर के आकार तथा उसके गुण

आकार	उपयोग
चौकोर तथा सम	राजा
शय्याकार	पुरोहित
दीर्घ	छोटे राजकुमार
वृत्तायत	सेनापति
शम्बुक	सुख चाहने वाले
सम	अन्तःपुर का घर
शकटाकृति	व्यापारी
भग	वेश्या
दर्पणाभ	सुनार
वज्र	नगर-गोष्ठिक
शंख-	पुत्राभिलाषी

छिन्नकर्ण	महामात्र
विकर्णा	बहेलिए
शंखाभ	काणे
क्षुरोपम	गणाचार्य
शक्तिमुख	व्रजाध्यक्ष
कूर्मपृष्ठ	माली
सदंश	दर्जी
व्यजनोपम	घोड़े पालने वाले
शरावाकृति	बढई
स्वास्तिकाकृति	बन्दी (कैदी) और मागध
पणवसदृश	वेणु, तुर्य आदि बाजा बजाने वाले
मृदंग सदृश संस्थान	वेणु, तुर्य आदि बाजा बजाने वाले
विशर्कर	रथ को हाँकने वाले
कबंधप्रतिम	नीच और चाण्डाल
यव-प्रतिभ-संस्थान	खेतिहरों,
उत्संग	श्रमण
गजदंतक	पीलवानों (हाथी के वाहक)
परशु	कैदी लोग
विश्रावित	शराब बनाने वाले
श्वभ्राभ्र	मजदूर
प्रलम्ब	नाई लोग
वैवाहिक	खजाने की रक्षा करने वाले
त्रिकुष्ट त्रिकोण, पंचकोण	वह्निजीवी
सब तरफ से परिच्छिन्न संस्थान	मानोपजीवी
दिक्स्वस्तिक	चैत्य और घर
श्री-वृक्ष-प्रतिम-संस्थान	यज्ञवाटों तथा वृक्षों को लगावें तथा
वर्धमानाकृति संस्थान	यज्ञवाटों तथा वृक्षों को लगावें तथा
एणीपद	गणिकाएँ तथा
नरपद	चोर

प्राचीन ग्रन्थों में एक परम्परा सी जान पड़ती है कि ग्रन्थकार अथवा ऋषि-मुनि किस प्रकार से सांकेतिक रूप से विषय को स्पष्ट करते थे। यहाँ नगर के आकार के माध्यम से आकार के गुण बताए गए हैं। किस प्रकार के नगर में किन लोगों को बसाना चाहिए, इसके लिए भूमि के आकार बताए हैं। पूरे नगर का ऐसा आकार होने पर इस प्रकार के लोगों को बसाया जाए या किसी नगर में जिस प्रकार के लोगों को बसाना हो तो भूखण्ड का आकार उनके अनुरूप रखा जाता है।

इसे हम अध्ययन की दृष्टि से जब देखते हैं तो पाते हैं कि जैसे आकार में व्यक्ति निवास करता है, वैसे ही गुण उस व्यक्ति में विकसित होने लगते हैं। इसलिए व्यक्ति को उचित आकार के भवन या भूखण्ड पर बने भवन में निवास करना चाहिए।

मानसार, मयमत आदि ग्रन्थों में नगर के आकार के अनुसार नगर की संज्ञा तथा उसमें निवास करने वाले व्यक्ति का उल्लेख किया गया है। मयमत ग्रन्थ में आकार के अनुसार निम्न प्रकार के नगर बताए गए हैं।

६.५.४ आठ प्रकार के ग्राम

दण्डक, स्वस्तिक, प्रस्तर, प्रकीर्णक, नन्द्यावर्त, पराग, पद्म तथा श्रीप्रतिष्ठित- ये आठ प्रकार के ग्राम होते हैं।

दण्डक

जिस ग्राम के मार्ग पूर्व तथा उत्तर दिशा की ओर सीधे जाते हो तथा एक दूसरे को मध्य में काटते हो, उसे मुनियों ने **दण्डक** कहा है। यह चार द्वार से युक्त होता है। मुनियों ने उसे भी **दण्डक** कहा है जिसमें एक सीधी दंड के समान वीथी हो।

स्वस्तिक

स्वस्तिक नव पद से युक्त ग्राम है, जिसके बाहर चारों ओर एक मार्ग हो। एक वीथी (मार्ग) जो ईशान से शुरू होकर (पूर्व से शुरू अतः पूर्व वीथी) पश्चिम की ओर जाकर दक्षिण में समाप्त हो।

एक मार्ग आग्नेय से शुरू होकर (दक्षिण दिशा से शुरू अतः दक्षिण वीथी) उत्तर की ओर जाकर पश्चिम में समाप्त हो।

एक मार्ग नैऋत्य से शुरू होकर (पश्चिम दिशा से शुरू होता है, इसलिए पश्चिम वीथी) पूर्व की ओर जाकर उत्तर में समाप्त होता है।

वायव्य से शुरू होकर (उत्तर दिशा से शुरू अतः उत्तर वीथी) दक्षिण की ओर जाकर पूर्व में समाप्त होता है। यह ग्राम स्वस्तिक के समान दिखाई देता है। जो कि चार मुख्य मार्ग से युक्त होता है।

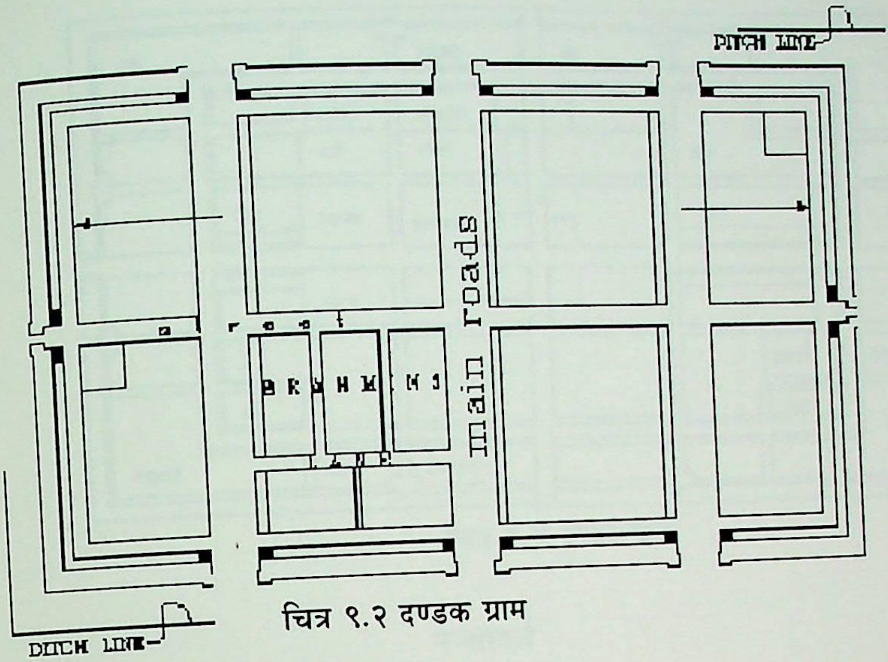
DITCH LINE
main roads
road
BRAHMANS
DITCH LINE

चित्र ९.२ दण्डक ग्राम

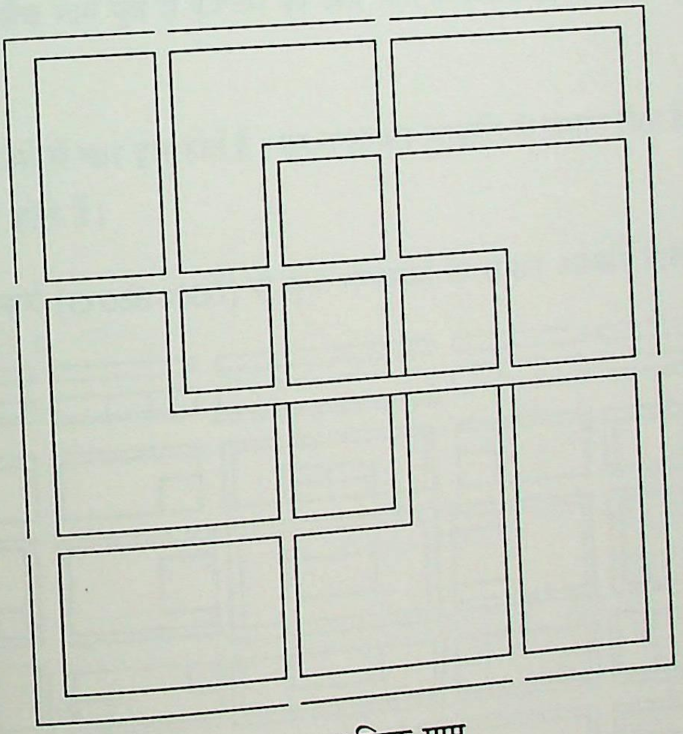

चित्र ९.३ स्वस्तिक ग्राम

प्रस्तर

प्रस्तर ग्राम पाँच प्रकार का होता है। इसमें पूर्व दिशा से पश्चिम की ओर जाने वाले तीन मार्ग होते हैं तथा तीन, चार, पाँच, छः या सात मार्ग उत्तर से शुरू होते हैं।

प्रकीर्णक

प्रकीर्णक (ग्राम) पाँच प्रकार का कहा गया है। इसमें चार मार्ग पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हैं तथा बारह, ग्यारह, दस, नौ या आठ मार्ग उत्तर से शुरू होते हैं।

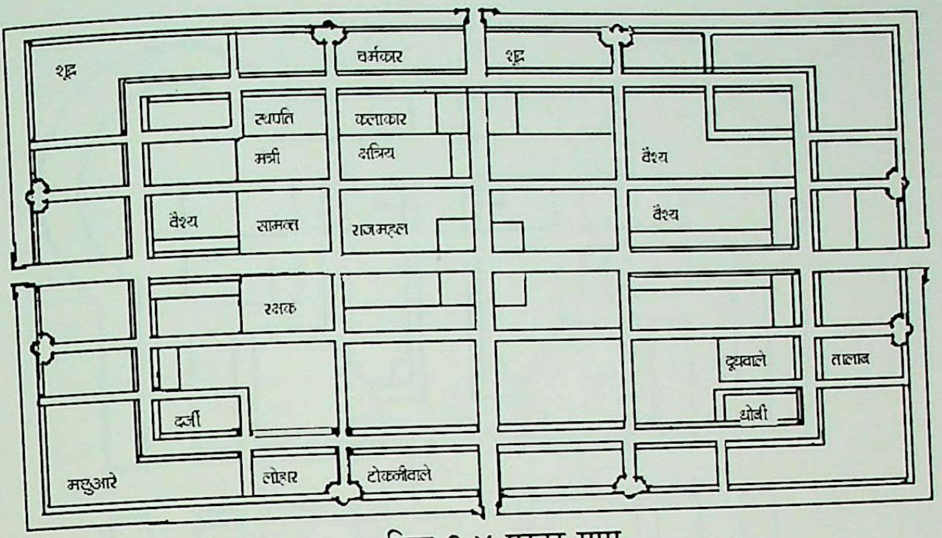
शूद्र
चर्मकार
शूद्र
स्थपति
कलाकार
मंत्री
क्षत्रिय
वैश्य
वैश्य
सामन्त
राजमहल
वैश्य
रक्षक
दूधवाले
तालाब
दर्जी
धोबी
मछुआरे
लोहार
टोकनीवाले

चित्र ९.४ प्रस्तर ग्राम

नन्द्यावर्त

नन्द्यावर्त ग्राम में पाँच मार्ग पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हैं तथा तेरह, चौदह, पंद्रह, सोलह या सत्रह मार्ग उत्तर से जाते हैं।

इसमें चार दिशाओं में चार द्वार होते हैं। यह नन्द्यावर्त आकृति के समान होता है। द्वार (आकृति) के बाहर तथा मार्ग अंदर होते हैं।

यह अनेकानेक मार्ग (cross road) से युक्त नन्द्यावर्त के समान आकार वाला कहा गया है।

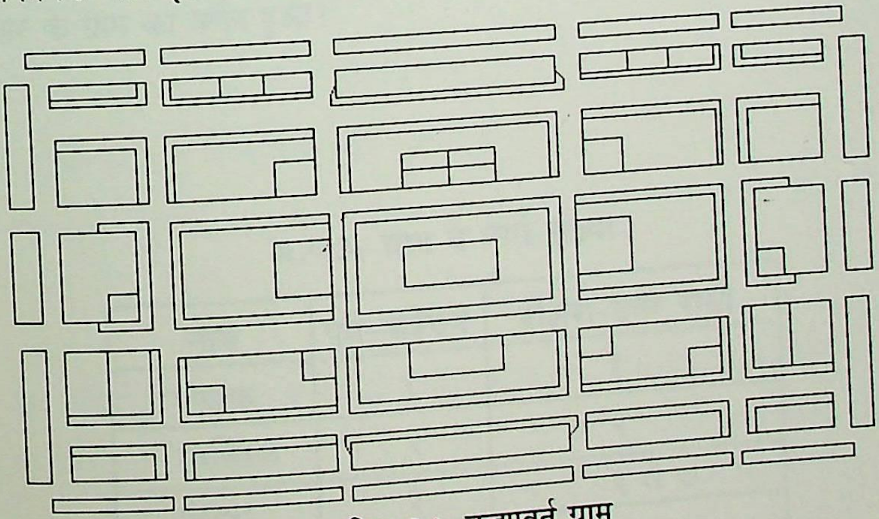

चित्र ९.५ नन्द्यावर्त ग्राम

पराग

जिस ग्राम में अठारह से बाईस मार्ग उत्तर से तथा छः मार्ग पूर्व से हो, उसे **पराग** कहा गया है।

पद्मक

पद्मक ग्राम पाँच प्रकार कहा गया है इसमें सात मार्ग पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हैं तथा तीन, चार, पाँच, छः या सात मार्ग उत्तर से शुरू होते हैं। यह बीस (cross road) से युक्त होता है। (चित्र ९.६)

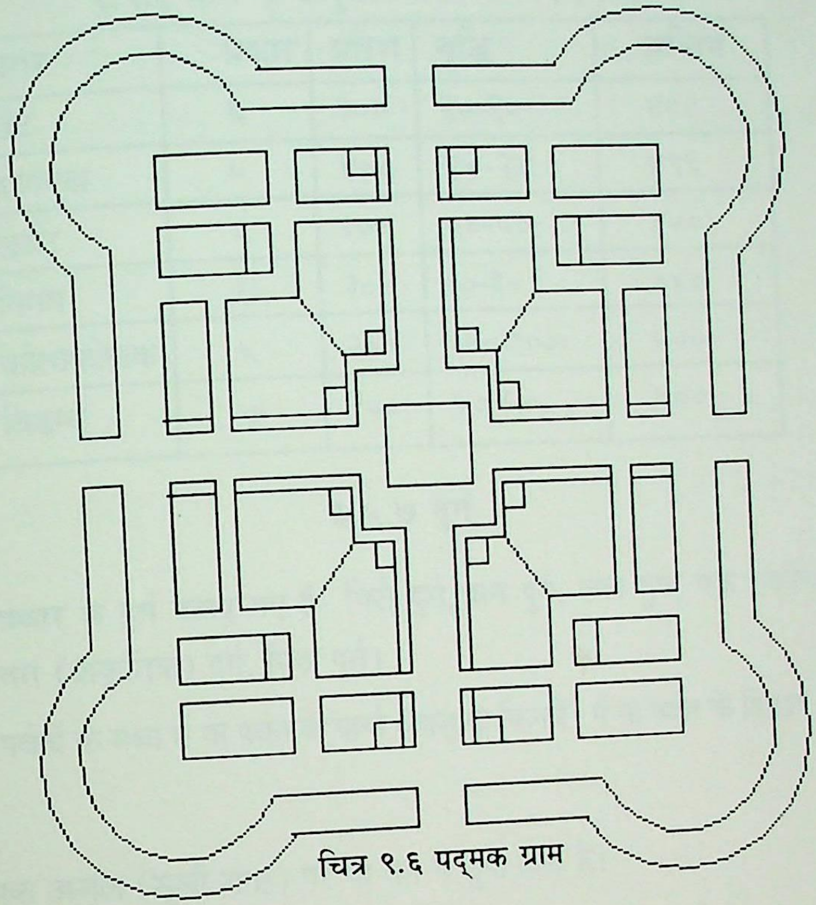

चित्र ९.६ पद्मक ग्राम

श्रीप्रतिष्ठित ग्राम में आठ मार्ग पूर्व से प्रारंभ होते है तथा अट्ठाईस से बत्तीस मार्ग उत्तर से प्रारंभ होते हैं। ये आठ प्रकार के ग्राम का वर्णन हुआ।

६.५.५ ग्राम व मार्ग संख्या

नाम	पूर्व-पश्चिम	दक्षिण-उत्तर रास्ते
दण्डक	१	१
स्वस्तिक	२	२
प्रस्तर	३	३ से ७
प्रकीर्णक	४	८ से १२
नन्द्यावर्त	५	१३ से १७
पराग	६	१८-२२
पद्म	७	३ से ७
श्रीप्रतिष्ठित	८	२८ से ३२

६.५.६ मान के अनुसार नगर के भेद (दण्ड में)

नगर	प्रकार	प्रारंभ	वृद्धि	अन्तिम
खेट	६	३००	२०-२०	४००
द्रोणमुख	५	४००	२४-२४	४९६
खर्वट	५	२००	५०-५०	४००
निगम	१५	२००	१०-१०	३४०
कोत्मकोलक	५	२००	१००-१००	५००
विडम्ब	७	२००	५०-५०	५००

६.५.७ दुर्ग

यहाँ सात प्रकार के दुर्ग बताए गए हैं- गिरी दुर्ग, वन दुर्ग, जल दुर्ग, पंक (कीचड़) दुर्ग, ईरिण (मरुभूमि) दुर्ग, दैवत (प्राकृतिक) दुर्ग, मिश्र दुर्ग।

गिरी दुर्ग, पर्वतों के मध्य में या पर्वत के पार्श्व (बाजू या किनारे) में या पर्वत के शिखर (चोटी) पर होता है।

वन दुर्ग एक अजल (सूखी जगह) पर या वन में छुपा होता है।

मिश्र दुर्ग वह होता है, जिसमें उपरोक्त दोनों प्रकार के दुर्गों की विशेषताएँ या लक्षण पाए जाते हैं।

दैव दुर्ग में प्राकृतिक सुरक्षा होती है।

पंक दुर्ग में कीचड़ का चारों ओर परकोटा होता है।

जल दुर्ग, नदी के मध्य में या सागर के मध्य में होता है।

ईरिण (रेत दुर्ग) (रेगिस्तान दुर्ग) ऐसे स्थान पर होता है, जो वृक्ष व पानी से रहित होता है।

६.५.८ विश्लेषण

नगर का नियोजन विभिन्न प्रकार से किया जाता है। जब किसी छोटे या मध्यम आकार के सामान्य रूप से नगर का नियोजन करते हैं तो उसे वास्तु पद विन्यास के विभिन्न देवता के आधार पर करते हैं। जब हम किसी बड़े नगर का नियोजन करते हैं तो वास्तु पद विन्यास के साथ-साथ विभिन्न परकोटों को ध्यान में रखकर न्यास करते हैं। नगर के नियोजन मार्ग के आकार (दण्ड, स्वस्तिक, सर्वतोभद्र आदि) के अनुसार भी किया जाता है।

नगर के उपयोग का निर्धारण कर नगर का नियोजन करते हैं।

बन्दरगाह- समुद्र के किनारे- कार्मुक नगर बनवाना चाहिए।

उज्जैन, अयोध्या, काशी आदि प्राचीन नगर आज भी जीवित हैं तथा हजारों वर्षों बाद में अक्षुण्ण बने हुए हैं। उस समय का नगर नियोजन उनकी विशिष्टता को प्रदर्शित करता है।

इन्दौर नगर के वास्तु का भी जब हम अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि इन्दौर के आसपास लगभग २००-३०० किलोमीटर के क्षेत्र में सर्वाधिक विकसित नगर इन्दौर ही है। जब हम इन्दौर के वास्तु को देखते हैं तो पाते हैं कि मुख्य मार्ग पूर्व-पश्चिम दिशा में हैं- महात्मा गाँधी मार्ग तथा जवाहर मार्ग। अन्य मार्ग इस पर लम्बवत हैं-जेलरोड़, पीपली बाजार, रवीन्द्रनाथ टैगोर मार्ग आदि। पश्चिमी भाग में व्यापार व्यवसाय के केन्द्र हैं। पूर्वी भाग में पाठशाला, विद्यालय आदि है। नए विकसित किए जाने वाले मार्ग एम आर -१० आदि भी मुख्य दिशाओं में हैं। नगर के पश्चिम भाग में स्थित बाजार- मारोठिया बाजार, बोहरा बाजार, कपड़ा मार्केट, बर्तन बाजार, सराफा बाजार आदि सबको जब हम वास्तु शास्त्र के दृष्टि से देखते हैं तो मयमत ग्रन्थ के अनुरुप पाते हैं।

६.६ द्रव्य तथा द्रव्य प्रमाण

द्रव्य को हम दो प्रकार से देख सकते हैं-द्रव्य तथा द्रव्य प्रमाण

द्रव्य के अन्तर्गत हम विभिन्न द्रव्य जैसे लकड़ी, पत्थर, चूना, ईंट आदि, उनका चयन तथा शुभाशुभ द्रव्य ले सकते हैं।

द्रव्य प्रमाण के अन्तर्गत हम गृह आदि में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के द्रव्य आदि के मान का विचार करते हैं। उदाहरण के लिए द्वार का मान, चौखट, लकड़ी, स्तम्भ, देहली आदि का मान, भवन की चौड़ाई आदि का मान।

हम यहाँ द्रव्य व द्रव्य प्रमाण दोनों ही आधार पर समरांगण-सूत्रधार तथा मयमत ग्रन्थ को अभियान्त्रिकी आधार पर विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे।

६.६.१ गृहद्रव्यप्रमाणानि

६.६.१.१ द्वार का मान

मध्यम प्रकार के घरों (द्वार) में तीन राशिओं के अंश से बारह अंश तक छोड़ देना चाहिए।[१]

द्वार की ऊँचाई = १/३ (घर की ऊँचाई)

द्वार की ऊँचाई = (१/४) (घर की ऊँचाई)

द्वार की ऊँचाई = (१/५) (घर की ऊँचाई)

विश्लेषण मध्यम प्रकार के लिए कहा कि घर की जितनी ऊँचाई हो उसमें से ऊँचाई का तीसरा भाग से बारहवें भाग तक कोई भी भाग तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ आदि कम कर देना, इस प्रकार जो मान प्राप्त हो, उतनी द्वार की ऊँचाई होती है। जैसे घर की ऊँचाई है १२ फीट तो इसका एक तिहाई (१२/३ अर्थात् ४ फीट) कम किया (१२-४), तो ८ फीट आया। यह द्वार की ऊँचाई है।

इसी श्लोक में कहा कि द्वार की ऊँचाई, घर की ऊँचाई (मंजिल की ऊँचाई) में से तीसरे भाग से बारहवें भाग तक कम करते हैं।

अब जैसे बारहवाँ भाग कम की तो (१२/१२) अर्थात् १ फीट कम किया तो आया (१२-१) ११ फीट यह द्वार की अधिकतम ऊँचाई हुई, जब घर की ऊँचाई १२ हो।

इससे यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि जब मंजिल की ऊँचाई १२ फीट हो तो द्वार की ऊँचाई ८ फीट से ११ फीट के मध्य हो सकती है या होती है।

चौखट

द्वार की ऊँचाई जितने हस्त हो, उतने अंगुल में चार जोड़ने पर **पेद्यापिण्ड**

(चौखट) का मान होता है। उसकी चौड़ाई सवा गुना, डेढ़ गुना, पौने दो गुना या दो गुना हो सकती है। इससे अधिक नहीं होना चाहिए। इससे अधिक मान होने पर स्फुट (बहुत ज्यादा, फटना) हो जाता है।[८-९]

विश्लेषणः-जैसे द्वार की ऊँचाई ८ फीट अर्थात् ४ हस्त हो, तो उतने अंगुल अर्थात् ४ अंगुल में चार जोड़ देने पर ८ अंगुल द्वार की चौखट की लकड़ी की मोटाई का मान होता है। चौखट की चौड़ाई का मान मोटाई से सवा गुने से दुगने तक होता है। इसमें यह मान ८ का सवा गुना (१० अंगुल) से दो गुना (१६ अंगुल) तक होगा।

द्वार की चौखट की मोटाई (अंगुल में) = द्वार की ऊँचाई (हस्त में) + ४

पेद्यापिण्ड-यहाँ पेद्यापिण्ड कहा, पेद्या नहीं कहा, इसका तात्पर्य यह है यह पिण्ड है, समूह है, जब ७ शाखा या ९ शाखा का द्वार बनाते हैं तब यह मान होता है।

६.६.१.२ घर की ऊँचाई

घर की चौड़ाई में सोलह का भाग देकर चार हस्त जोड़ने पर, घर की ऊँचाई का मान प्राप्त होता है। उतनी ऊँचाई शुभ कही गई है।[१६/२८]

ज्येष्ठ घर की ऊँचाई (भवन की चौड़ाई के सोलहवें अंश में) सात हस्त (१४ फीट) जोड़कर, मध्यम की ऊँचाई (भवन की चौड़ाई के सोलहवें अंश में) छह हस्त (१२ फीट) जोड़कर, छोटे घर की ऊँचाई (भवन की चौड़ाई के सोलहवें अंश में) पाँच हस्त (१० फीट) जोड़कर कही गई है।[१७/२८]

भवन	**शाला (हस्त)**	**फीट**[१८/२८]
ज्येष्ठ	१७	३४
मध्यम	१०	२०
छोटे	५	१०

६.६.१.३ स्तम्भ का मान

स्तम्भ की कोटि = (१/४) द्वार की चौड़ाई[२४/२८]

६.६.१.४ उत्कालक आदि अंग

स्तम्भ के ऊपर तुला (बीम) आदि विभिन्न अंग होते हैं। ये अंग, छत का भार, स्तम्भ पर स्थानान्तरित करते हैं। इन्हें प्रस्तर आदि भी कहते हैं (मानसार अध्याय १६)। इस रचना को विभिन्न आकृतियों से सजाने का विधान भी शास्त्र में बताया गया है।

उत्कालक (upper block or architrave style or the main beam resting on the abacus on capital of column) की ऊँचाई, स्तम्भपिण्ड के बराबर शुभ कही गई

है। कुम्भिका, उत्कालक के समान पिण्ड में होती है, परन्तु उसकी चौड़ाई आठ अंश से युक्त होती है।[२४/२८]

कुम्भिका की चौड़ाई आठ अंश से युक्त होती है का तात्पर्य है कि १/८ भाग अधिक होती है।

स्तम्भ तलपट्ट

तलपट्ट की चौड़ाई = स्तम्भ मूल की चौड़ाई के बराबर होती है।

तलपट्ट की मोटाई = .75 or 1.25 (तलपट्ट की चौड़ाई) (३४/२८)

हीरग्रहण आदि अंग व स्तम्भ भूषण

हीरग्रहण की चौड़ाई = स्तम्भ की चौड़ाई

हीरग्रहण की मोटाई = १.२५ (स्तम्भ की चौड़ाई)

हीरग्रहण की लम्बाई = 3 स्तम्भ का अग्र [३५/२८]

व्याख्याः- हीरग्रहण का तात्पर्य बोधिका, फलकासन आदि से हो सकता है।

तुला आदि अवयव

स्तम्भ के ऊपर के तुला आदि विभिन्न अवयव का वर्णन आरम्भ करते हैं-

तुला की मोटाई = स्तम्भ के अग्र-भाग

तुला का विस्तार= स्तम्भ के अग्र-भाग

जयन्ति का मान = ०.५ तुला का मान

निर्यूह का मान = ०.२५ तुला का मान[४१/१६]

तल विन्यास

तल मनोरम (सुन्दर, मनोहर) बनाना चाहिए। एक भूमि से दूसरी भूमि पर वह द्वादश अंशों (बारह भागों) (twelve fractions) से विवर्जित होना चाहिए अर्थात कम होना चाहिए।

६.६.१.५ लेप व मसाले

कराल, मुद्गी, गुल्माष, कल्क, चिक्कण इन पांच को चूने के साथ मिलाए। इस प्रकार का पदार्थ सभी कार्यो के लिए उपयुक्त है।

कराल बड़ा पत्थर होता है, जिसका आकार अभय या रुद्राक्ष के बीजों के बराबर होता है।

मुद्‌गी एक बड़ा पत्थर होता है, जो फली के बीज के समान होता है।

गुल्माष, रेत के दानों के ३/२ भाग, कमल के रेशे ७/४ या दो भाग तथा चूना, बड़े पत्थर (कंकर) (के चूर्ण से युक्त) एक-एक भाग मिलकर बना होता है। कराल व मुद्‌गी भी इसी प्रकार बनते हैं। कल्क बनाने के लिए, रेत के दानों को उसके माप (पूर्व बताए अनुसार) उस अनुसार चूने का व चिक्कण को पीसे। चिक्कण, समरूप तरल होना चाहिए। ये पाँचों उत्पादों को ईंट जोड़ने के लिए, अलग-अलग स्थान पर प्रयोग करते हैं।

प्रत्येक के उपयोग के आधार पर उचित का चयन उपयुक्त कार्य के लिए किया जाता है।

उपरोक्त पदार्थों को उपयोग करने व पीसने से पहले, साफ पानी से धोना चाहिए। बारीक मिश्रण करने के लिए पाँच फल क्षीरद्रुम, कदम्ब, आम, अभय व अक्ष का सार, इसके साथ ही त्रिफला, फलों का रस व सेम फली का पानी लेना चाहिए। इसके बाद कंकड़, पत्थर, छिलके व चूने को कुएँ के पानी के साथ मिलाया जाता है। इस मसाले को अच्छी तरह घोड़े के टापों के द्वारा (खुरों के नीचे) मिश्रित करवा कर, बारीक कपड़े (छलनीदार) से छाना जाता है। इस प्रकार यहाँ कल्क व चिक्कण को लसलसा बनाने की सलाह दी गई है।

जिसे **बन्धोधक** कहते है, उसे मिस्त्रियों के द्वारा दही, दूध, सेम के पानी, गुड़, घी, केलों, नारियल का दूध व आम के रस का प्रयोग करके बनाया जाता है। दीवार को शुद्ध पानी से अच्छी तरह धोने के बाद, बन्धोधक को परत चढ़ाने के लिए प्रयोग करते हैं। यदि किसी प्रकार की कोई छाया वहाँ पर रखी जाने वाली हो (या लगाई जाने वाली हो।)

उपरोक्त वर्णन के अनुसार, कंगुरों के ऊपर अच्छे से सलाह दिए हुए लोग टाइल्स (चाहे वह पक्की हो या कच्ची) या धातु की हो, लगाते हैं व उसे (परत से) ढकते हैं। कराल की परत एक अंगुल मोटी, जैसी की मुद्‌गी व गुल्माष की होती है। कल्क की मोटाई आधी और चिक्कण की मोटाई कल्क से आधी होती है।

परनालों (gutter) के बारे में मोटाई को विशेष परिस्थिति के अनुसार चयनित किया जाता है। सही परिणाम आने में छह महिने लगते हैं व चार माह मध्यम परिणाम के लिए, दो महिने अधम परिणाम के लिए लगते हैं। तब सभी पदार्थ बंधोधक के साथ गीलाकर लिए जाते हैं। यह पूरी विधि वैसी ही हो, जैसी की ऊपर बताई गई है।

ईंटों की एक तह को लुपा के ऊपर रखकर, फिर चूना रखा जाता है। इसे ईंटों की छत (कन्ध) भी कह सकते हैं। इस छत को पूरी तरह से परत से ढका जाता है। इसकी मोटाई, ऊपर कहे अनुसार रखी जाती है।

६.६.१.६ चित्रकर्म

प्रासादों में व ब्राह्मणों के घरों की दीवालों पर, अन्दर व बाहर वे चित्र लगाना चाहिए, जो उनके लिए उपयोगी (योग्य) हो।

ब्राह्मणों के घरों के लिए चित्र इस प्रकार के हों, की उसको खुशी मिले। धार्मिक प्रतिमा, ब्राह्मणों के लिए उचित है। अन्य जातियों के लिए भी ऐसे चित्र हों, जो उन्हें सफलता दें।

वहाँ लड़ाई के दृश्य वाले, मौत के दृश्य वाले, शव वाले, दुर्भाग्य वाले चित्र नहीं होना चाहिए। न ही देवता, राक्षस, युद्ध, नग्न, भिक्षुक, तपस्वी, लीलाओं, दुखी के चित्र होना चाहिए।

इस प्रकार के चित्र अन्य जातियों के लिए कहे गए हैं। दूसरे लोग अपनी इच्छा के अनुसार कर सकते हैं।

अच्छे मसाले को बनाने के लिएः-

- ५ भाग सेम का पानी
- ९ भाग गुड़
- ८ भाग दही
- ९ भाग घी
- ७ भाग फलों का रस
- ६ भाग चर्म
- १० त्रिफला का रस
- ४ भाग नारियल का दूध
- १ भाग शहद तथा
- ३ भाग केलों को, इस प्रकार,
- इन सभी तत्वों को १०० भाग चूने के साथ मिलाया जाता है।

यह कहा गया है कि यहाँ पर गुड़, शहद व दूध का हिस्सा दूसरे भागों से अधिक होना चाहिए।

मसालाः-

- चूने के १०० भागों में २ भाग मसाले को
- २ भाग चूना
- कराल
- शहद
- घी
- केलों
- नारियल का दूध
- फली का पानी
- इमली का पानी,
- दूध
- दही
- गुड़ व
- त्रिफला का रस लेकर बनाए हुए मसाले को, निपुण, पत्थर के समान कहते हैं।

६.७ वास्तुशास्त्र के अनुसार नियोजन के नियम

पहले यह निर्धारित करें कि कौन सा पद विन्यास करना है।

८ गुणित ८ या ९ गुणित ९, क्योंकि ८ गुणित ८ में बाहर २८ भाग है, मध्य में ४ भाग ब्रह्मा है, दोनों मिलाकर कुल ३२ भाग हुए जहाँ निर्माण नहीं करना है, तो निर्मित क्षेत्रफल कुल ३२ भाग अर्थात ५० प्रतिशत होगा।

९ गुणित ९ में बाहर ३२ पद ब्रह्मा ९ पद कुल ४१ पद, जो छोड़ना है, ४० पद में निर्माण करना है। इस तरह से यह ५० प्रतिशत से कुछ कम आएगा।

ब्रह्मस्थान ४ भाग छोड़े।

जो हिस्सा बनाना है, उसका मध्य स्थान तथा प्लाट (भूखण्ड) का मध्य स्थान एक नहीं होना चाहिए। कोई भी कमरे का मध्य न तो दिशा के मध्य की रेखा पर, न ही कोण की मध्य रेखा पर हो।

(१) सबसे पहले प्लाट की सीमा निर्धारित करें।

उत्तर दिशा ज्ञात करके पद विन्यास करें।

बाहर की वीथि में द्वार का शुभ स्थान ज्ञात करें।

(२) बाहर की पैशाच वीथि में निर्माण नहीं करते हैं।

(३) मध्य की ब्रह्मा वीथि में पद विन्यास नहीं करते हैं।

८ गुणित ८ में -

१- यमसूत्र व ब्रह्मसूत्र मध्य से जाते हैं।

२- इसके मर्म कर्णरेखा तथा आड़ी व खड़ी रेखा के सन्धिस्थल मिलकर, मर्म बनते हैं, जो कि ज्यादा सही है।

३- इसमें जो देवताओं का विस्तार होता है वह कोण से बराबर मिलता है।

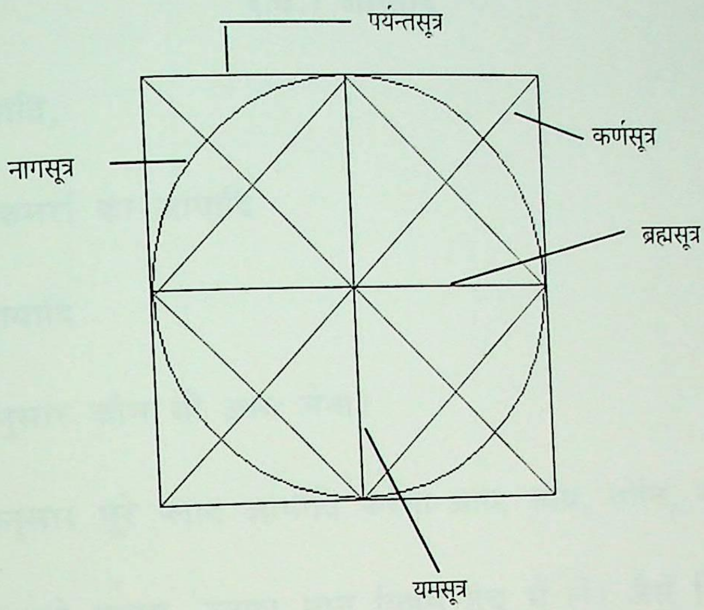
पर्यन्तसूत्र
कर्णसूत्र
नागसूत्र
ब्रह्मसूत्र
यमसूत्र

सूत्र विन्यास

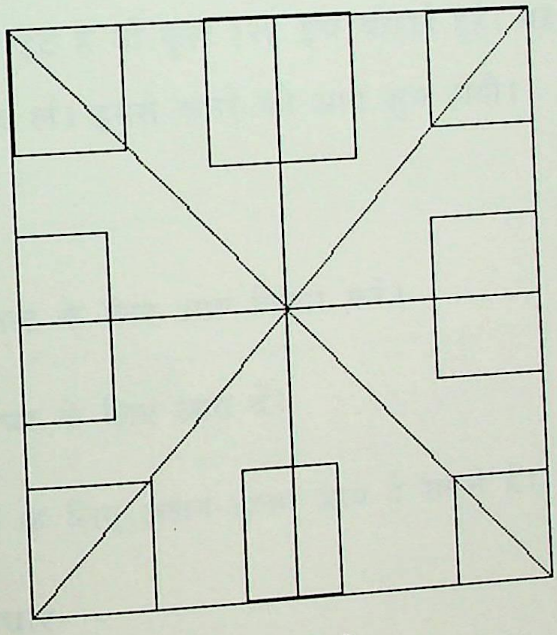

चित्र २.६ सूत्र वेध

प्लाट के प्रवेश द्वार के पास में ही बैठक का कमरा बनाएं, (ड्राईंग रुम)

बैठक कक्ष के बाद में लीविंग के लिए अलग से स्थान हो तो वह बनाए,

इसके पश्चात भोजनशाला (डाईनिंग कक्ष) व रसोई घर हो।

वहीं दूसरी ओर स्नान आदि के कक्ष हो।

सबसे अन्त से शयन कक्ष हो।

एक से अधिक शयन कक्ष हों तो दक्षिण दिशा, नैर्ऋत्य कोण, पश्चिम दिशा में शयन कक्ष उचित हैं।

६.७.१ आयादि

- प्लाट का आयादि,
- अलग-अलग कमरों का आयादि
- दीवार का आयादि
- व्यक्ति के अनुसार कौन सी आय लेना।
- व्यक्ति के अनुसार पूरे प्लाट आयादि करना-आय, व्यय, योनि, नक्षत्र।

जो भी कमरे हमने बनाए, उनका मान विषम इंच में लें। जैसे किसी कमरे की लम्बाई ११फीट ३ इंच अर्थात् कुल १३५ इंच हुए यह विषम हैं अतः शुभ है। इसी प्रकार यदि कमरे की चौड़ाई १० फीट ४ इंट है तो कुल १२४ इंच चौड़ाई हुई। यह सम संख्या है, तो चौड़ाई १२५ इंच या १२३ इंच लें। इससे कमरे की आय शुभ होगी।

आय विचार-

- सबसे पहले पूरे प्लाट के लिए आय विचार करें।
- उसके पश्चात पूरे घर के लिए आय दें।
- अलग-अलग कमरे के लिए अलग-अलग आय दे सकते हैं।

आय विचार का आधार-

- दिशा के अनुसार
- कमरे के उपयोग के अनुसार

यहाँ हम कमरे के उपयोग के अनुसार आय का विचार करेंगे।

ड्राईंग रुम आय शुभ आय १, ७, बेड रुम शुभ आय ७, पूजा कक्ष शुभ आय १, रसोई १, ५। घर में ध्वज व गज आय शुभ है।

सिंह आय के स्थान पर गज या अन्य आय शुभ नहीं है।

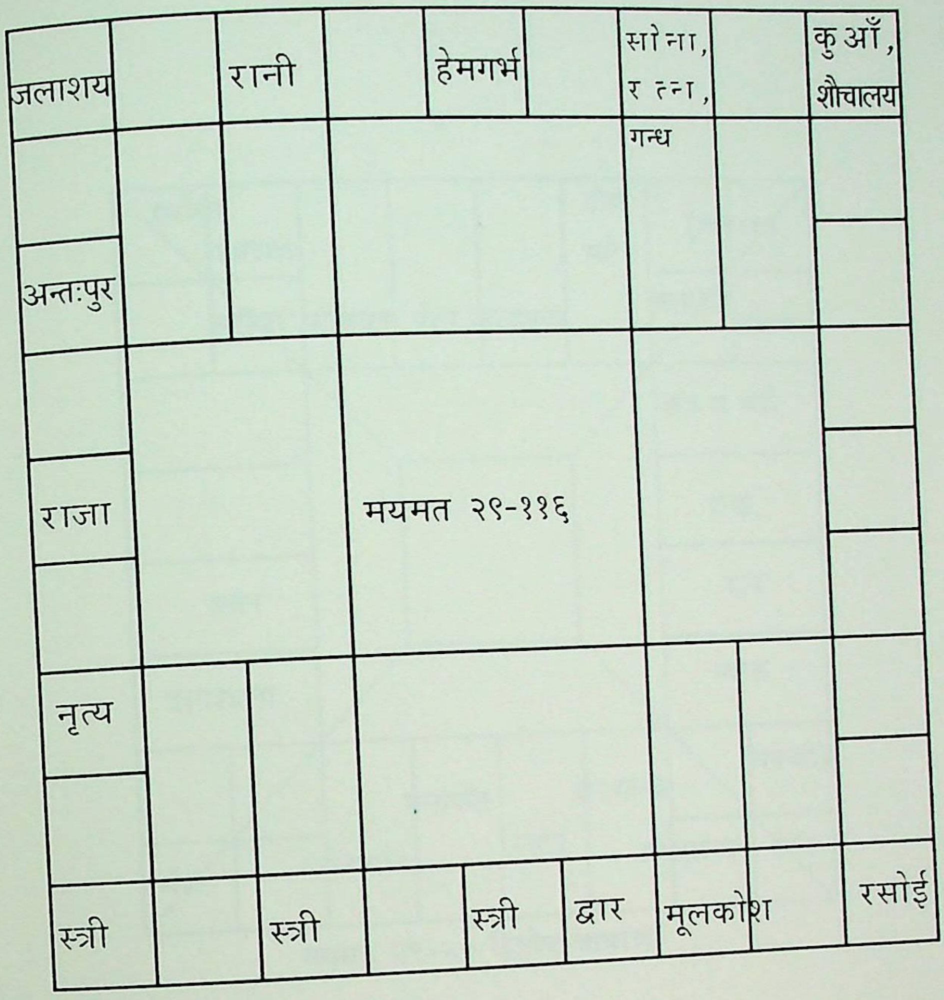
जलाशय
रानी
हेमगर्भ
सोना, रत्न, गन्ध
कुआँ, शौचालय
अन्तःपुर
राजा
मयमत २९-११६
नृत्य
स्त्री
स्त्री
स्त्री
द्वार
मूलकोश
रसोई

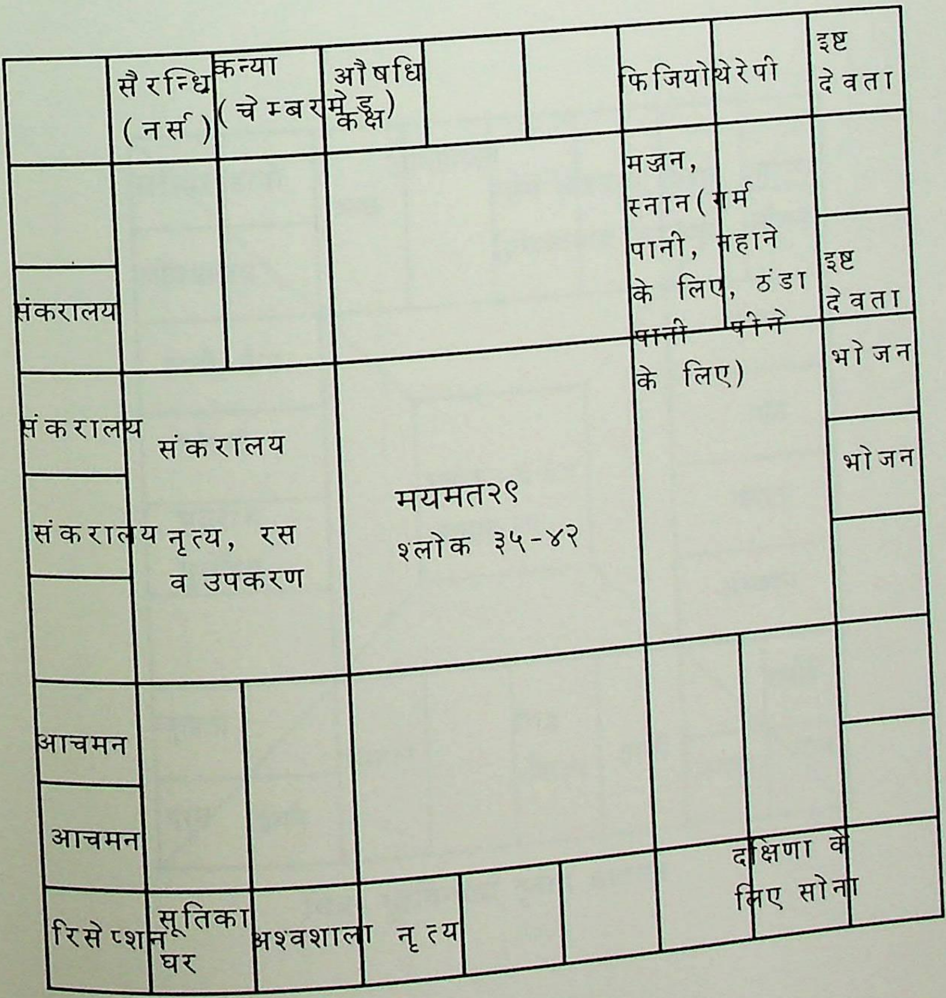
सैरन्धि (नर्स)
कन्या (चेम्बर
औषधि (मेड्इ कक्ष)
फिजियोथेरेपी
इष्ट देवता
मज्ञन, स्नान (गर्म पानी, नहाने के लिए, ठंडा पानी पीने के लिए)
इष्ट देवता
भोजन
भोजन
संकरालय
संकरालय
संकरालय
संकरालय
मयमत२९ श्लोक ३५-४२
नृत्य, रस व उपकरण
आचमन
आचमन
दक्षिणा के लिए सोना
रिसेप्शन
सूतिका घर
अश्वशाला
नृत्य

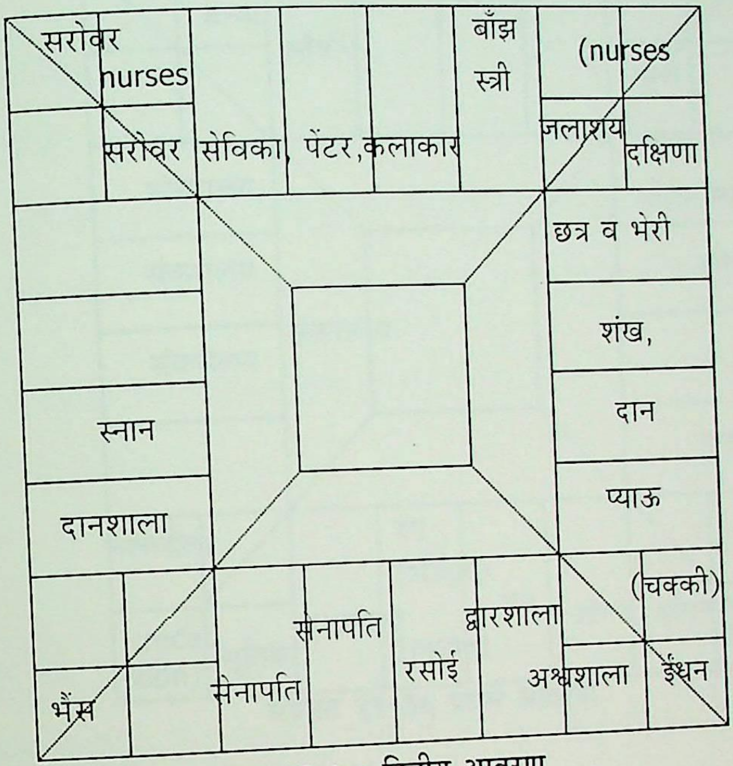
सरोवर
nurses
बाँझ स्त्री
(nurses
सरोवर
सेविका, पेंटर, कलाकार
जलाशय
दक्षिणा
छत्र व भेरी
शंख,
दान
प्याऊ
स्नान
दानशाला
(चक्की)
सेनापति
द्वारशाला
रसोई
सेनापति
अश्वशाला
ईंधन
भैंस

मयमत २९-५० द्वितीय आवरण

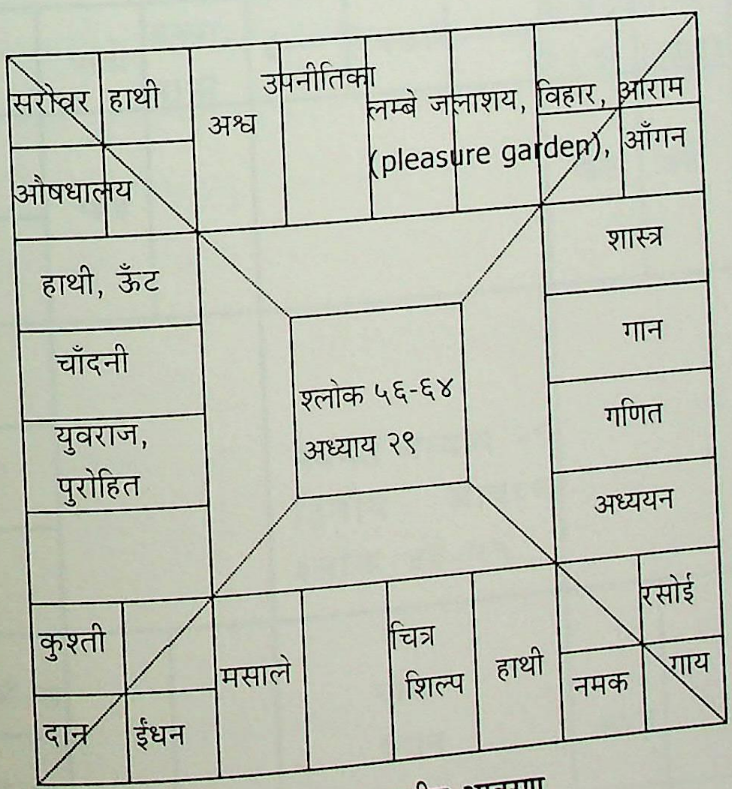
सरोवर
हाथी
उपनीतिका
अश्व
लम्बे जलाशय, विहार, आराम
(pleasure garden), आँगन
औषधालय
शास्त्र
हाथी, ऊँट
गान
चाँदनी
श्लोक ५६-६४
अध्याय २९
गणित
युवराज,
पुरोहित
अध्ययन
रसोई
कुश्ती
चित्र
शिल्प
हाथी
गाय
मसाले
नमक
दान्न
ईंधन

चित्र- गृहविन्यास तृतीय आवरण

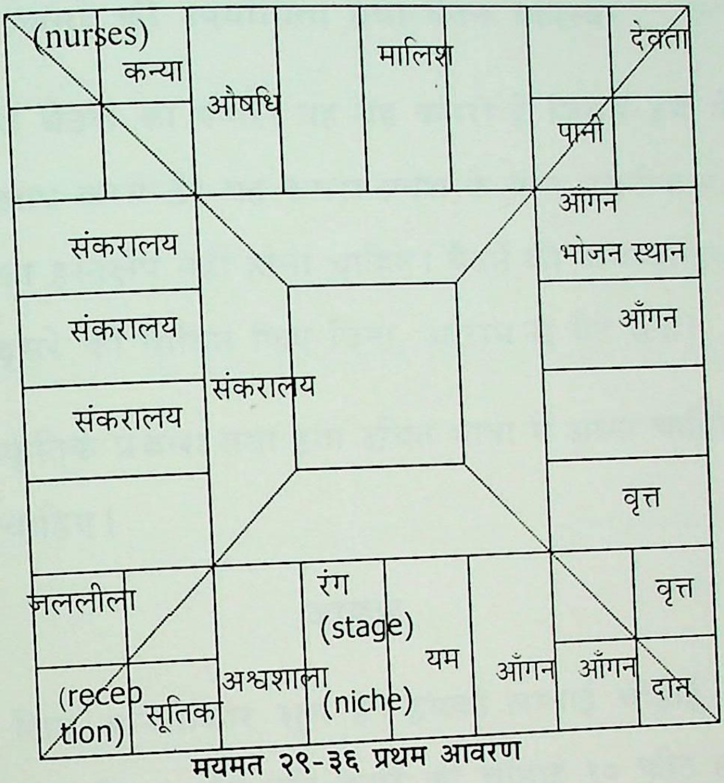
(nurses)
कन्या
औषधि
मालिश
देवता
पानी
आँगन
भोजन स्थान
आँगन
संकरालय
संकरालय
संकरालय
संकरालय
वृत्त
वृत्त
जललीला
रंग
(stage)
यम
आँगन
आँगन
दास
(reception)
सूतिका
अश्वशाला
(niche)

मयमत २९-३६ प्रथम आवरण

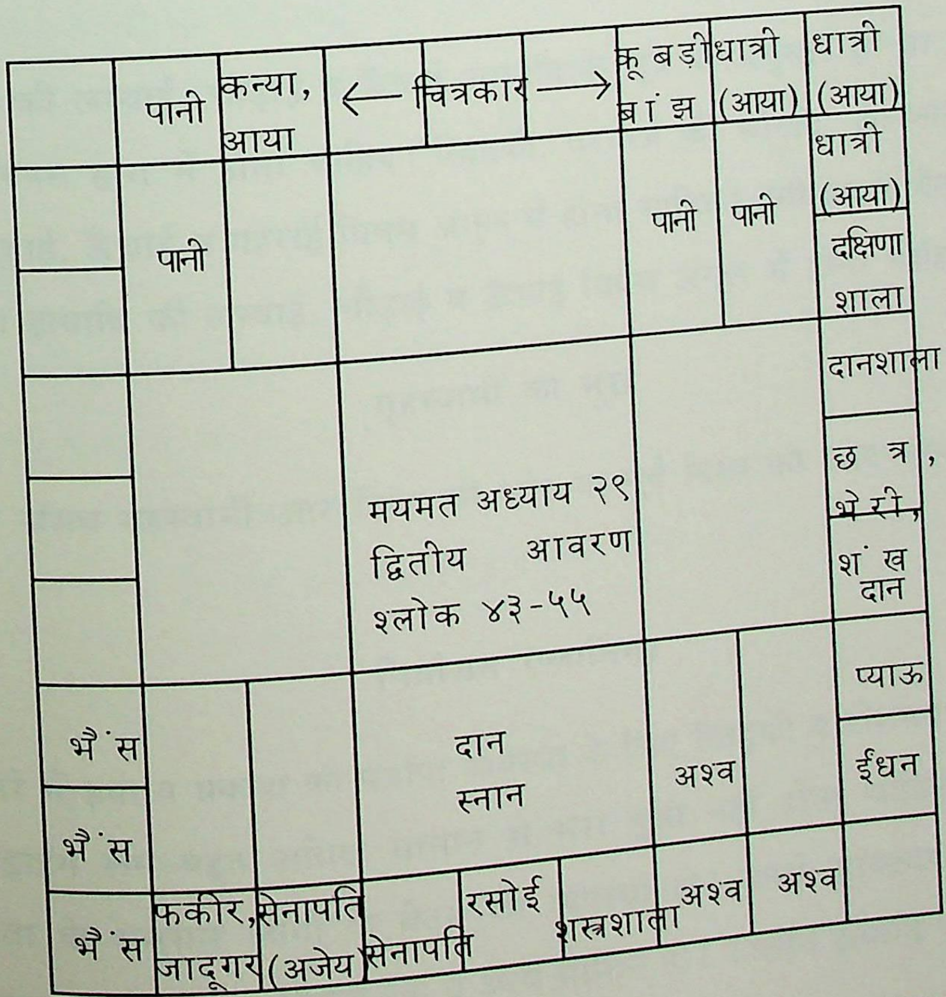
पानी
कन्या, आया
← चित्रकार →
कू बड़ी
बांझ
धात्री (आया)
धात्री (आया)
धात्री (आया)
पानी
पानी
पानी
दक्षिणा शाला
दानशाला
छत्र, भेरी, शंख दान
मयमत अध्याय २९
द्वितीय आवरण
श्लोक ४३-५५
प्याऊ
ईंधन
भैंस
भैंस
भैंस
दान
स्नान
अश्व
अश्व
अश्व
फकीर, सेनापति
जादूगर (अजेय)
सेनापति
रसोई
शस्त्रशाला

६.७.२ ड्राईंग रुम

कमरे की उपयोगिता तथा बैठक व्यवस्था

ड्राईंग रुम अर्थात बैठक का कमरा यह वह कमरा है जिसमें हम मेहमान का स्वागत करते हैं। वार्तालाप करते हैं। यह कमरा प्रवेश के पास नजदीक होना चाहिए तथा अन्य कक्ष में इसका हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। बैठने की व्यवस्था इस प्रकार हो कि सभी व्यक्ति एक दूसरे को बाधित किए बिना, आराम से बैठ सकें।

इस कमरे में प्राकृतिक प्रकाश तथा हवा उचित मात्रा में आना चाहिए। कमरे में अंधेरापन नहीं होना चाहिए।

आकार

ड्राईंग रुम के लिए आयताकार शुभ है। इसकी लम्बाई चौड़ाई से १.६ गुना अधिक होना अत्यन्त शुभ है। अर्थात् यदि कमरे की चौड़ाई १० फीट हो तो उसकी लम्बाई १६ फीट होना चाहिए।

आयादि

कमरे की लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई आयादि के सूत्र के अनुसार हो या विषम अंगुल या विषम हस्त में होना चाहिए। खिड़की, दरवाजे की चौखट, अलमारी की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई व गहराई विषम अंगुल में होना चाहिए। इसी प्रकार बैठने की सीट, सोफा इत्यादि की लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई विषम अंगुल में होना चाहिए।

गृहस्वामी का मुख

यथा संभव गृहस्वामी उत्तर दिशा की ओर या पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठें।

नियोजन (प्लानिंग)

कमरे में हवा व प्रकाश की पर्याप्त व्यवस्था के लिए खिड़की व रोशनदान होना चाहिए। ड्राईंग रुम बहुत अधिक सामान से भरा हुआ नहीं होना चाहिए। उसमें आवश्यकता के अनुसार लोगों के बैठने की व्यवस्था हो। उसमें आवश्यकतानुसार सेन्ट्रल टेबल, साईड टेबल, डिस्प्ले रेक व अन्य सामान हों। कालीन इत्यादि का प्रयोग

सुन्दरता बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

फोन, टी.वी. आदि सुविधाजनक स्थान पर हों। फोन घर के व्यक्ति एक दूसरे को बाधित किए बिना आराम से सुन सकें।

इसी प्रकार टी.वी. भी बगैर बाधा के देखा जा सके।

टी. वी. मुख्य, भल्लाट, सोम व मृग के पद में शुभ है। इसे गन्धर्व के पद में रखा जा सकता है। मनोरंजन के अन्य सामान जैसे म्यूजिक सिस्टम, वी. सी. आर. आदि भी इन्हीं पदों में शुभ हैं।

लाईट की व्यवस्था व दिशा इस प्रकार हो की वह आँखों को न चुभे।

आन्तरिक सज्जा

इसकी आन्तरिक सज्जा शान्त व मनोहारी हो एवं वह गृहस्वामी की रुचि का प्रदर्शन करती हो। यह मित्रता का भाव लिए हुए हो।

इस कमरे में पानी से भरा हुआ कलश रखा जा सकता है। इससे पूर्णता का बोध होता है। कलश ताम्बें या चाँदी का बना हुआ शुभ है। इस पानी का छिड़काव अगले दिन घर में करने के उपरान्त कलश को साफ कर पुनः पानी भर ऐसे स्थान पर रखना चाहिए, जहाँ से वह आते-जाते समय दिखाई दे।

इन्डोर प्लान्टस्

कमरे में इन्डोरप्लान्टस का उपयोग किया जा सकता है। परन्तु इस बात की विशेष सावधानी रखना चाहिए कि लगभग सभी प्लान्टस रात्रि में कार्बन डायऑक्साईड गैस को उत्सर्जन करते हैं, निकालते हैं, छोड़ते हैं। अतः इस प्रकार की व्यवस्था हो कि वह गैस घर से बाहर जा सके तथा घर में रहने वाले व्यक्तियों के स्वास्थ्य को प्रभावित न करे।

रंग

कमरे में सफेद, क्रीम या हल्के पीले (सुनहरे रंग) का प्रयोग करना शुभ होता है। इस कमरे में लीपिंग, बार्डर आदि पर सुनहरे रंग का प्रयोग कर उसे सुन्दर बनाया जा सकता है।

पेलमेट, पर्दे तथा फ्लोरिंग उचित रंग का हो, इसमें काले, ग्रे व नीले रंग का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

छत में विभिन्न प्रकार का कार्य जैसे प्लास्टर ऑफ पेरिस का कार्य करवा कर, किनारे पर गोलची (मोल्डिंग) आदि बनवाकर सुसज्जित किया जा सकता है। इसी प्रकार दीवार पर भी कार्य कर, पेन्टिंग आदि से सुन्दरता बढ़ाई जा सकती है।

फर्नीचर पर हल्के रंग या नेचलर पॉलिश करवाना शुभ होता है।

६.७.३ बेडरूम या शयन कक्ष

वास्तुशास्त्र में शयन कक्ष को बहुत महत्व दिया गया है। इसी कक्ष में व्यक्ति दिनभर कार्य करने के उपरान्त ८-१० घन्टे आराम कर तरोताजा होता है। यह कमरा अन्य कमरों की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित व मनोहारी होना चाहिए।

यह कमरा यथा संभव फ्रन्ट में न हो तथा दक्षिण, नैर्ऋत्य या पश्चिम दिशा में हो। यदि यह संभव न हो तो जहाँ भी शयन कक्ष हो उस कमरे की दक्षिण, नैर्ऋत्य या पश्चिम दिशा में पलंग हो।

सोते समय सिरहाना दक्षिण दिशा की ओर हो। इससे समृद्धि आती है, जबकि बच्चे एवं वृद्ध पूर्व दिशा की ओर सिर करके सो सकते हैं। इससे शान्ति मिलती है।

यह शयन कक्ष ब्राह्मण के लिए भल्लाट, मृग पद में, वैश्य के लिए वरुण, असुर, नाग, मुख्य, पर्जन्य व सोम के पद में, क्षत्रियों के लिए गन्धर्व, भृंगराज, अन्तरिक्ष, मृग पद में तथा शूद्रों के लिए वरुण, असुर, नाग, मुख्य, पर्जन्य, सोम पद में होना चाहिए।

(यहाँ प्लाट की फेसिंग के अनुसार बेडरूम का स्थान दिया है, दूसरा किस प्रकार के गुण विकसित करने में किस दिशा या पद में बेडरूम होना चाहिए यह बताया है।)

इसके अतिरिक्त उत्तर, दक्षिण, नैर्ऋत्य व वायव्य दिशा में शयन कक्ष हो सकता है। नवविवाहित युगल के लिए शयन कक्ष उत्तर से वायव्य दिशा के बीच में बनवाना चाहिए। जबकि अन्य व्यक्ति के लिए उत्तर दिशा की दीवार से पलंग टच करना अशुभ होता है।

पुत्र का शयन कक्ष सवित्र व सावित्र के पद में शुभ है। पुत्री का शयन कक्ष रुद्र, रुदजय पद में शुभ कहा है।

शयन कक्ष इस प्रकार व दिशा में बनाया जाए कि उसकी (कक्ष की) प्रायवेसी अफेक्ट न हो।

शयन कक्ष की आन्तरिक सज्जा, रंगों का चयन, पेन्टिंग, सीलिंग, लाईट, पर्दे, बेडशीट, पलंग की डिजाईन, कारपेट, फ्लोरिंग, फर्नीचर की डिजाईन इस प्रकार की हो वह पति-पत्नि के परस्पर प्रेम को बढ़ाती हो।

कमरे का रंग सुन्दर व मनोहारी हो, उस कमरे में दो-तीन चित्र लगे हों जो श्रृंगार रस से पूर्ण हों, उसमें मिथुन इत्यादि के चित्र भी लगाए जा सकते हैं।

शयन कक्ष में रोना नहीं चाहिए, इससे कमरे की ऊर्जा बिगड़ती है।

पलंग के नीचे शल्य आदि होने से बुरे स्वप्न आते हैं।

बीम के नीचे नहीं होना चाहिए।

नग्न होकर नहीं सोना चाहिए।

जूठे मुख नहीं सोना चाहिए।

गीले कपड़े पहनकर नहीं सोना चाहिए।

पलंग से दर्पण सीधा-सीधा न दिखता हो। यदि दिखे तो सोते समय पर्दे से ढक देना चाहिए।

कमरे की लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई आयादि के सूत्र के अनुसार हो या विषम अंगुल या विषम हस्त में होना चाहिए। लम्बाई व चौड़ाई का गुणाकर आठ से भाग देने पर शेषफल यदि सात आए तो अत्यन्त शुभ होता है। सावधानी-लम्बाई व चौड़ाई का मान हस्त या अंगुल में ही लेना चाहिए।

उसमें खिड़की, दरवाजे की चौखट, अलमारी की लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई व गहराई विषम अंगुल में होना चाहिए।

कमरे में रोशनदान होना चाहिए।

चौखट व पल्ले में यथासंभव लोहे का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसके लिए कब्जे, स्क्रू, हेन्डल, स्टापर, चिटखनी इत्यादि ताम्बे की बनी हुई हो।

६.७. रसोई घर

रसोई घर एक महत्वपूर्ण कमरा है, जहाँ भोजन इत्यादि (खान-पान-नाश्ता) बनाया जाता है। पानी व अन्य खाने की वस्तुएँ रखी जाती हैं।

स्थान

यह कमरा ऐसे सुविधाजनक स्थान पर बनवाना चाहिए जहाँ प्रकाश व हवा की उचित व्यवस्था हो।

यह कमरा डाईनिंग हाल से लगा हुआ होना चाहिए तथा ड्राईंग रूम व लिविंग रूम से भी नजदीक होना चाहिए।

दिशा

यह कमरा घर की पूर्वी या उत्तरी दिशा में हो सकता है।

पद

ईश, सवित्र, अन्तरिक्ष, यम, अग्नि, पर्जन्य, वायु, ईशान कोण, सत्य, भृश।

आयादि

कमरे की लम्बाई, चौड़ाई आदि।

इस कक्ष की लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई आयादि के नियमों के अनुसार होना चाहिए। इस कक्ष में ध्वज आय देना शुभ होता है।

विभिन्न इकाई

इस कमरे में आवश्यकतानुसार प्लेटफार्म, सिंक, केबिनेट, क्राकरी यूनिट आदि होना चाहिए।

प्लेटफार्म

यह उत्तरी या पूर्वी दीवार की ओर हो तो शुभ होता है। इससे गृहणी का मुख पूर्व या उत्तर दिशा में होता है, जो कि शुभ है। सावधानी- यह सावधानी रखना चाहिए कि प्लेटफार्म इस प्रकार हो कि गेस का धुँआ गृहणी के शरीर के ऊपर से न जाए (इससे श्वास के साथ धुआँ शरीर में जाने से व्यक्ति बीमार होता है, शरीर का तापमान बढ़ता है।)

प्लेटफार्म की लम्बाई व चौड़ाई विषम अंगुल या हस्त में होना शुभ है।

प्लेटफार्म की ऊँचाई गृहणी की ऊँचाई के अनुपात में होना चाहिए। जब गृहणी की ऊँचाई अधिक हो तो प्लेटफार्म अधिक ऊंचा तथा गृहणी की ऊँचाई कम होने पर प्लेटफार्म की ऊँचाई कम होना चाहिए।

प्लेटफार्म मजबूत पत्थर का बना हो। उस पर धब्बे आदि पड़ने पर आसानी से साफ किया जा सके।

प्लेटफार्म के ऊपर की दीवार को धब्बे से बचाने के लिए उस दीवार पर उचित ऊँचाई (लगभग डेढ से दो फीट तक) टाईल्स (सामान्य रूप से ग्लेज्ड टाईल्स) लगवाना चाहिए। इन टाईल्स पर रसोई घर से संबंधित चित्र अंकित (स्क्रीन प्रिन्ट) हो सकते हैं।

पानी

रसोई में पानी का स्थान रसोई कक्ष के ईशान कोण, पूर्व दिशा या उत्तर दिशा में हो सकता है।

सिंक

प्लेटफार्म के पास में ही सिंक हो। सिंक का उपयोग परिवार की पृष्ठभूमि के अनुसार हो।

फ्लेट में किचन में ही बर्तन माँजने की व्यवस्था करना होती है। अतः बर्तन माँजते समय जूठा पानी, पानी के छींटे प्लेटफार्म पर नहीं आना चाहिए। इसके लिए प्लेटफार्म व सिंक के बीच में खड़ा पत्थर लगवा सकते हैं।

कई स्थान पर जहाँ सुविधा हो तो प्लेटफार्म के पास में ही नीचे जूठे बर्तन धोने का स्थान बना सकते हैं।

यह संभव है कि कई घरों में रसोई घर में जूठे बर्तन न रखते हों, वहाँ रसोई घर के पास ही एक स्थान बर्तन माँजने का होना चाहिए।

आवश्यकता होने पर एक या दो सिंक रसोई घर में हो सकते हैं।

आन्तरिक सज्जा

इस कक्ष में कार्य करते समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता होती है, अतः इस कमरे की आन्तरिक सज्जा इस प्रकार हो कि उसमें कार्य करते समय व्यक्ति सतर्क हो, जागरुक हो, सावधान रहे।

फ्लोरिंग

किचन का फ्लोरिंग फिसलने वाला नहीं होना चाहिए। उस पर धब्बे आदि आसानी से न पड़े। वह साफ करने में सुविधाजनक हो।

रोशनदान

रसोई घर का धुआँ निकलने के लिए रोशनदान हो, यह रोशनदान खुले स्थान में खुलना चाहिए।

रंग

रसोईघर की दीवार पर हल्के रंग का प्रयोग करना चाहिए। रंग का निर्धारण रसोई घर की दिशा के अनुसार से भी कर सकते हैं।

इस कक्ष में काले, नीले या ग्रे रंग का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

फ्रीज

रसोई घर में यदि फ्रीज रखना हो तो अग्नि (बर्नर) से दूर रखना चाहिए। दीवार से कम से कम छह इंच दूर रखना चाहिए। उसके रेडिएयर की गर्म हवा आसानी से बाहर निकल सके।

स्टोरेज

रसोई का सामान, रसोई कक्ष के पास ही रखना चाहिए। यह इस कक्ष की उत्तर दिशा में हो सकता है।

६.७.४ पूजा घर

पूजा का स्थान सामान्य रुप से घर के पूर्वी या उत्तरी भाग में होना शुभ होता है। उत्तर मुख तथा पूर्व मुख वाले घर के लिए ईशान कोण एक आदर्श स्थान है। इसके अतिरिक्त पूजा घर ऐसे स्थान पर हो जहाँ व्यक्ति पूजा, अर्चना, ध्यान आदि शान्तिपूर्वक कर सके। पूजन करते समय पूजा करने वाले का मुख पूर्व दिशा की ओर होना चाहिए। (अलग-अलग प्रकार की साधना में मुख अन्य दिशा में हो सकता है।) पूजन गृह में यथासंभव कम मूर्तियाँ होना चाहिए। सभी मूर्तियाँ चल अवस्था (एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा सके, जिन्हें हिलाना डुलाना संभव हो) में होना चाहिए।

- मूर्ति की अधिकतम ऊँचाई ९ इंच हो सकती है।
- ध्यान के लिए कुश के आसन का प्रयोग करना चाहिए।
- पूजन के वस्त्र अलग हों तो शुभ है।
- पूजन प्रतिदिन एक निश्चित समय पर करना चाहिए, सुबह पूजन करना शुभ है।
- भगवान को प्रतिदिन नैवेद्य (भोग) लगाना चाहिए।
- पूजा के कमरे में नीले, काले, ग्रे रंग का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- पूजन का स्थान या कमरा रात्रि में पल्ले (किवाड़) या पर्दे से ढक देना चाहिए।

६.७.५ जल विचार

- दिशा व प्रभाव
- आकार व प्रभाव
- आय विचार
- जलाशय मुहूर्त

- मासानुसार
- नक्षत्रानुसार
- तिथि अनुसार
- लग्नानुसार

महत्व-वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में जल स्थान का बड़ा महत्व प्रतिपादित किया गया है। उसके स्थान, आकार, मुहूर्त आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

जल स्थान शुभस्थान पर होने पर शुभ प्रभाव उत्पन्न होता है, जबकि अशुभ स्थान पर हो तो अशुभ प्रभाव उत्पन्न होता है।

वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में यह भी बताया है कि जब प्लाट या भवन बहुत बड़ा हो तो जहाँ-जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ-वहाँ जल स्थान बनवाना चाहिए।

शास्त्र में जल के लिए जो शुभ स्थान बताया है वह कोई भी जल स्थान जैसे कुआँ, भूमिगत पानी की टंकी आदि हो सकता है।

दिशा

पूर्व, ईशान या उत्तर दिशा जल स्थान के लिए शुभ है।

पद

ईश, पर्जन्य, जयन्त, महेन्द्र, भूधर, सोम, आप, आपवत्स, वरुण के पद में जल स्थान शुभ है।

सावधानी-बोरिंग कर्ण (प्लाट के डायगोनल) पर नहीं होना चाहिए।

आयादि

जितनी बड़ी पानी की टंकी बनवाना हो, उसकी लम्बाई व चौड़ाई को हस्त से नापकर विषम संख्या में ले। इससे शुभ आय आती है।

दिशा व परिणाम

दिशा	परिणाम
ईशान	पुत्रवृद्धि
पूर्व	पुत्र को कष्ट (सूर्य का पद)
आग्नेय	अग्नि भय
दक्षिण	विनाश
नैर्ऋत्य	स्त्री कलह
पश्चिम	दुष्टता
वायव्य	निर्धनता
उत्तर	धनलाभ

आकार

शुभ- चौकोर आकार शुभ है। गोल व त्रिकोणाकार जलस्थान भी शुभ होता है।

मध्यम-धनुषाकार जलस्थान मध्यम होता है। कलश, पद्म (कमल) के समान आकार वाला जलस्थान मध्यम होता है।

अशुभ आकार- सर्पाकार जलस्थान अशुभ होता है।

मुहूर्त-किसी भी जलस्थान का निर्माण करते समय मुहूर्त का विचार अवश्य करना चाहिए।

मासानुसार- जलाशय निर्माण के लिए वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष तथा फाल्गुन मास शुभ है।

नक्षत्रानुसार-अधोमुख नक्षत्र (मूल, आश्लेषा, मघा, तीनों पूर्वा, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, विशाखा, भरणी व कृतिका) नक्षत्र में जब चन्द्रमा हो तब जलाशय निर्माण प्रारंभ करना चाहिए।

अन्य विचार से शुभ नक्षत्र-रोहिणी, उतराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, पुष्य, अनुराधा, शतभिषा, मघा, धनिष्ठा व श्रवण।

वारानुसार-रविवार, मंगलवार व शनिवार को छोड़कर शेष सभी वार शुभ हैं।

तिथि-रिक्ता तिथि (चतुर्थी, नवमी व चौदस) को छोड़कर अन्य तिथि शुभ है। अमावस्या को जलाशय निर्माण नहीं करना चाहिए।

चन्द्रमा-जलचर राशि (कर्क, वृश्चिक व मीन) में चन्द्रमा हो तो शुभ होता है।

लग्न विचार-केन्द्र (१, ४, ७, १०) स्थान में सौम्य ग्रह (गुरु, शुक्र) शुभ हैं। ३, ६, ११ भाव में क्रूर ग्रह (मंगल, शनि, सूर्य) शुभ फल देते हैं।

गर्भ स्थापना- पानी में चाँदी के बने हुए कछुआ, मगर, सर्प, मछली व केकड़ा डालना चाहिए। इसमें शिलान्यास का विधान भी बताया गया है। इस प्रकार से मुहूर्त के अनुसार उचित स्थान पर विधिविधान से जल स्थान बनवाना चाहिए।

पदार्थ- मिट्टी, ताम्बा, चाँदी, सोने से बने बर्तन में जल रखना शुभ होता है। चाँदी, सोने से बने बर्तन में जल भर कर रखें। बाद में उस जल का छिड़काव घर में करना भी शुभ होता है। इस जल से स्नान करना, पीना आदि भी अत्यन्त शुभ होता है।

६.७.६ अध्ययन कक्ष

अध्ययन कक्ष वह स्थान है जिस स्थान पर बैठकर हम अध्ययन करते हैं। यह स्थान **शान्त** होना चाहिए। यह कमरा नैर्ऋत्य कोण व पश्चिम दिशा के मध्य होना चाहिए। यदि यह संभव न हो तो जिस कमरे में बैठकर अध्ययन करते हों उस कमरे की पश्चिम दिशा में बैठकर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके अध्ययन करना चाहिए। यह कमरा महेन्द्र, भृश, विवस्वान के पद में हो सकता है। इस स्थान पर बैठकर उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुख करके पढ़ना चाहिए।

आयादि

इस कमरे की लम्बाई व चौड़ाई इस प्रकार हो कि लम्बाई में चौड़ाई का गुणाकर आठ से भाग देने पर शेषफल एक आए तो अध्ययन शुभ होता है। (सावधानी-लम्बाई व चौड़ाई हस्त में लेना चाहिए।)

कमरे में हल्के रंग का प्रयोग करना चाहिए। इस कमरे में काले, गहरे नीले रंग का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

गन्ध

इस कमरे में इस प्रकार की गन्ध का प्रयोग कर सकते है जिससे एकाग्रता बढ़ती हो। विशेष प्रकार के पदार्थ का तिलक आदि लगाकर एकाग्रता को बढ़ाया जा सकता है।

आन्तरिक सज्जा

कमरे की आन्तरिक सज्जा इस प्रकार की हो कि वह एकाग्रता को बढ़ाने में सहायक हो। इस कमरे में सरस्वती देवी, गणेश जी, ग्रन्थ आदि की फोटो या चित्र लगाए जा सकते हैं।

जो लक्ष्य निर्धारित किया हो, उसका चित्र भी लगाया जा सकता है।

इस कमरे में यथा संभव मनोरंजन के साधन व चित्र नहीं होना चाहिए।

प्रकाश की व्यवस्था इस प्रकार हो कि पढ़ते समय किताब, कापी इत्यादि पर छाया न पड़े।

६.७.७ शौचालय

आजकल प्रायः सभी घरों में शौचालय बनाए जाते हैं। आधुनिक घरों में शयन कक्ष के साथ शौचालय भी होता है, जिसे अटेच्ड टायलेट के नाम से जानते हैं।

प्राचीन समय में यह स्थान घर से दूर दक्षिण दिशा में होता था।

शौचालय घर की दक्षिण दिशा एवं नैर्ऋत्य कोण के मध्य होना चाहिए। यह यम से वायु के पद के बीच अर्थात् दक्षिण दिशा के मध्य से वायव्य कोण के बीच हो सकता है।

यह स्थान कमरे से इन दिशा या पद में हो सकता है।

किसी भी स्थिति में शौचालय का निर्माण मर्मस्थान, ब्रह्मस्थान एवं अग्नि के पद में नहीं होना चाहिए।

शौचालय हवादार हो, उसमें रोशनदान अवश्य हो। रोशनदान खुले स्थान या साईड़ गली में खुलता हो।

शौचालय का दरवाजा अन्दर से पानी द्वारा खराब न होना वाला (वाटर प्रूफ) हो। उसका निचला भाग या हिस्सा एल्यूमिनियम शीट या प्लास्टिक से ढका हो सकता है। पल्ले के ऊपरी भाग में कांच लगा हो।

टॉयलेट का दरवाजा उपयोग करने के लिए आते-जाते समय के अतिरिक्त बन्द रहे। नल इत्यादि (फ्लश वॉल्व) में लिकेज न हो (अर्थात वे टपकते न हों।)

यह पूर्णतः स्वच्छ हो उसमें किसी भी प्रकार की बदबू इत्यादि न आती हो। नियमित रुप से दुर्गन्ध नाशक (जैसे फिनाइल आदि) का प्रयोग करें।

आवश्यकता हो तो शौचालय के अन्दर सामान रखने के लिए छोटा बॉक्स बनवाया जा सकता है।

६.७.८ सेप्टीक टेंक

वैसे तो शहरों में ड्रेनेज सिस्टम की व्यवस्था होती है या रहती है। फिर भी यदि कहीं यह व्यवस्था न हो तो वहाँ सेप्टीक टेंक बनाए जाते हैं।

सेप्टीक टेंक बिल्ट-अप के नीचे न हों।

यह प्लाट के पश्चिमी भाग में हो।

इसके ऊपर शयन कक्ष, ड्राईंग रुम, रसोईघर, पूजन स्थल इत्यादि न हो।

यह प्लाट के या बिल्ट-अप के मर्म स्थान, ब्रह्मस्थान या अग्नि के पद में बिल्कुल न हो।

यथा संभव यह मुख्य द्वार के पास भी न हो।

६.७.८ चढ़ाव (सीढ़ी)

चढ़ाव- चढ़ाव अर्थात सोपान का प्रयोग एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाने के लिए करते हैं।

यह चढ़ाव उचित स्थान पर होना चाहिए। मानसार ग्रन्थ में कहा है कि चढ़ाव सभी दिशा में तथा सभी कोण में बनवाया जा सकता है।

चढ़ाव उचित स्थान पर हो, भवन के प्रवेश द्वार के बाजू में हो, यह सामने भी हो सकता है, प्रवेश द्वार के नजदीक होना चाहिए।

तल मंजिल पर रहनेवाले व्यक्ति को असुविधा न हो।

सीढियाँ प्रदक्षिण क्रम से (क्लाकवाईज) घूमना चाहिए। ऊपर चढ़ते समय दाहिनी ओर घूमना चाहिए। सीढ़ियों की विषम होना चाहिए। सीढ़ियों की चौड़ाई तीन फीट से अधिक हो तो उत्तम होता है। यह विषम अंगुल में होना चाहिए।

सभी सीढ़ियों की ऊँचाई समान होना चाहिए। यह ७ इंच शुभ है।

सीढ़ी की गहराई लगभग ११ इंच होना चाहिए, सभी सीढ़ी की गहराई समान होना चाहिए।

यदि सीढ़ियों की संख्या १३ से अधिक हो तो बीच में लेन्डिंग (ठहरने के लिए स्थान) होना चाहिए। इस लेन्डिंग पर सीढ़ी (कली) नहीं होना चाहिए।

सोपान (चढ़ाव) पर हवा व प्रकाश की उचित व्यवस्था होना चाहिए।

चढ़ाव की रेलिंग को हाथी की सूँड से सजाया जा सकता है।

चढ़ाव के नीचे टायलेट न हो।

चढ़ाव मर्म स्थान पर न हो।

चढ़ाव के नीचे पूजा स्थान न हो।

६.७.९ बाथरूम

यह घर की पूर्वी दिशा या उत्तर दिशा की ओर होना चाहिए।

शौचालय व स्नानगृह अलग-अलग हो तो अच्छा है।

इसमें प्राकृतिक हवा व प्रकाश उचित मात्रा में आना चाहिए।

यथासंभव पूर्व दिशा की ओर मुख करके स्नान करना चाहिए।

यह स्थान साफ-सुथरा होना चाहिए। इसकी जमीन पर पानी तथा साबुन आदि ढुला हुआ नहीं होना चाहिए।

नानी ट्रेप (पानी निकलने के लिए रास्ता) दरवाजे से विपरीत दिशा में होना चाहिए।

नल इत्यादि लिकेज न करें।

शॉवर का पानी दरवाजे पर न गिरता हो।

दरवाजा या तो वॉटर प्रूफ हो या उसका निचला भाग प्लास्टिक या एल्यूमिनियम की शीट से ढंका हो।

बाथरूम में कपड़े लटकाने के लिए खूँटी होना चाहिए। उसमें बाशबेसिन हो सकता है।

धातु (ताम्बा, चाँदी आदि) के बर्तन में रखे जल से स्नान करना शुभ होता है। यदि इन धातुओं के बर्तन न हो तो इन धातुओं के लोटे से स्नान करना चाहिए। यदि यह भी संभव न हो तो इन धातुओं को पानी में डाला (रखा) जा सकता है।

सूर्योदय से पूर्व स्नान करना अत्यन्त शुभ होता है।

६.८ आन्तरिक सज्जा

आन्तरिक सज्जा-इन्टीरियर डेकोरेशन

जैसा कि हम जानते हैं कि हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रिय होती है इनमें से आँख प्रमुख है तथा आँख से हम आकार एवं रंग देखते हैं। इन्हीं के विभिन्न संयोजन से चित्र बनता है। ये चित्र मानस पटल पर सूक्ष्म रूप से बड़ा ही गहरा प्रभाव डालते हैं। अतः घर या ऑफिस की आन्तरिक सज्जा करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि आन्तरिक सज्जा इस प्रकार की हो वह कार्य में सहायक हो।

आन्तरिक सज्जा का निर्धारण निम्नलिखित आधार पर किया जा सकता है-

- नाट्यगृह
- एक्जीबीशन हॉल
- रेस्ट्रॉ
- हेल्थ क्लब,
- ब्यूटी पार्लर
- स्वीमिंग पूल इत्यादि

- घर
- ऑफिस
- फेक्टरी, मंदिर आदि
- व्यक्ति की आयु
- व्यक्ति का लक्ष्य
- कमरा किस उपयोग में लेते हैं, जैसे ड्राईंग रुम, बेड रुम

यह जो आन्तरिक सज्जा है उसका चित्त पर, मन की अन्तर्तम गहराई पर बड़ा गहरा असर पड़ता है, अतः रंग तथा चित्र की विषयवस्तु का चयन सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

प्रतीक विद्या के अनुसार ये जो रंग होते हैं ये विभिन्न गुण को विकसित करने में या डेवेलप करने में सक्षम होते हैं। हर रंग का अपना एक गुण होता है। जैसे सफेद रंग ज्ञान, कीर्ति, शान्ति व मोक्ष को व्यक्त करता है, प्रकट करता है, प्रदर्शित करता है अर्थात यह रंग इन गुणों को विकसित करने में सहायता करता है।

रंगों के अतिरिक्त भी बहुत सी चीजें है जो अन्य बातों को प्रदर्शित करती है, जैसे दण्ड शासन को व्यक्त करता है तो शुक (तोता) ज्ञान को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार से अनेकानेक बातें जो की चित्र की विषयवस्तु होती है मनुष्य के मन को प्रभावित करती है।

प्रतीक विद्या चित्र व प्रतीक-चित्र की विषयवस्तु मूल रुप से मन पर गहरा असर छोड़ती है जैसे सूखा वृक्ष, बगैर शाखा व पत्ते वाला वृक्ष, बगैर फूल-फल वाला वृक्ष हमें निराशा के अलावा क्या दे सकता है।

भीषण युद्ध के चित्र, हिंसक पशु-पक्षी के चित्र, उनकी मूर्तियाँ आक्रमक योद्धाओं के चित्र, व्यक्तियों पर अत्याचार एवं शोषण करने वाले चित्र हिसंक प्रवृत्तियों को ही बढ़ावा देते हैं। जिन चित्रों में झूला दिखाया गया है वह सामान्य रुप से अस्थिरता को जन्म दे सकता है। अब यहाँ हमें लोक परम्परा को भी ध्यान रखना पड़ता है जैसे गुजराती परिवारों में झूला सामान्यतः घरों में पाया जाता है तो वहाँ यह दोषकारक नहीं होता है।

इसी प्रकार ढाल, तलवार या अन्य अस्त्र-शस्त्र के चिह्न जिनका सामान्य रुप से निषेध किया गया हो, योद्धा के ड्राईंग रुम या युद्ध से सम्बन्धित अन्य स्थल पर शुभ हैं क्योंकि ये ऊर्जा को बढ़ाते हैं।

घरों में सामान्य रुप से हास्य व श्रृंगार रस के अलावा अन्य किसी भी रस का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

घरों में निम्नलिखित चित्र एवं मूर्तियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए-

सभी देवता, दैत्य, ग्रह, तारा, गन्धर्व, पिशाच, पितृ, सिद्ध, विद्याधर, नाग, चारण, भूतसंघ तथा उनकी स्त्रियाँ व पुत्र, अस्त्र-शस्त्र, इसके अलावा दीक्षित, व्रती, पाखंडी, नास्तिक, भूख से व्याकुल, रोगी, बेडियों में बँधा हुआ, आग, तेल, खून, कीचड़, धूल, बुखार आदि से पीड़ित, पागल, जड़, नग्न, नेत्रहीन, बहरा। इसके अलावा झूला-झूलने, हाथी की लड़ाइयाँ, देवताओं के युद्ध, राजाओं की लड़ाइयाँ, प्राणियों का युद्ध, शिकार वर्जित हैं।

रस में ऐसे चित्र जिनमें रौद्र, दीन, अद्‌भुत या करुण व वीभत्स रस हो घर में नहीं लगवाना चाहिए।

घर में हास्य व श्रृंगार को छोड़कर अन्य रस का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त हाथी से चलने वाले वाहन, घोड़े से चलने वाले वाहन, आग से जलते हुए भवन भी नहीं लगवाना चाहिए।

वृक्ष (ऐसे चित्र नहीं लगवाना चाहिए)-

- जिसमें फूल व फल न हों।
- जो सूखा हो।
- जो भग्न हो।
- जो काँटेवाला हो।
- जिस पर भूत आदि का निवास हो।

पक्षी-

गीध, उल्लू, कबूतर, बाज, कौवा, रात्रि में चलने वाले

प्राणी-

जंगल हाथी, घोड़ा, भैंसा, ऊँट, बिल्ली, गधा, बन्दर, सूअर, हिरण, सियार, माँसभक्षी

रोते हुए, चीखते हुए, चिल्लाते हुए ऐसे फोटो शुभ नहीं है।

अब किन चित्रों का या मूर्तियों का प्रयोग करना चाहिए उसका उल्लेख करते हैं। आन्तरिक सज्जा का चयन कमरे के अनुरुप होना चाहिए, जैसे डाईंनिंग रुम में जो चित्र आदि हों वे इस प्रकार के हों कि उसमें खाने-पीने के भोज्य पदार्थ अच्छे सुन्दर सोने चाँदी के बर्तन में हो जो की रत्न जड़ित हों।

शयन कक्ष की आन्तरिक सज्जा श्रृंगार रस से युक्त तथा उसमें रोमांटिक फिलिंग आती हो।

अध्ययन कक्ष (स्टडी रुम) का आन्तरिक सज्जा विचारों में पवित्रता, अध्ययन, मनन, चिंतन के प्रति रुचि तथा श्रद्धा से भरी हुई हो।

इस प्रकार से कक्ष तथा उसकी उपयोगिता तथा व्यक्ति की रुचि के अनुसार आन्तरिक सज्जा का चयन किया जाना चाहिए।

आन्तरिक सज्जा में प्रयुक्त चित्र एवं मूर्ति इस प्रकार है।

चक्र जो कि गति का प्रतीक है, व्यक्ति में गति का संचार करता है अतः जहाँ व्यक्ति में अकर्मण्यता हो, अक्रियाशीलता या आलसीपन अधिक हो वहाँ चक्र का प्रयोग किया जा सकता है।

सामान्यतः **घोड़े** विशेष रूप से दौड़ते हुए महत्वाकांक्षा का प्रतीक है। अतः जहाँ व्यक्ति महत्वाकांक्षी न हो तथा पूर्ण युवा हो वहाँ इस प्रकार के चित्र का प्रयोग किया जा सकता है। इसी में इसी के विपरीत यदि व्यक्ति बहुत अधिक महत्वाकांक्षी हो और उसके कारण जीवन में डिप्रेशन या हताशा का अनुभव करता है और उसकी आन्तरिक सज्जा में यदि घोड़े हो तो हटा देना चाहिए।

कछुआ जिसे संस्कृत में कूर्म कहा गया है उपनिषद एवं आध्यात्मिक विद्या में कछुए का उदाहरण कई बार आया है। कछुआ धीमी गति से चलने वाला तथा लम्बी आयु जीने वाला प्राणी है। कछुआ आवश्यकता होने पर ही अपने अंगों को बाहर निकालता है, चलने, भोजन इत्यादि करने के लिए अन्यथा अपनी खोल या आवरण के भीतर ही अपने अंगों को समेटे रखता है। अतः कछुए का चित्र या मूर्ति देखकर हमें यह तुरन्त स्ट्राइक होना

चाहिए कि हम भी अपनी ज्ञानेन्द्रियाँ आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा एवं हाथ पैर इत्यादि तथा कर्मेन्द्रिय का प्रयोग आवश्यकता होने पर ही करे अन्यथा स्व में आत्मा में स्थित रहे।

घर में निम्न प्रकार से आन्तरिक सज्जा करना चाहिए-

अपने कुल के देवी या देवता जो भी माने जाते हैं।

दरवाजा-

दरवाजे पर प्रतिहारी (द्वारपाल) जो कि सजे हुए (अलंकृत) हों, युवा हों, उन्होंने ने आभूषण आदि पहने हों तथा वे सुन्दर दिखते हों।

निधि-एक ऐसी देवी जो की शंख व कमल से चित्रित हो उनके मुख में से सोने के रत्न निकल रहें हो।

अष्टमंगला गौरी- गौरी का वह रुप जिसमें वे कमल के ऊपर बैठी हुई हैं, उनका शरीर रत्न व वस्त्र से विभूषित है, सजा हुआ है। उनके पास कलश है, उस कलश में फूल, फल व पत्तियाँ हैं। वे अंकुश, छत्र, नारियल, शीशा चामर से युक्त हैं। उन्होंने शंख व मछलियों की माला धारण कर रखी है। इन्हें द्वार पर लगवाना चाहिए।

लक्ष्मी- प्रवेश द्वार के बीच में हाथियों से स्नान कराई जानेवाली, कमल पर बैठी हुई लक्ष्मी को बनवाना चाहिए। लक्ष्मी जी के हाथ में कमल है तथा वे खूब सजी हुई हैं।

ड्राईंग रूमः-

बसन्त ऋतु से संबंधित चित्र, हरे- भरे वृक्ष जिन पर फूल व फल हों,

पानी में मछलियाँ हों।

हंस व सारस हों।

सभी स्थान पर तोते, सरिकाएँ, मोर, मुर्गे शुभ हैं।

कमलिनी के पत्ते बिछे हों, इस प्रकार का चित्रण करना चाहिए।

डाईनिंग हाल- (भोजनकक्ष)-

डाईनिंग हाल में खाने-पीने के पदार्थ सोने व चाँदी के बर्तनों में रखें हों ऐसा चित्रण करना चाहिए।

शयन कक्ष (बेड-रूम)

बेडरूम में विचित्र आभूषण व वस्त्र धारण किए स्त्री व पुरुष, रतिक्रीड़ा में संलग्न नारियाँ।

स्त्रियों के शरीर की कान्ति (आभा) पीलापन लिए हुए हों, वे सुन्दर परन्तु कम आभूषण धारण किए हो, थोड़ी शर्म से हो।

पढ़ाई का कमराः-

इसमें सरस्वती जी का चित्र हो, पुस्तक, वेद आदि शास्त्र के चित्र हो, ज्ञान से संबंधित सामग्री व वस्तुएँ होना शुभ है।

इस प्रकार एक-एक जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, वनस्पति पेड़-पौधे आदि सबका अपना एक सांकेतिक महत्व भी है जो कि मनुष्य के मन पर अपना शुभ या अशुभ प्रभाव छोड़ता है। अतः आन्तरिक सज्जा में इनका चयन व प्रयोग सावधानी पूर्वक करना चाहिए।

६.९ द्वार

वास्तुशास्त्र के सभी ग्रन्थों में द्वार को अत्यधिक महत्व दिया गया है।वास्तुशास्त्र मे मुख्य द्वार के स्थान को अत्यधिक महत्व दिया गया है। मुख्य द्वार प्लाट का हो या बने हुए हिस्से (भवन) का दोनों ही बहुत महत्वपूर्ण हैं। मनुष्य के शरीर में जो महत्व नाक का है, वास्तु में वही महत्व द्वार का है। नाक का स्थान इस प्रकार बना है कि वह फेफड़े आदि अवयव से जुड़ी हुई होकर प्राणवायु का संचार करती है, उसी प्रकार द्वार शुभ स्थान हो तो पूरे भवन में प्राणवायु का संचार करते हैं। जिस प्रकार नासिका के सामने कोई अवरोध नहीं होना चाहिए, उसी प्रकार द्वार के सामने कोई रुकावट नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार नाक में शुद्ध, स्वच्छ वायु ही प्रवेश करना चाहिए, उसी प्रकार द्वार से शुद्ध ऊर्जा ही प्रवेश करना चाहिए, द्वार के सामने कचरा, कीचड़, गन्दगी, जूठा नहीं होना चाहिए।

सबसे पहले समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ के आधार पर द्वार को देखने का प्रयास करते हैं।

६.९.१ पुरद्वार

राजमार्ग, महारथ्या तथा चारों दिशाओं में द्वार का निर्माण करना चाहिए।

महाद्वार	चौड़ाई	·९, ८, ७ हस्त
	ऊँचाई	= २ x चौड़ाई

पक्षद्वार

इच्छानुसार पक्षद्वार का निर्माण करना चाहिए।

द्वार

महेन्द्र, पुष्पदन्त, गृहक्षत

पक्षद्वार - सुग्रीव, जयन्त व मुख्य

कपाट पुट–कपाट

पक्ष, पिधान, वरण, द्वार-संवरण–ये शब्द **कपाट** (a door leaf or a door panel) के **पर्यायवाची** हैं। दो कपाट -सम्पुटों (a side panel or a duplicate panel)or the joining the junctional panel) को **कपाट-युगल** कहते हैं (the (two) are called the pair of door panels.) और द्वार-बन्धन के लिए जो कलिका होती है उसे **अर्गला** कहते हैं।(and a bar meant for enclosing the

६.९ द्वार

वास्तुशास्त्र के सभी ग्रन्थों में द्वार को अत्यधिक महत्व दिया गया है।वास्तुशास्त्र मे मुख्य द्वार के स्थान को अत्यधिक महत्व दिया गया है। मुख्य द्वार प्लाट का हो या बने हुए हिस्से (भवन) का दोनों ही बहुत महत्वपूर्ण हैं। मनुष्य के शरीर में जो महत्व नाक का है, वास्तु में वही महत्व द्वार का है। नाक का स्थान इस प्रकार बना है कि वह फेफड़े आदि अवयव से जुड़ी हुई होकर प्राणवायु का संचार करती है, उसी प्रकार द्वार शुभ स्थान हो तो पूरे भवन में प्राणवायु का संचार करते हैं। जिस प्रकार नासिका के सामने कोई अवरोध नहीं होना चाहिए, उसी प्रकार द्वार के सामने कोई रुकावट नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार नाक में शुद्ध, स्वच्छ वायु ही प्रवेश करना चाहिए, उसी प्रकार द्वार से शुद्ध ऊर्जा ही प्रवेश करना चाहिए, द्वार के सामने कचरा, कीचड़, गन्दगी, जूठा नहीं होना चाहिए।

सबसे पहले समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ के आधार पर द्वार को देखने का प्रयास करते हैं।

६.९.१ पुरद्वार

राजमार्ग, महारथ्या तथा चारों दिशाओं में द्वार का निर्माण करना चाहिए।

महाद्वार	चौड़ाई	९, ८, ७ हस्त
	ऊँचाई	= २ x चौड़ाई

पक्षद्वार

इच्छानुसार पक्षद्वार का निर्माण करना चाहिए।

द्वार

महेन्द्र, पुष्पदन्त, गृहक्षत

पक्षद्वार - सुग्रीव, जयन्त व मुख्य

कपाट पुट–कपाट

पक्ष, पिधान, वरण, द्वार-संवरण–ये शब्द **कपाट** (a door leaf or a door panel) के **पर्यायवाची** हैं। दो कपाट -सम्पुटों (a side panel or a duplicate panel)or the joining the junctional panel) को **कपाट-युगल** कहते हैं (the (two) are called the pair of door panels.) और द्वार-बन्धन के लिए जो **कलिका** होती है उसे **अर्गला** कहते हैं।(and a bar meant for enclosing the

door may be called by the name latch) (द्वार-बंधिनी, सिटकनी) प्रमाण में यदि दीर्घ हो तो उसे **अर्गला-सूची** कहते है (that may be wooden belt (argala suci) और वही सूची पुरों के लिए **परिघ** कहलाती हैं और वही हाथियों के वारण के लिए (in light of the bondage of elephants or chain of elepahants) **फलिह** कहलाती है।

कपाट के पर्याय-पक्ष, पिधान, वरण, द्वार-संवरण

पक्ष-कपाट

पिधान-कपाट

वरण-कपाट

द्वार-संवरण-कपाट

कपाट-युगल-दो कपाट -सम्पुटों को कहते हैं

अर्गलाद्वार-बन्धन के लिए जो **कलिका** होती है उसे कहते हैं।

अर्गला-सूची-प्रमाण में यदि दीर्घ हो तो उसे कहते हैं।

परिघ-वही सूची पुरों के लिए कहलाती हैं

फलिह-वही हाथियों के वारण के लिए

गवाक्ष-गवाक्षों के तुल्य (गाय की आँख्र के बराबर, एक समान) छिद्रों से सब तरफ से छिद्रित फलक (पटिया)

जाल-गवाक्ष-गवाक्षों के तुल्य (गाय की आँख्र के बराबर, एक समान) छिद्रों से सब तरफ से छिद्रित फलक (पटिया)

तोरण-हर्म्य (प्रासाद, महल, या भवन) के द्वार पर, गृह के द्वार पर तथा हर्म्य के अवलोकन (दृष्टि डालना, देखना) पर ओर दूसरे प्राकार (प्राचीर, चहारदीवारी) के पृष्ठ पर जो प्रासादिका होती हैं, उपर्युक्त इनके (द्वारों के) दोनों पार्श्वों पर फलक-द्वय-उच्छित अर्ध-चन्द्र-द्वय की आकृति, ऊपर-ऊपर से जब संक्षिप्त निर्मित होती हैं और आगे के इससे लगे हुए ख्रम्बों के द्वारा इसमें जो दो आनन (मुँह, मुख) निर्मित होते हैं, उन दोनों के ऊपर अथवा सन्धि (junction) में जो तारकाकृति मंडल (star-shaped glaobe) होता हैं, उसे **तोरण** कहते हैं।

महाद्वार (मुख्य द्वार, main gate) से दूसरे द्वार को **पक्ष-द्वार** (side-gate) कहते हैं और पुर (town) में जो प्राकार में आश्रित द्वार है उसको **गोपुर** कहते हैं।

६.९.२ वर्णानुसार शुभ पद तथा द्वार

वर्ण	पद	द्वार	
ब्राह्मण	भल्लाट, धनद या पृथ्वीधर	माहेन्द्र	उत्तम वेश्म
क्षत्रिय	माहेन्द्र, सूर्य, सत्य या आर्यक	गृहक्षत	शुभ-निकेतन
वैश्य	याम्य, वैवस्वत, गान्धर्व या गृहक्षत	पुष्प	शुभ-भवन
शूद्र	वारूण, पौष्पदन्त, मैत्र या आसुर	भल्लाट	उत्तम-सदन

वर्ण	वास्तु	भवन	परिणाम
ब्राह्मण	पूर्व	दक्षिण	धन-धान्य एवं पुत्र-पौत्र की वृद्धि
क्षत्रिय	दक्षिण	पश्चिम	धन-धान्य और पराक्रम वृद्धिदायक
वैश्य	पश्चिम	उत्तर	धन-धान्य, पुत्र व पशु वृद्धिदायक
शूद्र	उत्तर	पूर्व	कर्मवृत्ति धन-धान्य वृद्धि

६.९.३ द्वार के गुण व दोष

जो द्वार सुस्थित (अपने स्थान पर स्थित) हो, चौकोर, सुन्दर, अपने पदार्थ से युक्त हो, अपनी दिशा में सीधा हो, न छोटा न बड़ा हो, न कम, न कुबड़ा, न पिण्डित, न बाहर की ओर निकला हुआ, न अध्मात, न मध्य में पतला, न कुक्षि में गया हुआ, न विद्रुत, न संक्षिप्त ऐसा द्वार ऋद्धि देने वाला होता है।

न पिण्डित (not unrounded)
न अध्मात (neither bloated or inflated)
न विद्रुत (neither eulogated
संक्षिप्त (encroached)

रास्ते, चबूतरे, चौराहे, वापी, कुआँ, कुम्भकों, दीवार, कोण, वृक्ष, स्तम्भ, घरेलू वाहन आदि से विद्ध (चोट खाया हुआ) द्वार शुभ नहीं होता है।

कुम्भक-स्तम्भ का आधार

द्वार में द्वार को प्रविष्ट न करें (no overlapping)। एक दरवाजे में अन्य दरवाजे की पेद्या का प्रवेश कभी न करें। सीढ़ी व खिड़की इनकी पेद्या में द्वार का प्रवेश न करें। बुद्धिमान स्थपति किसी प्रकार भी पक्ष-द्वार की एक पेद्या में तथा दरवाजे के भीतर बाहर कहीं भी प्रवेश न कराएँ। यदि ऐसा किया जाता है तो इससे बड़ा दोष होता है।

प्रवेश द्वार पर यवन (जंगली) के अट्टालक की छाया, नगर के मन्दिर की छाया तथा सूर्य व चन्द्र की किरणें नहीं करना चाहिए (not to be reflected)

सुबह नौ-दस बजे से दोपहर दो-तीन बजे की छाया नहीं आना चाहिए।

अर्थात् मुख्य द्वार पर वह ४५ अंश का कोण बनाए इससे अधिक दूर पर वह वेध स्थित हो, अर्थात वेध की दूरी उसकी (वेध की) ऊँचाई के बराबर से अधिक होना चाहिए।

द्वार-वेध-दोष	**परिणाम**
बहुत उच्च	राजा से भय
नीचा	चोर से भय
टेडा	कुल को पीडा
बाहर निकलने पर	पराभव
आध्मात	अत्यन्त दारिद्रय
मध्य-भाग में कृश	रोग
रथ्या से वेध	रोग
चबूतरे	मरण
श्रृंगाटक	पुत्रियों को वैधव्य
वापी या कूप	अतिसार
कोने	मृत्यु-भय
वृक्षों	रोग-भय
खम्भे	स्वामी का मरण
भ्रम	धन-हानि
पनाले	बडा-दुख, बडा-भय, बडा-कलि

पद	दिशा	देवता पूजन ६३/...
माहेन्द्र	पूर्व	इन्द्र
गृहक्षत	दक्षिण	यम
पुष्पदन्त	पश्चिम	वरुण
भल्लाट	उत्तर	सोम

६.९.४ पद द्वार परिणाम

पद	द्वार परिणाम
अग्नि	अग्निभय
पर्जन्य	स्त्री जन्म
जयन्त	ऐश्वर्य
महेन्द्र	राजा का प्रिय
सूर्य	क्रोध
सत्य	झूठापन
भृश	क्रूरता
अन्तरिक्ष	चोरी
वायु	पुत्र की (अ) प्राप्ति
पूषा	दासता
वितथ	नीचता
गृहक्षत	भोजन, वाहन व पुत्र व सम्पत्ति करने वाला
यम	क्रोध
गन्धर्व	कृतघ्न
भृंगराज	अवंश
मृग	पुत्र तथा बल का नाश करने वाला
पितृ	पुत्र को पीड़ा
दौवारिक	शत्रु की वृद्धि
सुग्रीव	पुत्र व धन की अप्राप्ति
पुष्पदन्त	पुत्र व सम्पत्ति की प्राप्ति
वरुण	सम्पत्ति की प्राप्ति
असुर	क्रूर व्यक्ति से भय
शोष	भय
पापयक्ष्मा	धननाश
वायु	बन्धन
नाग	शत्रु वृद्धि
मुख्य	पुत्र प्राप्ति
भल्लाट	सम्पत्ति आदि की प्राप्ति
सोम	पुत्र व धन की प्राप्ति
चरक	पुत्र से विमुखता
अदिति	स्त्री में दोष
दिति	धन नाश

६.९.५ चार प्रकार का प्रवेश

प्रवेश	परिणाम
उत्संग	सन्तान की हानि, धनधान्य का क्षय, मृत्यु
पूर्णबाहु	पुत्र-पौत्र व धनधान्य का सुख
हीन बाहु	कम मित्र, कम बान्धव, कम धन वाला, स्त्री से जीवत रहने वाला तथा पीड़ित
प्रत्यक्षाय	धनक्षय ३१

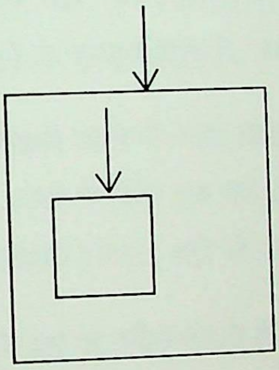
उत्संग

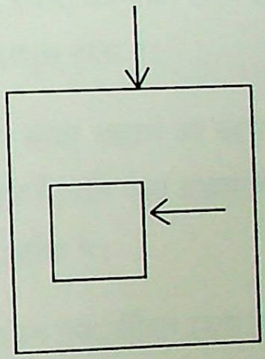
पूर्णबाहु

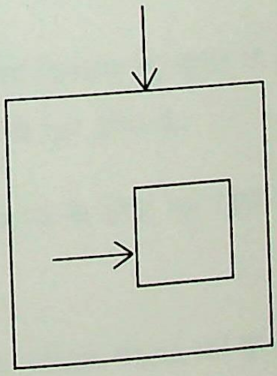
हीन बाहु

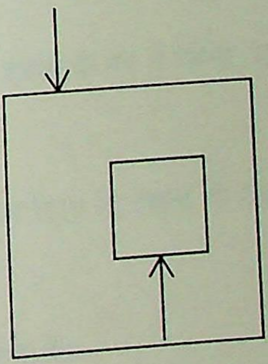
प्रत्यक्षाय

६.९.६ शुभ-अशुभ द्वार

शुभ ध्वनि :-कवाट एक हो या दो, हाथ से खोलते अथवा बंद करते समय होने उत्पन्न ध्वनि महत्वपूर्ण होती है। भेरी के समान शब्द, हाथी, सिंह, वीणा, वेणु (बाँसुरी) के समान आवाज़ होने पर शुभ होता है।

अशुभ ध्वनि:-खखारने, रोने, कूजन आदि के समान आवाज़ होना अशुभ होता है।

ऊपर व नीचे घाटन (opening) समान होना चाहिए। यदि अर्गल (interior bolt) clasp से छोटा हो या अर्गल योग से टकराती हो (रगड़ खाती हो) तो यह भाई की हानि करती है तथा हमेशा शत्रु की पीड़ा व उपद्रव होते हैं।

जो द्वार स्वयं (अपने आप) खुलता हो या बंद हो जाता हो उससे भाइयों व संपदा का नाश तथा विपत्ति का आगमन होता है।

द्वार वेधः- द्वार वृक्ष, कर्ण, स्तंभ, कुआँ, मंदिर, रास्ते, वल्मीक, राख, सिरा, मर्म आदि से विद्ध होने पर विष की नाड़ी के समान होता है, यह अत्यंत अशुभ होता है।

ऐसा द्वार, जिससे आते या जाते समय, हाथी पर सवार ब्राह्मण का वरण (vault) से टकराने पर निधन हो गया हो, राजा के लिए क्षय को देने वाला होता है। यदि ऐसा ब्राह्मण के पैदल आते-जाते समय हुआ हो, तो राजा अवनत (पतन, गद्दी से अलग होना) होता है।

जो राजा बड़े द्वार से प्रवेश करता है, वह चिर काल तक जीवित रहता है, यह अटल है। वह अन्य राज्य पर आधिपत्य करता है तथा कभी (क्षीण) कमज़ोर नहीं होता है।

द्वारस्थान

मध्य द्वार देवता, ब्राह्मण व राजा के लिए शुभ होता है, शेष सभी के लिए द्वार मध्य रेखा के एक ओर होना चाहिए।

(परमशायिक पद विन्यास में) बाहर के बत्तीस देवता के पद में महेन्द्र, राक्षस (गृहक्षत), पुष्पदन्त व भल्लाट इन चार पद में द्वार होता है।

यह द्वार शुभ करने के लिए उसे (द्वार को) उस दिशा के देवता के आश्रित (आधीन) (रक्षित) होना चाहिए।

मान से कम या अधिक चौड़ाई का द्वार रोग देता है।

खोलते व बंद करते समय द्वार, उसी स्थिति (खुली या बंद) में रहना चाहिए।

यदि द्वार में दूर से ही, धोबी के धोने के समान आवाज़ आती हो तो यह दोष कारक है तथा विपत्ति आती है।

जल द्वारः-जयंत, वितथ, सुग्रीव तथा मुख्य

उपद्वारः- पर्जन्य, भृश, पूषा, भृंग, दौवारिक, शोष व अदिति

विश्लेषणः- इस प्रकार से हमने देखा कि वास्तुशास्त्र के सभी ग्रन्थ में द्वार को अत्यधिक महत्व दिया गया है। द्वार चाहे नगर का हो या दुर्ग का, मंदिर का हो या गृह का, उसका शुभ स्थान पर होना अत्यन्त आवश्यक है। द्वार का निर्धारण सामान्य रूप से दो प्रकार से करते हैं-एक भूखण्ड की तुलना में प्रवेश के आधार पर दूसरा पद के आधार पर।

जब हम प्रवेश के आधार पर द्वार का निर्धारण करते हैं तो पूर्णबाहु प्रवेश शुभ कहा है। भूखण्ड में प्रवेश करने के उपरान्त दाहिनी ओर से बने हुए हिस्से में प्रवेश करना शुभ कहा है।

पद के अनुसार पूर्व दिशा में जयन्त व महेन्द्र का पद शुभ कहा है, उसी प्रकार गृहक्षत दक्षिण में, पश्चिम में पुष्पदन्त व वरुण तथा उत्तर दिशा मुख्य, भल्लाट व सोम का पद शुभ है।

द्वार अशुभ स्थान पर होने पर अशुभ परिणाम उत्पन्न होता है।

द्वार के स्थान के पश्चात् द्वार वेध को महत्व दिया गया है। जो भी प्रवेश द्वार है, उस पर किसी भी प्रकार का वेध नहीं होना चाहिए। वेध के प्रकार के अनुसार उसका दुष्परिणाम प्राप्त होता है। और अधिक गहराई में जाने पर हम पाते हैं कि द्वार के उचित प्रकार की लकड़ी, उसका शुभ मान आयादि होना भी आवश्यक है। द्वार में किसी भी प्रकार का दोष (तिरछा, मोटा-पतला, झुका आदि) नहीं होना चाहिए।

शुभ द्वार होने पर नगर-निवासी, गृहस्वामी आदि सभी सुखी होते हैं।

अध्याय ७

उपसंहार

अध्याय ७

उपसंहार

राजा भोज द्वारा विरचित समरांगण-सूत्रधार वास्तुशास्त्र के जगत् में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ऐसा माना जाता है कि राजा भोज ने लगभग ८४ ग्रन्थों की रचना की है। उनके द्वारा रचित सभी ग्रन्थ अपने-अपने क्षेत्रों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। यदि हम यह कहें कि सर्वोच्च स्थान रखते हैं तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके द्वारा रचित सरस्वतीकण्ठाभरणम् व्याकरण के जगत् में मानक ग्रन्थ है। योग सूत्र पर उनकी टीका आज भी उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जाती है। ज्योतिष व आयुर्वेद के ग्रन्थ संदर्भ के रूप सदैव रेखांकित किए जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि राजा भोज बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। उनके ग्रन्थों में भी यह बात देखने में आती है। इसीलिए वास्तुशास्त्र के इस ग्रन्थ में हम सृष्टि की उत्पत्ति, तत्वों का विवेचन, ग्रह-नक्षत्रों की गति, पृथ्वी का मान आदि पाते हैं। इससे हमें यह ज्ञात होता है कि राजा भोज अध्यात्म विद्या के साथ गणित, ज्योतिष आदि में भी निपुण थे। समरांगण-सूत्रधार का वैशिष्ट्य यही है कि यह राजा भोज के सदृश बहुआयामी है, इसमें वास्तुशास्त्र के सभी पक्षों को उद्घाटित किया है।

आधुनिक अभियान्त्रिकी की दृष्टि से जब हम इस ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं तो इसे बहुत ऊँचा स्थान देते हैं। ग्रन्थ का आरम्भ ही सृष्टि की उत्पत्ति से किया है, उसके पश्चात गृह-नक्षत्र तथा उसके पश्चात् भुवन कोश अर्थात् पृथ्वी का वर्णन है। भुवन कोश में बताया है कि पृथ्वी पर कितने द्वीप हैं, किस-किस प्रकार के लोग किस द्वीप में रहते हैं, उनकी आयु व भोजन आदि क्या है। उसके पश्चात भारतवर्ष का वर्णन किया है। इससे हमें ज्ञात होता है कि वास्तु में निर्माण करते समय पूरे ब्रह्माण्ड को ध्यान में रखकर निर्माण किया जाता है। इसी ग्रन्थ में बताया है कि भारतवर्ष धनुषाकार है। जिससे पता चलता है कि उस समय ऐसी कोई तकनीक विकसित थी, जिसके आधार पर भारत के आकार का वर्णन किया है।

इसमें चेतना विज्ञान की बात है, इसमें वर्ण व आश्रम व्यवस्था को स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हुए बताया है कि एक ही प्रकार का वास्तु सभी के लिए उपयुक्त नहीं है। वर्ण के अनुसार,

वास्तु के अनुरुप निर्माण करने के विधान बताएँ हैं। वर्ण के अनुरुप भूखण्ड का आकार, कक्षों का नियोजन, पदार्थ लकड़ी आदि का चयन आदि विस्तार से बताया है।

किसी भी नगर को बसाने से पहले भूमि का चयन किस प्रकार करना, भूमि के प्रकार, उनके गुण-धर्म इस ग्रन्थ की विशेषता है। आगे मातृका संस्थान अध्याय में भूमि के चालीस आकार तथा उनके गुण बताएँ हैं। सांकेतिक रुप से आकार के माध्यम से आकार के गुण बताएँ हैं। नगर नियोजन को भी विस्तार से बताया है। नगर के प्रवेश द्वार उनके मान तथा उसकी बनावट आदि को विस्तार से बताया है। सुरक्षा की दृष्टि से किस प्रवेश द्वार को मजबूत तथा सुरक्षित बनाना इसे बताया है। नगर के मान, नगर के चारों ओर सुरक्षा की दृष्टि से खाई, नगर का परकोटा, वप्र आदि वर्णन किया है।

नगर के अन्दर विभिन्न देवी-देवता के मन्दिर उनका स्थान, उनकी स्थापना की विधि को बताया है। इन्द्रध्वज नामक अध्याय में बताया है कि नगर के राजा को प्रतिवर्ष इन्द्रध्वज का विधान करना चाहिए। ऐसा विधान करने पर राजा सुखी होता है। इससे शत्रु के मन में भय उत्पन्न होता है। इस अवसर पर कोई अपशकुन होने पर राष्ट्र के लिए विपत्ति का निमित्त माना गया है।

आज के समय में हम भारत की दृष्टि से कहें तो गणतन्त्र दिवस पर नई-देहली में जिस परेड का आयोजन किया जाता है, उसे हम बहुत कुछ इन्द्रध्वज विधान से जोड़कर देख सकते हैं। इसमें राष्ट्र की शक्ति का प्रदर्शन किया जाता है। सेना आदि में सम्मिलित आधुनिक अस्त्र-शस्त्र की मारक क्षमता का प्रदर्शन किया जाता है, जिससे शत्रु के मन में भय उत्पन्न होता है।

नगर नियोजन के पश्चात् नगर में बनने वाले विभिन्न गृहों का वर्णन है। इसमें एक शाल से लेकर दस शाला भवनों को विस्तार से बताया है। एक ही दिशा में बने हुए कमरे को एक शाला भवन कहा है। अलिन्द या बरामदे के अनुसार इस एक शाल भवन के सोलह भेद होते हैं। उसके पश्चात दो शाला से दश शाला तक के भवन बताए हैं। कुल तेरह लाख से अधिक प्रकार के घरों का वर्णन समरांगण-सूत्रधार में मिलता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। इन सभी गृहों की संज्ञा भी बताई है। यह संज्ञा भवन के गुण को अभिव्यक्त करती है।

निर्माण में लगने वाले पदार्थ लकड़ी, ईंट, पत्थर आदि को भी विस्तार से बताया है। ईंट के गुण, ईंट को जोड़ने की विधि को विस्तार से समझाया है। चुनाई के बीस गुण तथा बीस दोष बताएँ हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। मसाला किस प्रकार तैयार करना, चुनाई किस प्रकार उठाना,

सामग्री किस प्रकार मिलाना यह बताया है। इसके साथ ही यदि चुनाई में कोई दोष हो तो किस दोष का क्या दुष्परिणाम है यह भी बताया है।

अभियान्त्रिकी दृष्टि से एक दोष का विश्लेषण करते हैं। यह बताया है कि दीवाल यदि संक्षिप्त हो जाए तो राजदण्ड होता है, यदि विस्तृत हो जाए तो गृहस्वामी, गृह का त्याग कर देता है। **विश्लेषण-** जब दीवार संक्षिप्त हो जाए तो इसका तात्पर्य यह होता है कि ईंटों के मध्य में मसाला का प्रयोग आवश्यकता से कम किया गया, जिसके फलस्वरुप दीवार छोटी बनी या कम लम्बाई की बनी। जब दीवार में कम मसाले का प्रयोग किया तो पूरे निर्माण में उचित मात्रा में मसाले या सामग्री आदि का प्रयोग नहीं किया गया, जिसके फलस्वरुप निर्माण कमजोर बनेगा तथा राजदण्ड होने की आशंका रहेगी।

इसी प्रकार जब ईंट की संख्या समान होने पर भी दीवार की लम्बाई बढ़ जाए इसका तात्पर्य है कि मसाले का प्रयोग आवश्यकता से अधिक किया गया। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि पूरे निर्माण में सामग्री का प्रयोग आवश्यकता से अधिक हुआ। जिसे हम फिजूलखर्च भी कह सकते हैं तथा गृह स्वामी यदि इस खर्च को वहन करने में सक्षम नहीं है तो पलायन कर जाता है।

इस प्रकार से समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ में न केवल चुनाई के दोष वरन् वास्तु के अनेकानेक दोष तथा उनके दुष्परिणाम को बताया है। शान्तिकर्म विधि नामक अध्याय में इन दोषों को दूर करने के उपाय भी बताए हैं।

वास्तु परामर्शकर्ताओं के लिए यह एक महत्वपूर्ण व उपयोगी ग्रन्थ रहा है जिसमें वास्तुदोष, दुष्परिणाम तथा शान्ति के उपाय का वर्णन मिलता है।

इस ग्रन्थ की एक और विलक्षणता है, वह है यन्त्रकर्मविधान। इस अध्याय में विभिन्न प्रकार के यन्त्र, उपकरण, विमान आदि का वर्णन किया है। इसमें विभिन्न प्रकार के विमान के बारे में बताया है। यह बताया है कि पंच तत्वों को आधार (फ्यूल, ईंधन) बनाकर उड़ने वाले विमान बनाए जा सकते हैं। दुरुपयोग के भय के संकेत करके विषय को छोड़ दिया गया है। इस संदर्भ में उल्लेख करना आवश्यक है कि भरद्वाज ऋर्षि ने यन्त्र सर्वस्वम् नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमें विभिन्न प्रकार के विमान, ईंधन, ईंधन पुनः ईंधन में परिवर्तित हो जाए इसका उल्लेख किया है। इसी ग्रन्थ का एक हिस्सा बृहत विमान शास्त्र के रूप में प्रकाशित हुआ है। यन्त्र सर्वस्वम् अभी अप्राप्य है। कई विद्वान का मानना है कि यह विदेश में कहीं, किसी पुस्तकालय में है।

प्रतिमा विज्ञान व वास्तुशास्त्र एक-दूसरे से पूर्णतः संबंधित हैं। वास्तुशास्त्र के प्रायः सभी ग्रन्थों में प्रतिमा विज्ञान का वर्णन मिलता है। लेकिन समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ में ऐसी विलक्षणता है कि इसमें प्रतिमा विज्ञान के साथ-साथ पताका आदि ६४ मुद्राओं का भी वर्णन है जो विषय की गहराई को चिह्नित करता है। मुद्रा, किसी भी प्रतिमा की मनःस्थिति की द्योतक है। प्रत्येक मुद्रा, उस समय की मनःस्थिति को प्रदर्शित करती है। इसे शास्त्र में सामुद्रिक विद्या के नाम से जानते हैं। प्रत्येक मुद्रा का भाव उस प्रतिमा के गुण को अभिव्यक्त करता है। यदि इस रहस्य को उद्घाटित करें तो कह सकते हैं कि मुद्रा परिवर्तित करने से भाव परिवर्तित हो जाता है। इसका उपयोग जीवन को सुखी बनाने के लिए किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक रुप से कहें तो व्यक्ति अपनी मुद्रा को परिवर्तित कर सुखी हो सकता है। अधिक स्पष्ट करें तो कह सकते हैं कि हास्य मुद्रा में क्रोध नहीं किया जा सकता है।

मिट्टी की प्रतिमा बनाने हेतु मिट्टी को किस प्रकार तैयार करना, इसका विस्तार से वर्णन भूमि बन्ध नामक अध्याय में किया गया है। चित्रकारी के लिए कूची (ब्रश) आदि बनाना, लेप किस प्रकार करना इसे भी स्पष्ट रुप से बताया है।

मंदिर निर्माण के संदर्भ में मंदिर की विभिन्न प्रकार की शैली, उनके पीठ, अधिष्ठान, स्तम्भ, शिखर आदि को विस्तार से बताया है।

शिखर के भेद से किस प्रकार विभिन्न प्रकार की शैलियाँ बनती हैं या किस शैली में किस प्रकार का शिखर बनवाना चाहिए।

इस ग्रन्थ के अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि इस ग्रन्थ का संबंध पूर्ववर्ती ग्रन्थों से रहा है। समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ के श्लोकों में तथा विश्वकर्म-प्रकाश एवं मत्स्य पुराण के श्लोकों में साम्य देखने को मिलता है। द्वार निर्धारण के विभिन्न पक्ष, मण्डप की संख्या व संज्ञा, मंदिर के लिए गर्भ गृह का मान तथा निर्धारण स्पष्ट रुप से इसे रेखांकित करते हैं।

मयमत

मयमत ग्रन्थ मयमुनि द्वारा रचित वास्तुशास्त्र का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। दक्षिण भारत में इसका विशेष प्रचलन देखने में आता है। जैसा कि हम देख चुके हैं कि इस ग्रन्थ में ३६ अध्याय हैं। इस ग्रन्थ में मान के आधार पर वास्तु को स्पष्ट किया है। यह ग्रन्थ मानसार से साम्य रखता है। इसमें बड़े, मध्यम तथा छोटे ग्राम, नगर आदि के मान का वर्णन किया है। आकार, उपयोग, स्थान, जनसंख्या आदि के आधार पर ग्राम व नगर को बताया है। इस ग्रन्थ में मानसार के समान ही ३२ प्रकार के पदविन्यास का वर्णन है।

नींव में स्थापित किए जाने वाले पदार्थ को उत्तर भारत में शिलान्यास के माध्यम से बताया है। दक्षिण भारतीय ग्रन्थ मानसार, मयमत आदि में इसे गर्भविन्यास नाम दिया है। नगर, ग्राम, गृह, मंदिर आदि सभी में गर्भविन्यास को आवश्यक बताया है।

गृह के संबंध में वर्ण के अनुसार गर्भविन्यास का वर्णन मिलता है तो मंदिर के संदर्भ में देवता के अनुसार गर्भविन्यास का वर्णन किया है। यह रहस्य भी उद्‌घाटित किया है जैसा कार्य करना हो उसके अनुरुप गर्भविन्यास करना चाहिए।

इस ग्रन्थ में उपपीठ व अधिष्ठान के विभिन्न भेद बताए हैं। किसी प्रकार नक्काशी (मोल्डिंग आदि) परिवर्तित कर देने पर उपपीठ व अधिष्ठान के गुण परिवर्तित होते हैं यह बताया है। स्तम्भ के विभिन्न प्रकार, उनकी विशेषता, उसके ऊपरी अंग आदि के मान तथा नक्काशी को विस्तार से बताया है। तुला के विभिन्न अंग तथा लकड़ी को जोड़ने की विधि इस ग्रन्थ की विशेषता है। तकनीकी रुप से पदार्थ (लकड़ी, पत्थर, ईंट आदि) के लिंग का निर्धारण कर उपयोग में लाना, लकड़ी आदि को किस प्रकार एक-दूसरे से जोड़ना, इस ग्रन्थ को विशिष्टता प्रदान करते हैं।

इसमें अभियान्त्रिकी रुप से बताया है कि किस प्रकार एक मंजिल से १६ मंजिल तक के घरों के मान (लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई) का निर्धारण करना।

इसमें यह भी बताया है कि चौड़ाई व ऊँचाई के अनुपात को निर्धारित कर किसी भी निर्माण में शान्ति, पौष्टिकता, अद्‌भूत, जयद तथा सर्वकामिक गुण विकसित किए जा सकते हैं।

देवताओं के परिवार, परकोटा, प्रवेश-द्वार (गोपुर) आदि के मान तथा नियोजन को विस्तार से बताया है।

इस ग्रन्थ में अनुकर्मविधि नामक अध्याय के माध्यम से जीर्णोद्धार विधि का वर्णन किया है। शास्त्र में बताई गई इस विधि का पूर्ण रुप से पालन करने से राष्ट्र में उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याओं से बचा जा सकता है।

प्रतिमा विधान नामक अध्याय में दिक्पाल, विभिन्न देवी-देवता तथा शिव की विभिन्न प्रतिमाओं को बताया गया है।

इस प्रकार से हमने देखा कि समरांगण-सूत्रधार तथा मयमत दोनों ही वास्तु के महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं तथा भौगोलिक स्थिति के आधार पर ग्रन्थ में देवता के नाम (संज्ञा) तथा उनके उपयोग

में सामान्य अन्तर पाया जाता है।

यह तो निर्विवाद रूप से मान्य है कि राजा भोज ने समरांगण-सूत्रधार ग्रन्थ की रचना की। राजा भोज, धार (धारा) नगरी के राजा थे, उन्होंने दसवीं शताब्दी में राज किया। मयमत ग्रन्थ किस स्थान का है। इसको जानने के लिए मयमत ग्रन्थ का छठवाँ अध्याय दिशा-ज्ञान बहुत उपयोगी है। इसमें शंकु-स्थापना के द्वारा सूर्य की सहायता दिशा ज्ञात करने की विधि का वर्णन है। इसमें बताया गया है कि किस माह में शंकु की छाया में (अपच्छाया में) कितने अंगुल का संशोधन करना चाहिए। भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में अक्षान्तर-देशान्तर के अनुसार इस संशोधन में अन्तर है। जिस स्थान पर यह संशोधन पूर्ण रूप से मिलता है, मयमत ग्रन्थ की रचना उस स्थान पर की गई है।

यह विद्या सार्वभौमिक, सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक है। योग, आयुर्वेद के समान स्थापत्यवेद या वास्तुशास्त्र विद्या कालातीत है। हजारों हजार बनाए गए नियम आज भी यथावत लागू होते हैं।

संदर्भसूची

संदर्भसूची

संदर्भ सूची

१ अग्निपुराण गीताप्रेस गोरखपुर

२ अग्निपुराण वेदव्यास प्रणीत अनुवादक-तारणीश झा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग १९९८

३ अपराजित पृच्छा-भुवनदेवाचार्य टीका डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू परिमल पब्लिकेशन्स् दिल्ली २०११

४ भारतीय वास्तुशास्त्र डॉ. रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर १९९५

५ काश्यपशिल्प- काश्यप मुनि, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना १९२६

६ ईशान गुरुदेवपद्धति ईशानशिवगुरुदेव संपादक-टी गणपति शास्त्री त्रिवेन्द्रम १९२०-२५

७ नारदपुराण संपादक हनुमानप्रसाद पोद्दार गीताप्रेस गोरखपुर १९५४

८ मत्स्यपुराण-वेदव्यास प्रणीत अनुवादक-मोतीलाल जालान गीताप्रेस गोरखपुर १९८५

९ मत्स्यपुराण गीताप्रेस गोरखपुर

१० मयमत संपादक-टी गणपति शास्त्री त्रिवेन्द्रम १९१९

११ विश्वकर्म प्रकाश-मिहिरचन्द्र, खेमराज कृष्णदास, मुम्बई, संस्करण १९९८

१२ विश्वकर्म प्रकाश शिवप्रसाद वर्मा स्थापत्यवेद शिक्षण एवं शोध संस्थान, इन्दौर २००६

१३ मानसार भाग-१ से भाग-७ टीका पी के आचार्य डी. के. पब्लिशर देहली २०००

१४ मयमत टीका ब्रूनो ड्रेगनस् मोतीलाल बनारसीदास १९९३

१५ बृहत्संहिता अच्युतानन्द झा चौखम्बा प्रकाशन, बनारस, संस्करण १९९७

१६ मनुष्यालय चन्द्रिका ए के अच्युथान वास्तुविद्या प्रतिष्ठानम् कालीकट २०००

17 Samrangan sutradhara of Bhojdeva Translation by Sudarshan kumar sharma parimal publications delhi 2007

१८ Residential Architecture in Bhoja's Samrangan sutradhara commentry by Felix Otter Motilal Banarsidas Publishers delhi 2010

१९ समरांगण-सूत्रधार धाराधिपभोजराजप्रणीत संपादक-टी गणपति शास्त्री बडौदा ऑरियण्टल इन्स्टीट्यूट बडौदा १९२४

२० समरांगण-सूत्रधार भवन निवेश डॉ. द्विजनाथ शुक्ला मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली १९९४

२१ समरांगण सूत्रधार डॉ. द्विजनाथ शुक्ल मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली १९९६

२२ समरांगण सूत्रधार डॉ. द्विजनाथ शुक्ल मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली १९९५

२३ भविष्यपुराण गीताप्रेस गोरखपुर

२४ राजवल्लभ बडौदा १९९१

२५ दीपार्णव सोमपुरा पालीताना १९६०

२६ प्रासाद-मंडन डॉ. रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी मुंशीराम मनोहरलाल देहली २००५

२७ प्रासाद-मंडन टीका भगवानदास जैन सांगानेर जयपुर १९९७

२८ वास्तुविद्या टीका श्रीकृष्णजुगनू चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिज वाराणसी २००९

२९ वास्तुमंजरी टीका श्रीकृष्णजुगनू चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिज वाराणसी २००९

३० शिल्पशास्त्र टीका श्रीकृष्णजुगनू चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिज वाराणसी २००९
३१ शिल्पदीपक टीका श्रीकृष्णजुगनू चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिज वाराणसी २००९
३२ प्रासाद-मंडन टीका श्रीकृष्णजुगनू परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली २००५

शब्दकोश

शब्दकोश

अट्टालिकाओं-उत्तुंग महल, ऊँचे भवन ३१/२३	अट्टालक-अटारी १४/३
अटारी- watch tower १/२३	अट्ट-बहुत ऊँचा ४५/२२
अट्टालक-क्षौमों ५३/२२	अट्टालक- watch towers, अटारी, छत के ऊपर बना कमरा १/१५
अट्टालक-निवेश ,watch-tower 3/45	अट्टालत-जो संक्षिप्त होता है४५/२२
अट्टाली- अटारी, चौबारा ४६/२२	अट्टालिकाओं- छत पर बना छोटा कमरा या कोठरी २१/४३
अट्टालिका-watch tower ३१/२३	अपवरक-छोटे-छोटे चतुष्कुडयों २४/२२
अपर- बाद में, पश्चात् ३४/४२	अपौष्टिकता- अस्वस्थ, रोग ७२/२३
अभंगुर- न टूटने वाला, स्थिर ३१/१०	अमरपुरी- देवताओं के रहने के स्थान४/३
अमेध्य -जो यज्ञ के योग्य न हो, अपवित्र४२/२२	अमात्य- मंत्री, राजा के सहचर ४९/४२
अवश्यम्भावी- होने की आशंका हैं। ७/४३	अवलोकन- दृष्टि डालना, देखना ३७/२२
अवलोकनक-छोटा वातायन होता है १४/२२	अवलोकन-दीवालों के वातायन
अवरोध- रूकावट ४४/२३	अवस्कर- विष्ठा, मल ४२/२२
अवस्था- आयु ९/१६	अवस्थान्तर- बदली हुई दशा २५/२२
अशास्त्रज्ञ- मूर्ख, अकर्मज्ञ, क्रिया-कौशल-विहिन ८/४५	अशून्य- भरा-पूरा ९/४३
अलंकार- गहने-आभूषण १२६/२३	अलाभ- non-availability 14/12
अश्वत्थ- पीपल २०/१६	अश्व- घोड़ा
अश्व-वैद्यों, घोड़ा-डाक्टरों ७/२१	अश्व-शालाओं में जहाँ घोड़े रखने का स्थान २१/४३
अभिप्रशमन-शान्ति, शान्त करने के लिए१८/१३	अभिमुख- सामने की और मुख करके
अभिषेक- राजतिलक, राजप्रतिष्ठा ३५/१५	अभिषेचन -नहाने, अभिषेक करने ४१/१५
अभिगुप्ति-वर्षा के भय से जो ताल और शाक के पत्तों से छायी जाती हैं १३/२२	अभिधान- कहना, बोलना, नाम रखना, संकेत करना ५२/१२
अलिन्द-शाला के अग्र भाग में जो वलभी होती है २३/२२	अलिन्द -balcony or verandah १९/२८
अलिन्द-बरामदा ४०/३	अरिष्ट गृह- सूतिका गृह-बच्चे को जन्म देने के उपरान्त जच्चा, प्रसूता, माता के रहने का स्थान।
अरिष्टार- प्रसव-गृह, सूतिका गृह-वह स्त्री जिसका हाल ही में बच्चा हुआ हो उसके रहने के लिए कक्ष २८/१५	अरिष्ट-छाछ, मादक मदिरा ४/४२
अतिक्रमण- आधिक्य, दोष	अधिवासनम्-देवता की प्राणप्रतिष्ठा ३९/३
अधिष्ठित-स्थित, विद्यमान, those occupied by others १२/१६	अनिमित्त- अशकुन ५४/२१
अष्ठीला- पत्थर का औजार २८/२१	अंश- भाग ५०/२८
अदिति- लक्ष्मी ह२५/१४	अण्डक- आकार, आकृति

अण्डकोण- testicles or scrotum	अक्षत- चावल ८/४६
अक्षत- जो टूटा न हो, सम्पूर्ण ३१/१०	अक्षतों- चावल ४१/४२
अतुलनीय- बेजोड़ १८/१४	अर्चित- पूजित, आदर किया हुआ ५९/१२
अर्थ- धन	अर्थप्रद- धन प्रदान करने वाला
अर्थलाभ- धन लाभ	अगम्य- जिसमें प्रवेश न कर सके ३३/२३
अर्गला- अगड़ी, किल्ली- यह दरवाजे को बन्द करके रोकने के लिए लकड़ी का बना यन्त्र होता हैं। ३८/२३	अर्गला- यह दरवाजे को बन्द करके रोकने लिए लकड़ी के बने यन्त्र हैं। ३१/१३
अर्गला- कुंड़ी ३२/४३	अर्गला- स्टॉपर २३/४३
अर्गला-सूची-प्रमाण में यदि दीर्घ हो तो उसे कहते है और ३३/२२	अर्गलाद्वार-बन्धन के लिए जो कलिका होती है उसे कहते हैं। ३३/२२
अगाध- बहुत अधिक ३९/१०	अग्र- आगे ५५/१३
अग्र-front ४५/१३	अग्र भाग- आगे का भाग १९/४२
अग्र-भाग- आगे का भाग ४१/२८	अर्घ्य- किसी देवता या सम्मान्य व्यक्ति को सादर आहुति या उपहार २०/१३
अधमों- lowly beings 33/12	अर्ध-निर्मित- आधा बना हुआ १/४६
अर्धचन्द्रों- आधा चन्द्र या वृत्त ३७/२८	अजा- बकरी
अर्जुन- ककुभ, नदीसर्ज, इन्द्रद्रु, वीरवृक्ष, वीर, धवल, कौह, कोह १७/१६	अकुब्ज- जिसका कुबड़ ना निकला हो १६/४६
अचिन्त्य- जो चिन्तन से समझा न जा सके १३/१४	अनपत्यता- सन्तानहीनता ५६/२३
अनायुष्य- अल्पायु, कम आयु ७२/२३	अनिष्टकारक- अमंगलसूचक, दुर्भाग्यपूर्ण २०/१६
अनुपूर्वों- जाईस्ट ३१/४३	अनुवंश- वंशतालिका, curved lines) 20/13
अनुक्रम- क्रम ३२/३	अनुचरी- अनुयायी, सेवक ३०/१४
अन्तःपुर-स्त्रियों के रहने का स्थान २४/३	आठ अंगुल को तूणि,४२/११
आपवत्स- उमा २६/१४	अभिचार- मंत्रादि द्वारा ७०/२३
आवास-रहने का स्थान	आवृत्त- ढकी २७/१०
आश्रमाजिर-आश्रम के आँगन २९/२२	आलेख कर- खींचकर, लिखकर ३४/४२
आविर्भूत- प्रकाशित, उत्पन्न ५०/२१	आश्रित- टिके हुए ५४/१३
आदिष्ट- कहा गया ३०/४३	आहरण- लाना ४९/१६
आर्यमा- आदित्य २७/१४	आयाम- चौड़ाई १४/४५
आयास- अति यत्न, परिश्रम ६/४३	आयुध- अस्त्र-शस्त्र ३६/११
आयुध-अस्त्र-शस्त्र रखने का स्थान	आयुध-गृह -अस्त्र-शस्त्र गृह ३१/१५
आँख झपकने के समय को निमेष कहते हैं।	आक्रीड़ भूमि-विहार-भूमि को ५६/२२
आसव- शराब ४६/१०	आसव-अर्क, काढ़ा, मद्यनिष्कर्ष २६/१६
आसन- पीठ ४२/३	आस्थालक-ईटों से जड़े द्वार के मूल भाग में छोटा अथवा बढा जो स्थल ४२/२२
आस्थान- नींव, आधार	आच्छादित- ढके हुए ५२/२३
आद्य- प्रथम, प्रमुख २५/२८	आनत- अधोमुख, मुख नीचा किये हुए ६०/२१

आनन- मुँह, मुख ३७/२२	इष्ट- अभिलषित, वांछित ३६/२८
इष्टकाओं- घर की नींव रखना ९/४७	इक्कीस अंगुल को रत्नि,४४/११
इन्द्र की माता तथा कुमारी-five or seven smaller flag staffs placed near the largest one sakramata or janitri 32/13	इन्द्रकील-cross beams or bolts २३/१३
इन्द्रकील- खूटीं या ब्रेकेट जो दीवार के साथ लगा हो ३८/२३	इन्द्रकील मूल- क्रॉस-बीम ३४/४३
इन्द्रस्थान- the place of indra's banner ४८/१३	इन्द्रध्वजनिरूपणं अध्याय-३
इन्द्रध्वज-यह एक प्रकार का ध्वज है, जिसे बनाकर विशेष मन्त्रों से अभिमंत्रित किया जाता है। १८/३	८१ पद- एकाशीति-पदवास्तु २८/४५
ईहा-मृग-खम्भों में यदि मृग होते हो तो उन्हें ईहा-मृग कहते हैं। ३६/२२	उपवन- garden 6/16
उपशोभित- सजाना, अलंकृत करना १२/४७	उपलक्षणा- देखना, दृष्टि डालना ४९/२१
उपकार्या-प्राकार में निकले हुए और उठे हुए अवकाशों	उपतुला may be some smaller beam or shelf 45/3
उपस्थानक-गृह में महाजन-स्थान, जो त्रिकुड्य बनाया जाता है, उसको यहाँ पर उपस्थान कहाँ जाता हैं और छोटे उपस्थान को २१/२२	उपघात- चोट ३०/४२
उपघात- चोट, प्रहार ३०/४२	उपधान-ऊपर रखना, आराम करना, तकिया, गद्देदार आसन, धार्मिक अनुष्ठान४२/३
उपधी-enclosure, a part of the wheel between nave and the circumference on the wheel 49/42	उमापति- भगवान शंकर १२४/२३
उलोक-हर्म्य के बीच में छेद १५/२२	उत्पल- water lily ४६/१६
उत्पात- अनहोनी २४/४२	उत्कालक- upper block or crchitrave eprstyle or the main beam resting on the abacus on capital of column २४/२८
उत्कृष्ट- श्रेष्ठ, उत्तम, प्रमुख १४/४३	उत्कृष्टतर- उत्तम १६/४६
उत्थित- उत्पन्न ८/४६	उत्सुका- may be elevations: dove cots: sheds
उपद्रव- उत्पात, अत्याचार, आपत्ति ४६/४३	उत्तराम्बर- supporting architrave and the opposite covering 68/42
उत्तरोत्तर- आगे और आगे दिनोदिन उन्नति होती हैं। १७/४३	उदुम्बर- घर की देहली या ड्योढ़ी
उदुम्बर- sill 10/28	उदर- पेट ६५/१०
उदक-भ्रम-जल-निर्गमन-स्थान, जल बाहर निकलने का मार्ग या बहने का मार्ग	उद्घृष्ट- scratched 14/16
उद्यान- बगीचे ४२/१०	उन्मान-ऊँचाई, मोटाई व गहराई के लिए उन्मान शब्द का प्रयोग करते हैं। २७/३
उन्मुख- ऊपर देखते हुए ७७/२१	ऊपर व नीच- upper side and the lower side

ऊपर चढने के मार्ग को सोपान ११/२२	ऊरु- जाँघ, thighs 32/14
ऊसर- बंजर ५४/१०	ऊर्ध्ववंश- वरटीकल राफ्टर २२/४३
औषधियों- medicinal herbs 35/42	औकःक्षत- गृहक्षत ७/१४
अन्न व पान- food and drink 10/42	एक अंगुल को मात्रा कहते हैं।४०/११
एक ही शाखा वाले वृक्ष (endowed with one branch) 11/16	एक ही दिशा में बने हुए घर को एक शाला ५०/३
एक हजार धनुष का एक क्रोश होता है।	एक सौ छह अंगुल का दण्ड होता है।४६/११
एक नाड़ीगत- धमनी या शिरा की भांति नलियां ४७/२२	एकशाल-एक पार्श्व से छत्र १९/२२
एकार्णवी- एक मात्र समुद्र ही था ४/३	ऐन्द्री- पूर्व ५८/२१
कटु- कड़वी ४९/१०	कपाट- किवाड़ का फलक ३०/२२
कपाट- दरवाजे का पल्ला ३२/४३	कपाट पुट--कपाट ३०/२२
कपाट के पर्याय-पक्ष, पिधान, वरण, द्वार-संवरण ३३/२२	कपाट-युगल-दो कपाट -सम्पुटों ३३/२२
कपाटाश्रय-उत्तर उदुम्बर के नीचे के आँगन के कुड्यों के बीच के संश्लिष्ट भाग	कपाल- खोपड़ी ५३/१०
कपिल- भूरे रंग का ४५/१६	कपोत- कबूतर २०/४६
कपोत- कबूतर ४५/१६	कपोतपाली- कबूतरों की छतरी २६/४२
कपोतालि- an array of pigeions or dov cot, of an aviary or frienze or cournice	कपोतालियों अर्थात् कबूतर के अड्डों ४४/३
कण्टक- काँटे २६/२८	कण्ठ- गला, गर्दन ४२/३
कर्ण- त्रिभुज के समकोण के सामने की रेखा ५/२३	कर्णद्रव्य- flanks 19/13
कक्षों- कमरों २६/३	कक्षा-घर में जो अवस्थान्तर गृह होता है २५/२२
कपोताधम- कबूतर २४/४६	कर्म-हस्त i.e. practical cubits
कर्मकाण्ड करने वाला व्यक्ति ब्राह्मण २८/३	कर्मस्थान- कारखाने ४३/१३
कर्वट-शाखा नगर ३/२२	कवाट- फाटक ३८/२३
कल्हार- एक प्रकार का पौधा, कमल ४५/१०	कलाकारों- शिल्पियों ९८/२३
कलकल ध्वनि- sweet and indistinct notes ४५/१३	कर, हस्त-चौबीस अंगुल का एक कर हस्त होता है।५/११
कर हस्त चौबीस अंगुल को अरत्नि कहते हैं।	कपिशीर्ष-बन्दर के सिर के समान ३०/२३
कलि- झगड़ा, लड़ाई २१/१२	कन्या- small staff
कषाय- हरड़ के समान स्वाद ४९/१०	काल- समय को ९/३
काष्ठ-प्रणाली- wooden-tube कहलाती हैं।४७/२२	काष्ठ-प्रणाली-एक नाड़ीगत-छिद्रों वाले काष्ठ-नालों से परिश्रित छद पृष्ठ पर जहाँ जल धावन करता ह४७/२२
	काष्ठ-नालों- wooden pipes ४७/२२
काष्ठ-विटंक-लकड़ियों से संवृत गेह को	काकोल- ravens, snakes boars, potters १२/४२
काया- शरीर १४/१३	
काण्डवारिणी- छालदिवारी ३०/२३	कार्तिकेय- राजयक्ष्मा

कान्ति-विहीन- सूनापन ८/४३	कान्ता- सुखकर, मनोहर, सुन्दर ५०/२८
क्रीड़ागार-यहां पर जो क्रीड़ागृह कहा गया	कुंडों-bowl-shaped.vessels or holes in grounds meant for receiving and preserving water, a pool, a basin, a well especially connected with a deity or holy purpose or bowl of a mendicant)29/12
कुंजर- हाथी, tusker	कुञ्ज- लताओं तथा पौधों से आच्छादित स्थान १४/१०
कुटुम्बी- गृह-स्वामी ३९/१६	कुटुम्बिनी- गृहिणी ५२/४२
कुम्भक- घड़ा, जलपात्र	कुम्भकारों- potters, धोबियों- washer men 34/11
कुमार- बालक ५६/२८	कुमारियों- smaller staffs ५८/१३
कुरुन्द- नारंगी का वृक्ष व फल ४१/१०	कुशासन- घास बिछे हुए आसन पर २८/२१
कुबेर- सोम	कुब्जों- कुबड़ो
कुल- परिवार ६४/१०	कीलकों- अर्थात् खूँटियों १/२१
कुश, वल्कल- वृक्ष की छाल ४१/१०	कुट्टिम- अर्थात् मोजेंक फर्श वाला mosaic tile बनाते हैं। १२/२२
कुष्ठ- extraction or draw out...25/13	कुष्ठ्य- or kupya २७/१३
कुडच- दीवार २६/२२	कुडच-कंठ२६/२२
कुक्कुट- मुर्गा, जंगली मुर्गा	कुलिंग- पक्षी, चिड़िया १५/४२
कुम्भिका- sanctum sanctorum 24/28	कुत्ते- श्वान, dog
कृकलास- गिरगिट, chameleons ४९/१६	कूट- सिरा, किनारा, कंगूरा २६/४२
कूर्म- विष्णु का कूर्मावतार	कूष्माण्ड- कुम्हड़ा
कोषागार-धन रखने का स्थान	कूर्जक- कूँची बन जाने पर६०/२१
कूजन -कूजना, कूकू की ध्वनि करना ४२/१५	केवट- मल्लाह ९१/२३
कोटि- उच्चतम बिन्दु, tips 27/13	कोकिलों- कोयल १२/४२
कोहनी- elbow ७/१४	कोष्ठ- आभ्यन्तर कक्ष ४१/२३
कोष्ठागार- store house of grains.31/12	कोष्ठागार- धान्य-गृह ३१/१५
कोष्ठागार-आयुध, magazine २२/१५	कोष्ठक -जो उपस्थानक होता है और जो अपवरक२६/२२
क्रोड- सुअर	कंठ- गला ४२/२२
कंठ- गला, a neck shaped support 44/28	क्षति- हानि ३४/४३
खर्वट- पहाड़ की तराई का गाँव ७५/१०	खर- donkey
खर- गधा	खादिर, कत्था-खैर, रक्तसार, गायत्री, दंतधावन, कण्टकी, बालपत्र, बहुशल्य, यज्ञिय acacia catechu १७/१६
	खेट- छोटा नगर, पुरखा ७९/२३
खेट- गाँव, छोटा नगर ५/१३	खाई- moat 1/23
खंड-खंड- टुकड़े-टुकड़े २९/४६	खोदकर- उखाड़कर ७/४२
खोखले- hollows 25/16	खात- खाई, परिखा ३३/११
खात- खाई, परीखा १७/२३	ग्यारह अंगुल का गोकर्ण,४३/११
खदिर- खैर १८/१०	गर्भ गृह -वह यदि संच्छन्न हो तो उसे गर्भ
गठान- knots 25/16	

गव्यूत- माप की इकाई, दो हजार धनुष के बराबर ३३/११

गजपृष्ठ- हाथी की पीठ के समान १९/२३

गजशाला–elephant mews or stud 31/12

गन्ध व माला- perfumes and wreaths 20/13

गवाक्ष- वेन्टीलेटर ३९/४३

गवाक्ष- झरोखा, रोशनदान ४८/१५

गवाक्ष-गवाक्षों के तुल्य गाय की आँख के बराबर, एक समान छिद्रों से सब तरफ से छिद्रित फलक ,पटिया ३३/२२

गेह- घर, आवास

गोपुर- गढ़ या नगर का फाटक, गेट १०/१५

गोपुर -पुर में जो प्राकार में आश्रित द्वार है ५२/२२

गोष्ठ-गोओं के मन्दिर ५८/२२

गोधा- घड़ियाल, मगरमच्छ ४५/१६

गंडकी- मादा गैंड़ा

गीध- गिद्ध २०/४२

गृह- घर १/४३

गृह-गोधा- a small house lizard 45/16

गृहस्वामिनी- गृहिणी २६/४२

ग्राह्य- ग्रहण १५/१२

घटिका- कुम्भ,२९/२८

घण्टापथ- गाँव की मुख्य सड़क, राजमार्ग, मुख्य मार्ग १४/२३

घृतमण्ड गोधेर- an iguana 46/16

चर्म- चमड़े २१/१५

चरक- व्यवसाय

चय -किसी भवन की नींव की मिट्टी का टीला-प्राकार-शाला, चुनाई किया गया प्राकार ५४/२२

चापाकृति- धनुषाकार ५४/२३

चार वर्ण- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र ३५/३

चार गव्यूत का एक योजन होता है। ४९/११

चौकोर- square ५१/२८

गृह कहा जाता हैं। २०/२२

गज- हाथी

गजवाली- a tusker

गज-शुण्ड, हाथी की सूंड ३९/४३

गन्धों व धूप- by perfumes and wreaths 26/16

गवाक्ष- ventilators, रोशनदान, झरोखा, ४४/३

गवाक्ष-मूषाओं, गवाक्ष, झरोखा ४४/३

गिरि- पर्वत ३७/१०

गोपान- छज्जे २८/४२

गोपुर- नगर आदि का मुख्य प्रवेश द्वार १४/३

गोष्ठक-छोटे गोष्ठ ४/२२

गोष्ठ-गोकुलों के निवास ४/२२

गौवों -गायों १९/२३

गुल्फ- ankles, टखना

गङ्गा-सविता २७/१४

गृहोंमकरणों- luggage's of the house

गृह-देवता- वास्तुदेवता १४८/२३

ग्रसा- निगला २२/१४

घटपल्लव स्तम्भ- pedestal sprouted one or pot sprouted one 31/28

घर्षण- टकराना, रगड़ ८/४२

घृत–ghee 35/16

घूमने वाली पीठ- भ्रम पीठ, revolving fulcrum 26/13

चरुओं- उबले चावल ७२/२१

चरिका-आकाशपथ ३२/२३

चय-भित्ति को २६/२२

चामर- चंवर डुलाने वाले राजा के सेवक, पंखे की भांति ३६/१५

चार अंगुल को मुष्टि कहते हैं। ४१/११

चारों दिशाओं में बने हुए घर को चतुश्शाला भवन कहते हैं। ५०/३

चौदह अंगुल को पाद कहते हैं।४३/११

चैत्य- यज्ञ मण्डप, पूजा का स्थान ६/१६

चक्र- a quoit ३८/१६

चतुर्मुखी- चार मुख वाला १२/४७

चतुश्शाल-चारों पार्श्वों से छन्न, ढका हुआ अर्थात् जिस घर के आँगन के चारों ओर शालाएँ हों १८/२२

चतुरश्रा- चौकोर २/४७

चत्र व प्रतिसर- कलाई या गरदन से पहनने वाला ताबीज,पुष्पमालायाहार ४४/१३

चन्द्ररेखाओं-canopies or awnings 54/28

चिर समय- सबसे अधिक समय ७४/१०

छेदन व भेदन- cutting and chiselling or carving or engrafting 2/16

छः अंगुल को कर-पाद कहते हैं।४१/११

छोटी पल्ली को पल्लिका कहते है । ६/२२

छाद्य- छत, छप्पर १४/४७

छाद्य-छत

छत्र- छत्र अर्थात छाता पकड़ कर चलने वाला ३७/१५

छिन्नकर्ण- जिसके कर्ण ,digonal कटे हो

ज्वार- बुखार २३/१४

जल के तट, किनारे पर स्थित उद्यान को जलोद्यान–water-garden or swimming pool कहते हैं। ५५/२२

जलवेश्म-जल के बीच में स्थित वेश्म ५६/२२

जहाँ पर पत्तों, शाखाओं, तृणों एवं उपलों से कुटिया बनाकर पुलिन्द लोग रहते हैं, उसको पल्ली कहते हैं ६/२२

जयन्तियों- बीम or banners 42/28

जंघापथ-the routes meant for quick movement or ready approach 12/23

जयन्ती-स्ताम्भ के प्रसंग में जयन्तिका स्तम्भ के ऊपर रखीजाने वाली शहतीर बीम है ४३/३

जाल-गवाक्ष-गवाक्षों के तुल्य गाय की आँख के बराबर, एक समान छिद्रों से सब तरफ से

चैत्य- यज्ञ-मण्डप, देवालय, वह स्थान पर जहां देवमूर्ति प्रतिस्थापित रहती हैं।, अर्चा, पूजा, आराधना, वह प्रतिमा या मूर्ति जिसकी अर्चना की जाय ५७/२२

चत्वरों- चौराहों ८/४६

चतुरुत्तरशीत्या- ८२?८४ अंगुल को व्याम कहते हैं४६/११

चतुरश्र- square shaped ५८/३

चतुर्विध- चार प्रकार का २०/४६

चन्द्रमा- भल्लाट २५/१४

चाप -छियानवें अंगुल का चाप, धनुष ???? नाड़ी-युग होता है।४६/११

चित्र में व लेप-क्रिया -coating ५५/३

छेनी- पत्थर, धातु आदि का अस्त्र ३७/१०

छह प्रकार की लकड़ी से बनने वाला अलिन्द षट्दारु ४९/३

छादन- आच्छादित ४६/३

छाद्य-प्रकार छाद्य-छत ४८/२८

छत्र- a parasol ३८/१६

छन्न- ढका हुआ २७/२२

ज्येष्ठ प्रासाद- बड़ा महल, royal house 6/15

ज्येष्ठ हस्त-जो हस्त, आठ यव के अंगुल का होता है, वह ज्येष्ठ हस्त कहलाता है,

जल धावन- बहना ४७/२२

जलभ्रम- नालियाँ ३१/३

जयन्तियों- बीम, banner shaped projections or eaves 43/28

जंघा- shank 32/28

जयन्ती- cross pieces ,जयन्ती-cross beam42/3

जालक-जाली ४४/३

जो भूमि बालिश बालक राजा के द्वारा शासित की जाती है, जहाँ सज्जन लोग निवास

छिद्रित फलक पटिया ३३/२२	करते हैं, बालिशस्वामिनी भूमि कहलाती है। १०/१०
जो अट्टाली बहुत ऊँची नहीं होती उसे अट्टालिका, महल, उत्तुंग भवन कहते हैं।४६/२२	जो उपस्थानक होता है और जो अपवरक होता है, वे कोष्ठक कहलाते हैं। २६/२२
जोड़- संधि, joint ३७/१३	जानकर- ज्ञातकर५५/१३
जानु- घुटना, knees 33/14	जीव- प्राणी ३६/३
जनपद-नगर को छोड़कर और सब ७/२२	जनाश्रय- लोगों के आश्रय १३/१०
तटाक- तालाब ४२/१०	तर्पण-तृप्त करना, प्रसन्न करना। ३/१६
तमङ्ग, भ्रम- फव्वारा, नाली ८/१५	तल-basement 19/28
तलपट्ट- basement pedestal 34/28	तरङ्गाग्र- पानी की कल-कल, छोटी लहर, तंरग ४१/२२
तेल-grease 7/16	क्षय- हानि, पतन २३/१४
ताल- ताड़ का वृक्ष १३/२२	तारकाकृति मंडल- star-shaped glaobe ३७/२२
ताडित- आहत, मार खाया हुआ ५४/२१	ताडित किया जाता है- पीटा जाता है, पीट कर लगाया जाता है ७/४२
क्षोम-रोशनदान- प्रतिक्षोम-आमने-सामने रोशनदान ३१/१३	तोरण- आर्च ३५/४३
तोरण- ध्वज, झंडी १/४६	ताड़न- प्रहार ५७/२१
ताम्र- ताँबा १३/४७	तथा दस अंगुल को शयताल कहते हैं।४२/११
तुला- बीम १३/१३	तुला- beam ४३/३
तुला- तराजू ३०/३	तुष्ट-प्रसन्न, खुश, ४/१६
तुम्बिका- लटकन ३८/२८	तुम्बिका- लटकने २७/४३
तीक्ष्ण छाल वाले-having rough bark, १०/१६	तीस काष्ठा की एक कला होती है। तीस कला के एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्त का एक अहर्निश, अहोरात्र, रात-दिन होता है। पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है। दो पक्ष का एक मास तथा दो मास की एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओं के एक अयन तथा दो अयनों का एक वर्ष कहलाता है।५३/११
तीसरा भाग- एक तिहाई २४/१३	तीन अंगुल को पर्व कहते हैं।४१/११
तीन दिशाओं में बने हुए घर को त्रिशाला ५०/३	तीन धनुष का एक नल्व होता है।
तीनों देश- जाङ्गल, अनूप व साधारण)६/१०	तूर्य- तुरही ५६/१०
तिर्यगमुख- पार्श्वमुख १/१६	तिक्त- निम्ब के समान स्वाद ४९/१०
त्रिशाल-तीन पार्श्वों से १८/२२	त्रिकोण- three cornered house 55/12
त्रिकण्ट- गोखरू, त्रिशूल ३७/२८	त्रिकुड्य- कुड्य-दीवार २१/२२
त्रैकालिक- तीनों समय में २६/४६	`देशविशारदों- विशारद-कुशल, चतुर, बुद्धिमान ५/१०
दिव्य- दैवी, स्वर्गीय, आकाशीय	दिङ्मूढ-दिशाओं में भ्रान्त, मुड़ा हुआ, घुमाया हुआ ६५/२३
द्विगुणायत- लम्बाई, चौड़ाई के दोगुने से	द्विनाम- दो नाम वाले १५/१४

अधिक हो ६३/२३	
द्विशाल-दो पार्श्वों से १८/२२	द्विगुणित--वेष्टित, दो डोरी से लपेटे हुए ६९/२१
द्विदिश- double bordered, twelve cornerd or started house55/12	द्विजोत्तमों- ब्राह्मण में उत्तम ४७/२१
दुःशीलता- दुराचरण,-misconduct 14/42	द्वार, रथ्या- lane, passages, routes १/२३
द्वार-पक्ष-कपाट	द्वार-निर्गमन-जो द्वार-देश में छन्न स्थान रहता है २७/२२
द्वार-निर्गमन-जो द्वार-देश में छन्न स्थान रहता है२६/२२	द्वार-कोष्ठक-जो द्वार-देश में छन्न स्थान रहता है२६/२२
द्वार-कोष्ठक-जो द्वार-देश में छन्न स्थान रहता है२७/२२	द्वार-संवरण-कपाट३३/२२
द्वादश- बारस ११/१३	द्वास्थ- दौवारिक १०/१४
द्रव्य- पदार्थ १/२८	द्रव्य- लकड़ी २१/१३
धर्माधिकरण- विधि का प्रशासन, न्यायालय १९/१५	धवल -श्वेत, सफेद ४५/१६
धर- बडहरा २५/४२	धारागृह-काष्ठ-मूल पर आश्रित स्तम्भ-शीर्षक-रूपों को खोखला बना कर उनमें काष्ठ नाली के मुखान्तरों से जो पुरषाकृति अथवा पक्षाकृति रूप जैसे वृष, वानर गज रूप सम्पन्न होते है उनके स्तन, नासा, मुख और आँखों से जब चारों तरफ पानी निकलता है
धारागृह- स्नानागार जिसमें फौव्वारा लगा हो५०/२२	धारागृह-फव्वारा गृह २३/३
धूम में सन्ताप- दुःख, पीड़ा, वेदना,२१/१२	धूम्र- धुएँ के समान ५९/१०
धनुर्दण्डान् -वाहन, शयन व आसन।३६/११	ध्रुव- दृढ़ ३१/४३
ध्वांश-a crow	ध्वज- banner. 23/13
ध्वज- झंडा २०/३	ध्वजोच्छ्रूति- इन्द्र-ध्वज की ऊँचाई ३/४५
ध्वजकुष्य- or kupya-the banner timber or draw out or diameter 27/13	नभ- अन्तरिक्ष ५/१४
नकारात्मक ऊर्जा देने वाले पदार्थ को शल्य कहते हैं। ३८/३	नकारात्मक ऊर्जा देने वाला पदार्थ -जैसे हड्डी, कोयला, राख, भूसी आदि ३८/३
नत- नीचे १२/४६	नक्षत्र- तारों के समूह ४/३
नन्दी- बैल २०/३	नद- बड़ी नदी १२/१०
नववधू- newly wedded woman 54/42	नवीन- नया १९/४३
नलिनी- पद्मिनी ६/४७	नाटक-कक्ष तथा चित्र-गृह, चित्रकारी, पेंटिग का कमरा ३४/१५
नाभि- navel ३२/१४	नाग-पाशक- खूंटी ३२/४३
नागपाश- the snake trmmels or serpentine coils 15/13	नागबंध- नागवीथी ५८/३
नागदन्त- दीवार से लगी खूंटी या दीवारगीरी	नागदन्त- दीवार से लगी खूंटी या दीवारगीरी १५/१३

नीराजनों- एक प्रकार का सैनिक व धार्मिक पर्व जिसको राजा या सेनापति आश्विन मास में संग्राम क्षेत्र में जाने से पूर्व मनाते थे। ३/४७	नौ अंगुल को प्रादेश ४२/११
न्यास कर- स्थापित कर, लगवा कर ५८/१३	प्लानिंग- नियोजन १२/३
प्लक्ष- पाखर २०/१६	पट्‌ट- शिला, पट्टिका ४३/२३
पट्टन्यास- पट्ट-शिला, न्यास-स्थापना १९/२८	पवन- आँधी-तूफान ६०/२३
पशु-वर्ग- पशुजाति ३४/४३	परशु- कुल्हाड़ी २८/२१
परशु- कुल्हाड़ी ४७/२१	परकोटा- प्राचीर, चहारदीवारी १/१५
पराङ्मुख- विमुख, उलट, reverse situation 26/15	पराङ्मुख- विपरीत दिशा में होने पर १२.४/२३
परीणाह- घेरा १२/२१	पट्टिकाएँ- तख्ती, फलक ३९/४३
परिमाण-परिधि के लिए,	परिशीलन- स्पर्श, सम्पर्क ६५/२१
परिश्रित छद- आवरण, चादर, surface 47/22	परिक्रम- circulation 28/28
परितुष्ट- खुश, प्रसन्न ३६/२१	परिखाओं- किलें के चारों और बनी नाली ८/१५
परिसर-गृह से भित्ति सामान्य अर्थात् दीवालों से लगाकर उसके बाह्य को ४४/२२	परिग्रह- घेरा हुआ १९/२८
परिघ-वही सूची पुरों के लिए कहलाती हैं और ३३/२२	परिचारक- attendants 30/42
पर्याय-synonyms 1/22	पर्याण- काठी, जीन कसना
पंचमहाभूत-आकाश, वायु, तेज अग्नि, जल व पृथ्वी ४/३	पाटल- पाढर, गुलाब ४५/१०
पार्श्वों- बाजू, भागों	परिपक्व- पूरी तरह पका हुआ, मुर्झाने वाला ९/१६
परिखा- खाई १४/३	परिखा- खाई १७/२३
पण्य- व्यापार	पक्षवंश- बाजू के वंश २८/४२
पताका- ध्वज ७०/१२	पताका- झण्डिया, a bunting, ३८/१६
पक्ष-कपाट३३/२२	पक्ष-द्वार-महाद्वार से दूसरे द्वार को
पक्षद्वार- sidegate ५१/२३	पत्रों- पत्तों ५६/२८
पत्रों की रसना- रस्सी, डोरी २६/२८	पत्तन- बंदरगाह १/४३
पत्तन-राजाओं का जहाँ पर उपस्थान ५/२२	पद्म-पत्रों- पद्म-कमल,lotus patalled ३९/२८
पद्मक- बैठने की विशेष मुद्रा	पद्मक-स्तम्भ-a lotus like pillar 27/28
पद- नगर बनाते समय नगर को कई भागों में बाँटते हैं, विभाजित करते हैं, प्रत्येक भाग पद कहलाता है। २९/३	पदाष्टक- पद का आठवाँ भाग १२/२३
पदान्त- पद के अन्त में	पदसम्मित- measured by square 35/28
पाविक-पूए ३८/२१	पाष -कंकर ६४/१०
पोले- खोखले १०/१६	पोष- पोषण, वृद्धि ७२/२१
पाँच अंगुल को तल कहते हैं।४१/११	पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ-आँख, नाक, कान, जीभ व त्वचा ११/३
	पात्रों- बर्तनों
पात- पतन, पराजय ३/४३	पाद्य- feet 20/13
पादों-squares १६/१२	

पान गृह- पीने का स्थान ३१/१५	पानी का स्थान- जैसे स्वीमिंग पूल, तैरने का स्थान आदि २३/३
पीठ- pedestal 29/13	पीठ-आसन, यह भवन का वह भाग है जो भूमि के ऊपर दिखाई देता है तथा इस पर भवन बनाते हैं ४१/३
पीठिका- the pedestal or plate ५३/२१	पीठिका का पाद- foot of the pedestal
पीलिका- कुंड़ी २३/४३	पुटभेदन-जो पत्तन बहुत फैला हुआ और वैश्यों से युक्त होता है ५/२२
पुर- टाऊन १/४३	पुर- नगर १/२३
पुरवासियों- नगर में रहने वाले लोगों के लिए ४/४६	पुरों- नगर, शहर
पुरोहित-पूजन-पाठ २८/३	पुरी- नगरी ५४/२२
पुष्ट-पूर्ण, खिलाया पिलाया, पूरी तरह समृद्ध ४/१६	पुष्पादि से निर्मित पुष्प-तोरण के अग्रभाग में जो ठकार (a disk or a place frequented by all is there is called simhakarna or lion's ear.) होता हैं, उसे सिंह-कर्ण कहते हैं। ३९/२२
पृष्ठ- पीछे से ४७/२२	पृष्ठ-वंश- बेक-रॉफ्टर २९/४३
पृथ्वी- मृत्यु लोक ५/३	पृथ्वीधर - शेषनाग २९/१४
पृथुत्व- by length and breadth ५७/१२	पूर्व-प्रतिपादित- पहले कहे अनुसार ९/४६
पूर्ववहा- पहले ५७/१०	पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है।
प्रपालक- प्रणालिनी, जलमार्ग, नाली २०/२८	प्रमाण- मान, dimension ४०/३
प्रमाण- लम्बाई, चौड़ाई २१/३	प्रमाण-चौड़ाई के लिए,
प्रमाद- असावधानी ६८/२३	प्रमथ- घोड़ा
प्रमुख दिशा- पूर्व, दक्षिण, पश्चिम व उत्तर १९/३	प्रवेशन- अन्दर जाना, घर का मुख्य द्वार और द्वार-निर्गमन- बाहर जाने का द्वार भी कहते हैं। २७/२२
प्रवेशन-जो द्वार-देश में छन्न स्थान रहता है२६/२२	प्रवेशन-जो द्वार-देश में छन्न स्थान रहता है२७/२२
प्रवेश- द्वार ३१/३	प्रवर्तित- आरंभ १३/४६
प्रशीणे- जला ५९/३	प्रशस्त- श्रेष्ठ २३/१२
प्रलीन अथवा विलीन- प्रासाद की केटेगरी हैं। ४४/४३	प्रतिपालना- fencing 22/28
प्रतिमोक- a frontal column ४३/४३	प्रतिमोक- a pendulous projection or a fulcrum ४४/२८
प्रतिमोक- opposite supports 28/42	प्रतिकृति- प्रतिबिंब, चित्र ३९/४२
प्रतिक्षोम-counterpoised beam58/13	प्रेषिणी- पत्नी २२/४२
प्रेतपति- यमराज ११७/२३	प्रेक्षा गृह- जहाँ अच्छी-बुरी बातों का विचार किया जाता है।
प्रेक्षा-गृह- theatrical and music chamber or halls २३/१५	प्रेक्षागृह-रंग मंडप, नाट्यशाला
प्रेक्षा-देखना	प्राशय -ज्येष्ठ हस्त कहलाता है, उसे प्राशय कहा है।२८/११

प्राकार- rampart १/२३	प्राकार- प्राचीर, चहारदीवारी ५३/२२
प्राकार- प्राचीर, चहारदीवारी ३७/२२	प्राकार- घेरे की दीवार १४/३
प्राकार-आंगन के कंठ को ४२/२२	प्राकार-निवेश rampart 3/45
प्राकार--fortification -a tower, wall, gun position, etc. built to defend a place against attack: 25/23	प्राग्वंश-a kind of sacrificial room having its columns turned toward the east 15/45
प्रासाद- राजभवन, मंदिर या देवालय २२/२२	प्रासाद- राजमहल या महल, सभा-भवन या मण्डप, pavilions ३/१३
प्रकल्पित- निश्चित किया हुआ ३६/२८	प्राची- पूर्व १९/१२
प्रक्रम-माप की इकाई ३६/४५	प्रणाली-हर्म्य के पानी के निर्गम को ४१/२२
प्रत्येक भाग पद का स्वामी एक देवता होता है, उसे पद देवता कहते हैं। ५१/३	प्रतोली-turrets-a small tower -on top of a wall or building ३/४५
प्रतोली-द्वार के ऊपर निगरानी के लिए बना टॉवर, turrent on the parapet 38/23	प्रतोली-जहाँ सुरंग के समान गली में रहा जाता है उसको कहते हैं।
प्रतीहारों- जादूगर ४/४६	प्रदक्षिण- clockwise
प्रग्रह- रस्सी २५/४२	प्रसादिका-छोटा प्रासाद २२/२२
प्रद्वार-द्वार के समीप स्थान४२/२२	प्रजा-वद्धि -जनसंख्या में वृद्धि १३/४३
प्रधान- मुख्य ४/४६	फलिह-वही हाथियों के वारण के लिए ३३/२२
फूलों का घऱ- floral garden ३०/१५	बलभियों- roofs 43/43
बलाका- बलाक- प्रिया, कान्ता	बलाध्यक्ष- शक्तिसंपन्न, ज्ञान या मन्त्रयोग वाले व्यक्ति ९६/२३
बरामदा- अलिन्द ५०/३	बराबर- levelled 50/28
बलि अर्थात् देवता को आहुति ५७/३	बहेलिया- पक्षियों को जाल में फंसाकर पकड़ने वाला ९१/२३
बहुल- प्रचुर, अधिक ६/४३	बयालिस अंगुल को किष्कु कहते हैं।४४/११
बाईं- left one 10/14	बालाग्र-आठ रेणु का बालाग्र होता है।४/११
बारह अंगुल को वितस्ति,	बाहु- भुजा ४/१४
बाहुओं- मान-दण्ड़ों में २/४३	बाहुल्य- आधिक्य, अधिकता ३४/२८
बाह्य व अन्तर- exterior and interior aspest 38/13	बालिश- बालक १०/१०
बाजों- musical instruments ४३/१३	बगाचे में क्रीड़ागृह- खेलने का स्थान को उद्यान कहते हैं। ५५/२२
बीजक-पीतसार, पीतशालक, बन्धूकपुष्प, प्रियक, सर्जक, असन terocarpus marsupiu	बन्धु- रिश्तेदार ५५/१२
बन्धुओं- रिश्तेदारों १४/४३	बन्धन- जेल २४/४६
भवनाजिर-भवन के आँगन २९/२२	भंडार गृह-अनाज रखने का स्थान
भंग- टुकड़ा, खण्ड २२/४३	भंग- टूटने २५/४२
भंगुर-आसानी से टूटने वाले १०/१६	भेदन- excision ३४/४२
भार्या- पत्नी ४०/४३	भाण्डागार- store house a treasury offices or even magazine....32/15
भातृ-मरण- भाई की मृत्यु ३२/४३	भग्न- टूटा-फूटा ५९/३

भुजंगकुटिल- सर्प के समान टेढ़ा-मेढ़ा ६६/२३	भद्र- शुभ, समृद्धशाली, बैल, एक प्रकार का खंजन पक्षी..
भद्रा शक्रमाता- the smaller or minor flagstaff 56/13	भृत्य- नौकर की मृत्यु और विलीन में धनक्षय, धन की हानि ४४/४३
भृत्यों- नौकरों ३२/४३	भूमिकर्म-भूमि को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करना।
भूमिका- आधार १/३	भूलिका- earth, clay or mud ३१/४२
भूखण्ड को विभिन्न भागों में विभाजित करते हैं। प्रत्येक भाग पद कहलाता है। यह प्रक्रिया वास्तु-पद-विन्यास कहलाती है। ५१/३	मल्ल- the lamp stand 32/13
मल्ल-लेम्प पोस्ट २९/१३	मल्लक- तैलपात्र, दीपक २८/४२
मरालपाली-दीवार अथवा लकड़ियों के तरङ्गाग्र की भाँति झुके हुए भाग को कहते हैं४१/२२	महिष- भैंसा
महेश्वर- रुद्र	महारथ्याओं- बड़ा रास्तें ९/२३
महाद्वार- मुख्य द्वार, main gate 52/22	महाजवशाली- जव-तेजी, जल्दी २१/१४
महाजन- बड़ा आदमी, प्रतिष्ठित पुरुष, प्रमुख व्यक्ति २१/२२	महानस-रसोई की शाला को कहते हैं और २७/२२
महानस-रसोई की शाला को कहते हैं२६/२२	महती- बहुत अधिक ३४/४६
महद्- बहुत बड़ा ११/४३	मधुर तथा घना- thickset, ५०/२८
मधुकरियाँ- मधुकरीउभौंरी २३/२३	मनोरम- सुन्दर, मनोहर ४७/२८
मन्त्रणा- विचार-विमर्श ३७/१५	मर्कट- लंगूर, बंदर
मर्दन- रौंद कर, कुचल कर ३६/१६	माता-largest or main flag staff 34/13
मातृगण- देव माताओं का समूह १७/१४	मात्रा- जितनी मात्रा में हवन किया जाता है ३०/४६
मकरों- aligator shaped ४८/२८	माध्वी- महुए की शराब, अंगूर की शराब ४६/१०
मान-लम्बाई के लिए, २७/३	मानुष- मनुष्य
मानुषगण- मनुष्यगण ४७/१२	मुञ्ज- एक प्रकार की घास, जिससे की ब्राह्मण की तड़ागी तैयार की जाती है।,
मुरज- एक प्रकार का ढोल या मृदंग	मुंडकों- गर्भ-गृह ३०/४३
मसूरक का निर्गम- outlet for a lintel 23/28	मसूरक-base 23/28
मुष्टि- मुट्ठी भर ५०/२८	मुख्य भवन- जिसमें राजा निवास करता है २७/३
मुख-मंडप- opening pavilion	मृत्तिका- मिट्टी १३/४७
मृगाली- may be some row of eaves a roosting rod etc.	मूल- सबसे नीचे, नींव ३/४२
मूल पाद- मुख्य स्तम्भ, खम्बा या स्तम्भ के मूल ४०/३	मूषा- झरोखों, खिड़कियों ८०/१२
मूषा- झरोखा ४९/३	मूर्ध्नि- मुकुट, मस्तक, crest,७/१३
मूर्ति- मृत्यु का रूप २०/४६	मूत्रभूमि- पेशाब करना, मूत्र करना ४२/२२
मूर्धा-चोटी ५३/३	मेदिनी- पृथ्वी ५०/४२

मेष- मेढ़ा, भेड़	मेय-मेय- जिसका माप लिया जा सके २८/११
मोटे तनेवाला- thickset or flatulent trunk, २५/१६	मांसों- raw fleshes or meats,२६/१६
मंडला- शाखा १२/२८	मंडल-नगर को मिलाकर सम्पूर्ण राष्ट्र ७/२२
मंडूक- मेंढ़क ४९/१६	मंजिष्ठ- मजीठ के रंग जैसा ४५/१६
मंत्रणा-कक्ष	यवमध्य- आठ यूकाओं का एक यवमध्य होता है।५/११
यवों- लंबाई की एक नाप- एक अंगुल का १/६ या १/८ १६/१२	यवान्न- गेहूँ वाला अन्न २६/४६
यज्ञवाट- यज्ञ के लिए तैयार की गई या घेरी गई भूमि ७५/१०	यति के आश्रय- सन्यासियों की कुटिया ९४/२३
यान- वाहन, रथ २७/१२	याम- पहर-तीन घंटे का समय ५०/२८
यष्टि- flag staff ४८/१३	यज्ञवाट- यज्ञ के लिए तैयार की गई या घेरी गई भूमि ७५/१०
यक्ष- राजयक्ष्मा ५०/४२	यत्नपूर्वक- प्रयत्नपूर्वक २४/४६
यत्नपूर्वक- with effort ३२/१२	यथा-प्रतिपादित यथा-शास्त्र ४३/२१
यष्टि- स्तम्भ, झंडे का डंडा ४३/१३	युक्ति- मिलाप, संगम २८/१३
यूप- यज्ञ-स्तम्भ ३/४३	यूका- आठ लिक्षा की एक यूका होती है।४/११
युक्त- पूरे ३४/२१	युक्ति- मिलाप, संगम २८/१३
यूप- यज्ञ-स्तम्भ ३/४३	यूका- आठ लिक्षा की एक यूका होती है।४/११
योजना करें- लगाएँ ५५/१३	रम्य- आनंद, सुन्दर १०/४३
रोधनद्वार- रोधन-ठहरना, रोकना, नियन्त्रण ४५/२३	राजमार्ग- royal road or main road ९/१५
राजवेश्म- राजा का महल ८/४६	राजगृह- royal palaces, इन्द्रस्थान the place of indra' banner 3/13
राजधानी- वह स्थान है जहाँ राजा स्वयं रहता है। १२/३	राजधानी जिस नगर में राजा रहता है। २/२२
रत- पूजा अर्चना में लीन होकर २६/४६	रथ्या- सेना के जाने की सड़क ३३/४५
रथ्या-विभाग, रास्ते ३/४५	रस- स्वाद ११/३
रसांजन- रसौत, एक प्रकार का अंजन ४६/१६	रचना की- सृजन किया ७/१३
रूक्ष- सूखी, ड्राय ७/४३	रूखे- rough 11/16
रूचक- रुचिकर, सुखद, कबूतर....	लकट- the staff pole ३८/१३
लकड़ी में मधु- मधुमक्खी का छत्ता लगा ५९/३	लकड़ी की हथिनियों के ऊपर-two wooden female elephants 45/13
लकड़ी की क्रिया- कारीगरी ५५/३	लच- झुक १/४६
लम्बमान-लम्बवत् के माप के लिए,	लम्बन- लंबाई ५०/२८
लाजाओं -धान ३०/४६	लम्बित- दीर्घ, लंबी ३७/२८
लता-मण्डप- creeper arcade २९/१५	लतागृह- creeper arbours 29/15
लाल कृकलास- गिरगिट ४५/१६	लुपा-rafter 46/3
लुमाओं- पेन्ट-रूफ ३०/४३	लिक्षा-आठ बालाग्र की एक लिक्षा होती हैं।४/११

लिंग के मध्य में -centeral part of the genital organ 9/14	विटंक- पक्षी के बैठने का स्थान २५/३
विभव- दौलत, धन, सम्पत्ति १३/१४	विवर्ण- रंगहीन-कान्ति हीन ५९/१०
विषम भूमि- खुरदुरी, ऊबड़-खाबड़ २५/१०	विषम स्थल- uneven spots 6/16
विकट- विकराल, कुरूप, विशाल २५/२३	विकर्ण -जो कोनों से रहित हो ५४/२३
विक्रम- साहस १९/१०	वितान- विस्तार, खाली २०/१३
विस्तार- फैलाव ५/३	विद्ध- घायल, प्रेषित २२/१३
श्रीवृक्ष- a bilva tree or a curl of hair on the breast and forehead of a horse 38/16	श्रृङ्गाटों- चौराहों ८/४६
ह्रास- कमी २/४३	शशक- खरगोश
शब्द- आवाज ११/३	शरीर को नष्ट करने वाला मृत्यु का नाम- विवस्वान २८/१४
शेवाल-काई, एक पौधा ४/४२	शय्या गृह- सोने का कंमरा, बेडरूम २४/३
शंकुओं- नुकीली वस्तु, खूंटी, कील १८/२१	शालापाद- पिलर अर्थात स्तम्भ हैं ४८/४३
शाला-कमरे४०/३	शाला-जो स्थान छत्र होता है उस---महाजनों के छत्र स्थान को ५८/२२
शाला-जो घर सब तरफ से संछन्न है १९/२२	शोभा- वैभव १७/४७
शोधित- round polish 58/12	शाखा- jamb 11/28
शालिपिष्टक- शालि-एक प्रकार का चावल के पीसने से तैयार आटा ४७/१०	शास्त्रज्ञ- स्थपति १२५/२३
शकट- एक राक्षस का नाम जिसें कृष्ण ने बचपन में ही मार डाला था।	शकुन- निमित्त १४/१३
शक्र -i.e indra ५५/१३	शय -जिसकी मात्रा कम हो उसे शय कहते हैं, अतः छः अंगुल वाला हस्त शय कहलाता है।३०/११
शक्रध्वज-उत्थान इन्द्रध्वज ऊपर उठाने की क्रिया ११/४७	शुभ- auspicious ४९/१३
शुभ्र- उज्जवल १७/४७	शीर्ष- टॉप पोरशन ४१/४३
शुक- तोता	शिबिर- राजकीय तंबू या खेमा ५/१३
शीर्ण- मुरझाया हुआ १२/४६	शुद्धात्मा- मन से २६/४६
शुद्धान्त-गृह में आभ्यन्तर स्थान को २४/२२	,,ून्य- खाली ९/४३
श्मशान- city cemetery 6/16	शय्या- पंलग, आसन
श्वान- कुत्ता	श्रीवृक्ष- a bilva tree or a curl of hair on the breast and forehead of a horse 38/16
श्रृङ्गाटों- चौराहों ८/४६	ह्रास- कमी २/४३
शिला- बड़ा पत्थर ४०/३	स्पर्श, गन्धा
स्मृत- कही २/४७	स्वच्छ जल- श्रृंगारप्रिय, क्रीड़ाशील ४२/१५
सटे हुए- गुंथे हुए १३/१६	सप्द्वौं- अग्नि २८/२१
सभा- court hall or council chamber 49/15	सभाजन- सम्मानित करना, पूजा करना, स्वागत करना २०/१५
सम्पात- the meeting points 42/3	सम्पादन- ठीक करना ३०/४६
सम्पादन- पूरा करना	सम्पादन- निष्पादन, पूरा करना १/२१

सम्भारो- सामग्रियों १७/२१	सम़- even ४९/१३
समाश्रित- शरण, पनाह ७९/२१	समाहित- steadfast 35/13
समाधि- योग ४/४३	समुपोषित- प्रसन्नतापूर्वक, इच्छा के अनुसार ४/१६
समुद्दिष्ट- पूर्णतः निर्देश की गई१९/१२	समग्र- समस्त, पूर्ण ८०/२१
सपिच्छ शरीर- पूँछ सहित शरीर २९/४६	सहोम- हवन ६/४६
संप्रधारण- विचार, किसी वस्तु का औचित्य या अनौचित्य निर्धारित करना। ५०/४३	संवरण- छिपाव, ढकना
संवृत- ढका हुआ, आच्छादित १२/२२	संशय- सन्देह, आशंका ८/४३
संहारक- नाश करने वाले १५/१४	संयमन-गृह की संचार -भूमियों को नाम से संयमन कहते हैं। २५/३
संयमन-गृह की संचार -भूमियों को नाम से संयमन कहते हैं	संयमन-घर के पास में भी उसी को ४०/२२
संग्रह- जहाँ सारे बीम तथा पोट बीम मिलते हैं। ४३/३	संग्रहों- एकत्र करने की क्रिया ४६/२८
संस्कार- सुधार १४/४६	संस्थान- रूप, आकृति ८/४७
संचय- इकट्ठा धन आदि ५९/२३	साम्य- समता ४८/१२
साम- खुश करना ६५/२१	ग्राम- गाँव १/४३
सलिल- पानी ४७/१६	सालक्तक- रंगे हुए २६/२१
साला व अट्टालक- अटारी, चौबारा ३२/२३	सारयुक्त- मजबूत, बलवान २५/१६
सारू- पक्षिविशेष ,२७/१२	सारिका- एक प्रकार का पक्षी, मैना १४/४२
ग्राह्म- ग्रहण १५/१२	सोपान- चढ़ाव ३७/४३
साँवत्सर- वार्षिक, सालाना ३३/२१	सोलह कोष्ठ- सोलह कमरे ४/२३
सांकेतिक रूप से- मोटे तौर पर १९/३	सौम्य- सुन्दर, सुखद ६०/२१
सौम्यमुखौ- सुन्दर मुख, उत्तर की ओर मुख १०४/२३	सावित्र- वेदमाता
सौध-चूने से पुता हुआ तल वाला हर्म्य १२/२२	सात अंगुल को दिष्टि,४२/११
सात यव से बना अंगुल से जो हस्त बनता है, वह विद्वानों द्वारा साधारण कहलाता है।२९/११	सकोलाक्ष-blue in colour १०/१६
सार्ध-चौड़ाई से आधी गहराई वाली खाई? १७/२३	साधक- सम्पन्न करने वाला, पूर्ण करने वाला ३६/१६
सन्धि-junction ३७/२२	सन्धिपाल-the joints preservatives 14/13
सन्धियों- जाईन्ट १६/४६	सदन- घर २८/४३
सुवर्ण- सोना १३/४७	सुषिर-छिद्रों से युक्त, खोखला १०/१६
सुभिक्ष- सफल याचना ५०/१६	ग्रसा- निगला २२/१४
सुस्थिर- गहरे४९/२१	सुखावह- सुखी ८/४५
सुदृढ़- बहुत मजबूत	सूईवेध- perforations 36/13
सूत्रित करें- निश्चित करें ४९/१३	सूकर- सूअर ९१/२३
सूत्रण-कीलक सूत्रपात	सूचीमुख- सूई के समान मुख वाला ५४/२३
सूचीमुख-सूई के नोक समान ५८/२३	सन्न- स्थिर, गतिहीन ३५/४२

स्तम्भ से निकलते हुए बाहु, handles	स्तम्भ-पट्टों, column planks 46/28
स्तम्भपिण्ड- pillar circumference 24/28	स्तम्भों- pillars or columns13/13
स्तम्भ-खाम्बा, जिस पर भवन का भार होता है ।४०/३	स्थपति- वास्तुशास्त्री ३६/३
स्थपति- धैर्य चित्त, विनीत स्थपति ५/४६	स्थापत्य- शास्त्र, कर्म, प्रज्ञा तथा शील १/४५
स्थूणा- खाम्बा, स्तम्भ, खूंटा ४६/४२	स्थूणा-pillar 45/3
स्नानधारागृह- bathing fountains, नहाने के लिए फव्वारे २९/१५	हर्म्य-गृह के ऊपर की भूमि-the upper roof of a house that is १०/२२
हेम -बहुत अधिक सोना ११/४३	हर्म्य- प्रासाद, महल, या भवन ३७/२२
हर्म्य-प्राकारक-हर्म्य--तल के कंठ १५/२२	हल- ploughshare 38/16
हलधर माली- मित्र २९/१४	हरण कर लिया- छीन लिया ९/१३
हरि- इन्द्र ७/१३	हरिण- मृग, बारह सिंगा
हत- नाश, चोट, प्रहार ३०/४२	हस्ति शालाओं- जहाँ गज अर्थात हाथी रहते हो २१/४३
षड्दारु- the six fagotted beam57/12	हस्त- i.e. the cubits 2/28
हिमवान- आप२६/१४	हितैषी- कल्याण चाहने वाला, मित्र १६/१४
हिंसा पर आश्रित-मांस बेचने वाले तथा शिकारी आदि ३०/	ज्ञातियों -एक ही गौत्र या वंश का मनुष्य, रिश्तेदार ३६/१६

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय ग्रंथालय
क्र. 22626
करौंदी, कटनी (म.प्र.)